श्री जवाहर किरणावली किरण—२८

नारी-जीवन

(जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा.
के प्रवचनों के [illegible]

लेखिका—
श्रीमती कमला जैन 'जीजी'

प्रकाशक—
श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर
(बीकानेर-राजस्थान)

प्रकाशकीय

'नारी-जीवन' श्री जवाहर किरणावली की परम्परा में अट्ठाईसवी किरण है । इसमे पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के नारी-जाति सम्बन्धी प्रवचनो के आधार पर महत्त्वपूर्ण विचारो, उपदेशो, शिक्षाओ और उदाहरणो का सकलन प्रस्तुत किया गया है ।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा. एक महान् विचारक और अध्यात्मवादी सत-शिरोमणि थे । उनका नारी-जीवन के प्रति बडा सहानुभूति-पूर्ण तथा उदार दृष्टिकोण रहा है। उन्होने नारी-जाति की महत्ता और विशिष्टता का मुक्तकठ से प्रतिपादन किया है, साथ ही नारी जाति की निर्वलताओं का भी यथायोग्य दिग्दर्शन कराने मे कोई कसर नहीं छोडी है परन्तु वह इसलिए कि नारी-जाति अपनी निर्बलताओं को समझकर आगे प्रशस्त पथ पर आरूढ होने मे सक्षम बने ।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा ने प्रवचनों के माध्यम से नारी-जाति को उसके आदर्श, कर्त्तव्य आदि का बोध कराया है, वह सब श्रीमती कमला जैन 'जीजी' द्वारा लिपिबद्ध और सुसम्पादित होकर यहा पुस्तक-रूप मे प्रकाशित है ।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम एवं द्वितीय सस्करण श्री जवाहर साहित्य समिति भीनासर की ओर से श्रीमान् सेठ इन्द्रचन्द्र जी सा गेलडा द्वारा अपनी पुण्यश्लोका मातेश्वरी श्रीमती गणेश बाई की पावन स्मृति मे साहित्य प्रकाशन हेतु दिए गए ६०१०)०० से प्रकाशित

हुए थे । कुछ समय से इसका द्वितीय सस्करण भी अप्राप्य था और पाठको की विशेप माग थी । अत 'नारी-जीवन' का यह तीसरा सस्करण धर्मनिष्ठ सुश्राविका बहिन श्रीमती राजकुवर बाई मालू, बीकानेर द्वारा श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर को सत्साहित्य के प्रकाशन हेतु प्रदत्त धनराशि से प्रकाशित हो रहा है । सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए बहिन श्री की अनन्य निष्ठा चिर-स्मरणीय रहेगी ।

आजकल कागज एवं मुद्रण आदि का व्यय काफी बढ जाने से इस सस्करण की कीमत बढाने के लिए हमे बाध्य होना पडा है ।

प्रकाशन-कार्य मे श्री अ भा. साधुमार्गी जैन संघ और उसके द्वारा सचालित जैन आर्ट प्रेस का समिति को पूर्ण सहयोग रहा है, एतदर्थ समिति उनके प्रति आभार प्रकट करती है ।

मत्री,
श्री जवाहर साहित्य समिति
(अन्तर्गत श्री जवाहर विद्यापीठ)
भीनासर (बीकानेर)

अनुक्रमणिका

१

भारतीय नारी

१. प्राचीन काल में स्त्री

किसी भी समय, किन्ही भी परिस्थितियो मे तथा किसी भी समाज मे स्त्रियो का स्थान सदैव महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करने मे उन्ही का हाथ रहता है और वही व्यक्तित्व समाज व राष्ट्र का निर्माण करता है। परोक्ष रूप मे राष्ट्र की उन्नति व अवनति स्त्रियो की स्थिति पर ही अवलबित है। अगर समाज मे स्त्रिया शिक्षित, सुयोग्य गृहिणी व आदर्श माता है तो सतान भी गुणवान्, वीर तथा बुद्धिशाली होगी। भारतवर्ष सदैव समाज मे स्त्रियो को महत्त्वपूर्ण स्थान देता रहा है। सीता, सावित्री के आदर्श किसी भारतीय से छिपे नही। स्वामी विवेकानन्द के शब्दो मे —

"स्त्रियो की पूजा करके ही सब जातिया बडी हुई है। जिस देश मे, जिस जाति मे, स्त्रियो की पूजा नही होती, वह देश, वह जाति, कभी बडी नही हो सकी और न हो सकेगी। तुम्हारी जाति का जो इतना अध पतन हुआ है, उसका प्रधान कारण है इन्ही सब शक्तिमूर्तियो की अवमानना"।

स्त्री के मातृत्व की पूजा भारतवर्ष का आदर्श रहा है। वैदिक काल मे स्त्रिया समाज मे किसी प्रकार से हीन न थी। वे सदैव पुरुषो के समान अधिकारिणी थी। उन्हे पठन-पाठन आदि सभी प्रकार की सुविधाए प्राप्त थी। उन्हे "अर्धांगिनी" कहा जाता था। इसी शब्द से उनका महत्त्व व उनके अधिकार स्पष्ट है। इसी प्रकार 'दम्पती' शब्द से भी समानता का बोध होता है। दोनो ही घर के स्वामी थे।

प्राचीन भारत स्त्रियो को बहुत महत्त्व देता था। जितने आदर्श स्वरूप देवी-देवताओ की मान्यता थी, उनमे स्त्री रूप का महत्त्व भी विचारणीय है। विद्या की देवी सरस्वती, धन की लक्ष्मी, सौंदर्य की रति, पवित्रता की गगा आदि। इनके अलावा भी काली महाकाली, दुर्गा, पार्वती आदि कई देवियो की उपासना की जाती थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि उस समय स्त्रियो को बहुत पवित्र उज्ज्वल दृष्टि से देखा जाता था। वर्तमान मे भी इन देवियो को काफी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। बडी पवित्रता से इनकी पूजा की जाती है। वेदो मे एक स्थान पर कहा गया है कि, 'हे वधू! जहा पर तू व्याही गई है, वहा की तू पूर्ण रूप से साम्राज्ञी है, वह तेरा ही साम्राज्य है, तेरे समस्त कुटुम्बीजन उस राज्य मे सन्तुष्ट रहे।'

इस प्रकार परिवार मे वधू का स्थान काफी ऊचा था। पर्दे की प्रथा तो उस समय नाम मात्र को भी न थी। स्त्रिया धार्मिक वादविवादो मे निसकोच भाग लिया करती थी। विदुषी गार्गी का उदाहरण देना इसके लिए पर्याप्त होगा। महिलाएं राजकार्य मे भी भाग लिया करती थी। बहुत समय बाद तक भी यह प्रथा प्रचलित रही। राज्यश्री बराबर राजसभा

मे उपस्थित रहती थी तथा परामर्श भी देती थी ।

स्त्रिया उच्च शिक्षा भी प्राप्त करती थी । कालीदास तथा उसकी पत्नी की प्रारम्भिक कथा बहुत प्रचलित है । गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा आदि कई ऋषिकाए थी, जिन्होने वेदों की ऋचाए भी लिखी हैं । जैन शास्त्रो मे भी ऐसी महिलाओ के नाम भरे पडे हैं जो बडी विदुषी थी । चन्दनबाला, मृगावती, ब्राह्मी, सुन्दरी आदि १६ सतिया तो थी ही, इनके अलावा भी कई आर्याए थीं, जो बडी विदुषी थीं । आजकल के कुछ लोग चाहे इन बातो पर विश्वास न करें, पर इनसे स्त्रियो की समानता के अधिकार की सिद्धि मे बाधा नही पड सकती ।

आत्मिक विकास की दृष्टि से भी स्त्रिया पुरुषो के ही सदृश एक ही कार्यक्षेत्र मे रहती थी । याज्ञवल्क्य तथा मैत्रेयी का सवाद प्रसिद्ध है । मैत्रेयी ससार के समस्त ऐश्वर्य को तुच्छ समझती थी और अध्यात्मविकास को जीवन का सबसे बडा ध्येय मानती थी । इस प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान के साथ ही साथ धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र मे भी स्त्रियो को अच्छा स्थान प्राप्त था ।

सीताजी के दुबारा वनवास के बाद जब राजसूय यज्ञ होने लगा, तब सीताजी की उपस्थिति उस यज्ञ मे आवश्यक समझी गई । एक स्वर्ण-मूर्ति बनवा कर ही उस अभाव की पूर्ति करली गई । राज्याभिषेक के समय राजा व रानी दोनो का अभिषेक किया जाता था । माता व पिता दोनो मिलकर कन्यादान करते हैं, अकेला पिता ही कन्यादान नही कर सकता ।

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि उस समय सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक क्षेत्रो मे स्त्रियो को समान अधिकार प्राप्त

था। उनके मातृत्व के गौरव की सदैव पूजा होती थी। वे अपनी विद्वत्ता एव प्रतिभा के सस्कार अपनी सतानो पर अकित कर राष्ट्र का भार वहन करने योग्य, गुणवान तथा वीर सतान उत्पन्न कर अपना कर्त्तव्य पूर्ण करती थी।

२. मध्यकाल में स्त्री

पर धीरे-धीरे मध्यकाल मे परिस्थितिया कुछ बदलती गई। मध्यकाल मे स्त्रियो की स्वतन्त्रता उतनी न रही, जितनी प्राचीन काल मे उन्हे मिलती थी। वह पूज्य दृष्टि भी वैसी न रही। पुरुप की स्त्री के प्रति पवित्र भावधारा अब विपरीत दिशा की ओर बहने लगी। जिन आदर्शो के द्वारा देश व समाज का कल्याण हो सकता था, उन्हे लोग भूलने लग गए। पहिले स्त्रियो मे जो दिव्य गुण थे वे ही अब कमजोरियो मे परिणत होने लगे। स्त्री शारीरिक दृष्टि से पुरुप की अपेक्षा कुछ कमजोर थी, अत पुरुष उसकी रक्षा करने मे कुछ गौरव का अनुभव करता था। धीरे-धीरे आर्थिक दृष्टि से भी स्त्री के अधिकार कम हो गए। अतः पुरुष स्त्री को एक साधारण दासी के रूप मे समझने लगा। ...त्री पहिले सम्राज्ञी थी, उसका स्थान बहुत हीन हो गया। जो स्त्रिया अपनी योग्यता द्वारा समाज, धर्म व राष्ट्र का ...र कर सकती थी, वे अब कमजोरियो की खान होकर निर्बल, ...धीन व निरुपाय हो गई। प्राचीन आदर्श भी पूर्ण रूप से ... दिया गया। धीरे-धीरे परिस्थितिया और भी बिगडती गई। स्त्री की स्वतन्त्र विचारशक्ति तथा व्यक्तित्व का लोप-सा हो गया।

नये आदर्श बिना-सिर-पैर के बना लिए गए तथा प्रत्येक

क्षेत्र मे पुरुष ने अपने अधिकारो को असीम बना लिया । मनु-स्मृति मे लिखा है —

अस्वतंत्रा स्त्रियः कार्या पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् ।
विषयेषु च सज्जन्त्य सस्थाप्या आत्मनो वशे ॥
पिता॰ रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥

(स्त्री की परिस्थिति का सजीव चित्र इसमे स्पष्ट है। स्त्रियो को परतन्त्र रखना चाहिए। पुरुषो को चाहिए कि वे पत्नियो को अपने वश मे रखें। कौमारावस्था मे पिता कन्या की रक्षा करता है, यौवनावस्था मे पति रक्षा करता है तथा वृद्धावस्था मे पुत्र। स्त्रियो को स्वतन्त्रता कभी नही मिलनी चाहिए।)

स्त्रियो को सर्वदा अविश्वास की दृष्टि से देखा जाने लगा। उन्हे पुरुषो के सदृश अधिकार पाने के सर्वथा अयोग्य समझा जाने लगा। आठ प्रकार के विवाहो मे से आसुर, राक्षस तथा पैशाच भी माने गये। यदि पुरुष किसी स्त्री का जबरदस्ती अपहरण करले तो भी वह उसके साथ विवाह करने का अधिकारी है। बौद्ध सघ मे पहिले तो स्त्रियो को भिक्षुणी होने की मनाई थी पर जब उन्हे आज्ञा दे दी गई तब भिक्षुओ से अधिक कडे नियमो का निर्माण किया गया।

पहिले स्त्रिया विस्तृत, पवित्र कार्यक्षेत्र मे थी, किंतु मध्य-युग का वातावरण अत्यन्त सकुचित, विषमतायुक्त, अविश्वास-पूर्ण तथा हीन था। उनकी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक सभी प्रकार की उन्नति को रोक कर उनका स्थान घर तक ही

सीमित कर दिया गया । पति की सेवा ही उनके जीवन का एक मात्र पवित्र उद्देश्य निश्चित हो गया । कहा गया —

"पतिसेवा गुरो वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया"

पतिसेवा ही स्त्री का गुरुकुल मे रहकर शिक्षा प्राप्त करना है । गृहकार्य ही उसका यज्ञ व अग्निहोत्र है ।

पर इतना सब होते हुए भी कही-कहीं स्त्रियो के प्रति पूज्य-भाव की झलक मिलती है। जैसे —

"यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता."

अर्थात् जहा स्त्रियो का सम्मान किया जाता है, वहाँ देव-ताओ का निवास होता है । इस वाक्य मे पुराने आदर्श का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है, पर ऐसे कुछ वाक्य सिर्फ स्त्रियो की गौरव-गरिमा ही प्रकट करते रहे । उनकी स्थिति तथा अधिकारो मे कोई परिवर्तन नही हुआ ।

इस समय तक स्त्रियो की हालत काफी खराब हो चुकी थी, उनकी विद्वत्ता, व्यक्तित्व, विचारशक्ति, पाडित्य काफी क्षीण हो चुके थे पर यह सब पूर्ण रूप से नष्ट नही हुआ था । उनकी शक्तियो पर एक आवरण-सा आ गया था, जिसके कारण अपनी शक्ति व योग्यता का उचित उपयोग वे नही कर सकती थीं । बौद्ध ग्रन्थो मे कई विदुषी भिक्षुणियो का उल्लेख है ।

३. राजपूतकाल में स्त्री

राजपूतो के समय मे स्त्रियो की वीरता तथा शौर्य का

पूर्ण रूप से नाश नही हो गया था । रानी दुर्गावती, लक्ष्मीबाई आदि के उदाहरण भारतीय इतिहास मे सर्वदा अमर रहेगे । राजपूत स्त्रियो की सतीप्रथा विश्व के समक्ष भारतीय ललनाओ के त्याग व वीरत्व का ज्वलन्त उदाहरण है । मुगलो के आक्रमणो मे उनकी जीत हो जाने पर अपने सतीत्व की रक्षा के लिए वे स्वत ही अग्नि मे जलकर भस्म हो जाती थी । स्त्रियो के अनुपम जीवित त्याग के ऐसे उदाहरण विश्व मे कहीं भी नहीं मिल सकते ।

स्त्रियो की स्थिति का पतन हो रहा था पर प्राचीन आदर्शो की छाप उनमे स्पष्ट लक्षित होती है । प्राचीन युग के उन पवित्र आदर्शो को पुरुष भूलने लग गये थे पर स्त्रियो के हृदय-प्रदेश के एक कोने मे वे सदैव प्रतिध्वनित होते रहे ।

४. महिलामर्यादा का ह्रास

प्राचीन आदर्शो के बचे-खुचे अश आखिर कब तक समय व परिस्थितियो के थपेडो से अपने को सुरक्षित रख सकते थे ? शीघ्र ही वे धराशायी हो गये । स्त्री-समाज का भाग्य-सितारा भी अस्त हो गया । उन्हे परतन्त्रता की बेडियो मे अच्छी तरह जकडा गया । उनके समस्त अधिकार छीन लिये गये । परिवार तथा समाज मे स्त्रियो का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही रह गया । समाज के अत्याचारो व अन्यायो से वे पूरी तरह ग्रस्त हो गईं । पग-पग पर कठोर यातनाए सहते हुए भी उनकी आहे समाज का हृदय द्रवित न कर सकी । मानव न समझकर पशुओ की तरह उनके साथ व्यवहार किया गया । कही-कही तो पशुओ से भी

बुरी हालत उनकी हो गई । जानवरो को भी कम से कम पूरा परिश्रम करने पर भर पेट भोजन प्रेम से प्राप्त हो ही जाता है पर स्त्रियो को वह भी दूभर हो गया ।

जहा पहले 'गृहसम्राज्ञी' 'गृहस्वामिनी' आदि आदर-सूचक शब्दो द्वारा उनका सम्मान किया जाता था, वहा मनुष्य स्त्रियो के लिये 'पैर की जूती' जैसे अनादर वाचक शब्दो का प्रयोग करते हुए भी लज्जा का अनुभव न कर अपने को अधिक पुरुषत्वमय समझने लगे । इसे निरी पशुता न समझी जाय तो और क्या समझा जाय ?

पुरुष, स्त्री व समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यो को तो भूल ही गए थे, वे स्त्री को एक मनोविनोद व सुख का साधन मात्र समझने लगे । जो स्त्री जितना अधिक पुरुष को शारीरिक या वैषयिक आनन्द प्रदान कर सके, उतनी ही वह उसकी प्रेमपात्री रही । जो आत्मसमर्पण द्वारा पुरुष की कामलिप्सा को पूर्ण नही कर सकी, उनके साथ वहुत अमानुपिक व्यवहार किया जाने लगा ।

बाल-विवाह की प्रथा भी स्त्री जाति के पतन मे बहुत सहायक हुई ।

"अष्टवर्षा भवेद् गौरी, नववर्षा तु रोहिणी,
दशवर्षा भवेत् कन्या, अत ऊर्ध्व रजस्वला ।"

यह सिद्धान्त लोगो को बहुत मान्य एवं रुचिकर प्रतीत हुआ । कन्याओ को गुणवती व शिक्षित बनाना तो अलग रहा अल्पवय मे उनका विवाह करना ही उन्हे सबसे अधिक हितकर प्रतीत हुआ, मानो विवाह के अलावा विश्व मे लडकियो के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तु है ही नही । इस अज्ञानता का प्रभाव बहुत

दूषित रहा । जहा दो चार वर्षों की उम्रवाली कन्याओ के विवाह होने लगे, वहा आठ–दस वर्ष की उम्र वाली विधवाओं की कमी न रही । जिस अवस्था मे वे दूधमु ही अबोध बालिकाए सरलता–वश विवाह को समझती भी नही, उसी उम्र मे उनका विधवा हो जाना कितना दयनीय होगा !

ऐसी परिस्थितियो मे आजन्म ब्रह्मचर्य पालन भी असम्भव है । ब्रह्मचर्य कोई जवरदस्ती की वस्तु नही । मानव सुलभ भाव–नाओ को तो नही दवाया जा सकता । जहा बडे भारी तपस्वी सदाचारी विश्वामित्र भी मेनका के समक्ष कामवासना को वश मे न कर सके, वहा इन भोली–भाली कन्याओ से क्या आशा की जा सकती है कि वे अपने सदाचरण द्वारा अपने हृदय को पवित्र व निष्कलक रख सकें । परिणामस्वरूप समाज मे दुराचार व वेश्यावृत्ति बढने लगी । आर्थिक विषमता भी इसमे काफी सहा–यक रही ।

पहिले जब स्त्रिया सुशिक्षित तथा सुसस्कृत थी, वे विवा–हित जीवन तथा पतिव्रत के आदर्श को समझ कर उसके अनुसार आचरण करने का पूर्ण प्रयत्न करती थी । उसी के फल–स्वरूप पति की मृत्यु के उपरात अपने जीवित रहने की अपेक्षा मृत्यु का आलिगन अधिक उपयुक्त समझ कर अपने आपको अग्नि मे जला कर भस्म कर देती थी । यद्यपि यह धारणा या प्रथा घोर अज्ञान का ही फल थी, मगर विल्कुल स्वेच्छा से थी । किसी भी प्रकार की जवर्दस्ती इस सम्वन्ध मे करना अनुचित समझा जाता था । क्योकि जवर्दस्ती किसो स्त्री को जल मरने के लिए वाध्य करना मानवहिंसा से किसी भी हालत मे कम न था । पर धीरे–धीरे लोग पाशविकता की सीमा का भी उल्लघन कर बैठे । पति की

मृत्यु के साथ-साथ पत्नी को भी चिता मे जलाने के लिए विवश कर दिया जाने लगा। एक तरफ अबोध, पर्दे मे बन्द पराधीनता मे जकडी हुई, पुरुष के अत्याचारो से त्रस्त बालिकाओ का करुण क्रन्दन और दूसरी ओर विधवाओ के रुदन तथा चिता पर बैठी हुई बालिकाओ की करुण चीत्कारो से समाज का अणु-अणु सिहर उठा। धीरे-धीरे इन पाशविक अत्याचारो की प्रतिक्रिया के लिए पुकारें उठने लगी।

वर्त्तमान युग में महिला

किन्ही बुराइयो को दूर करते हुए, किन्ही अंशो मे समाज-सुधार की आवाजें उठाते हुए वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है। बहुत कुछ सुधार होना प्रारम्भ हो रहा है, पर जैसा होना चाहिए वैसा नही। सती प्रथा को बन्द कर दिया गया। इसके आदोलन को उठाने वाले सर्वप्रथम राजा राममोहन राय थे। ऐसी पाशविक क्रूरताए मानव समाज के लिए अत्यन्त लज्जास्पद थी, अत सरकार को इसके विरुद्ध नियम बनाने को बाध्य किया गया।

बालविवाहो को रोकने के लिए भी प्रयत्न किए गए। 'शारदा एक्ट' के द्वारा ये गैर-कानूनी घोषित हो गए। आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए भी आवाजें उठाई गई। पैतृक सम्पत्ति मे स्त्रियो के अधिकार का प्रश्न भी आजकल महत्त्वपूर्ण हो रहा है।

इस प्रकार स्त्रियो के अधिकारो की प्राप्ति के लिए बडे जोरो से प्रयत्न हो रहा है। इस युग को प्रतिक्रिया का युग कहे तो अतिशयोक्ति न होगी। स्त्री-समाज भी सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक क्षेत्र मे अपने अधिकारो के लिए लालायित है। हीन

मनोवृत्ति तथा अत्याचार बर्दाश्त करने के लिए अब स्त्रिया तैयार नही हैं। पुरुषो के बराबर ही रहना उनकी शिक्षा का मुख्य ध्येय है। कम से कम, शिक्षित स्त्रिया तो पुरुषों के अधीन रहना कभी पसन्द नही करती। वे देश व समाज के प्रश्नो को हल करने के लिए पुरुषो के समान ही अपने को सिद्ध करना चाहती हैं। उच्च शिक्षिताओ के सिवाय साधारण शिक्षिता स्त्रिया भी अपने अधिकारो को समझने लगी हैं। आधुनिक राजनीतिक तथा सामाजिक आदोलनो मे सभी प्रकार की स्त्रियो का भाग लेना इसी मनोवृत्ति का परिचायक है।

भविष्य

स्त्री और पुरुष समाज के दो अविभाज्य अग हैं। दोनों की समान रूप से उन्नति और जागृति के बिना समाज की उन्नति असम्भव है क्योकि अशिक्षिता एव पिछडी हुई स्त्री-जाति राष्ट्र के लिए गुणवान एव वीर सन्तान उत्पन्न नही कर सकती। अत: स्त्री जाति का उत्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह भी निश्चित है कि परतन्त्रता मे कभी भी सुख और उन्नति नही हो सकती। अत स्वतन्त्र वातावरण ही जागृति के क्षेत्र का पहला कदम होगा। कई लोगो की दृष्टि मे सम्भवत स्त्री-स्वतन्त्रता अनुपयुक्त हो पर किसी भी दृष्टिकोण से यह भावना दूषित नही। पर यह आवश्यक है कि स्वतन्त्रता का अनुचित उपयोग न हो। यह तो जागृति का एक साधन मात्र है, अन्तिम लक्ष्य नही। भारतीय आदर्श को समझना तथा उसके अनुसार आचरण करना ही स्वतन्त्रता का सफल परिणाम होगा। स्वतन्त्रता के भारतीय और पाश्चात्य आदर्शों मे बहुत विभिन्नता है। पाश्चात्य सभ्यता मे स्वतन्त्रता अनियन्त्रित तथा ऊचे आदर्शों से रहित है। आध्यात्मिक सुखों को त्याग कर

शारीरिक सुख-प्राप्ति ही उसका लक्ष्य है। मानवसुलभ गुण जैसे विनय, लज्जा धैर्य आदि को वहा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नही। ऐसा दृष्टिकोण भारतीय सस्कृति से मेल नही खाता। योरोप मे सामाजिक जीवन मे चाहे जैसी सफलता हो पर भारतवर्ष मे इन सिद्धान्तो के अनुसार सफल गृहस्थ जीवन नही हो सकता तथा आध्यात्मिक रुचि तो इसमे कम से कम पैदा नही की जा सकती और वही भारतीय आदर्श का प्राण है। भारत की उच्च शिक्षिता स्त्रिया इसी पाश्चात्य सस्कृति के प्रवाह मे बही जा रही है। वे नाना प्रकार की विभिन्न विलास सामाग्रियो से अपने को सुसज्जित रखने मे ही अपनी शिक्षा और योग्यता का उद्देश्य समझती है। वे सीता और सावित्री बनने की अपेक्षा सिनेमा-अभिनेत्री बन कर अपने सौन्दर्य तथा अश्लील अभिनय एव नृत्यो द्वारा जनता को आकर्षित करने मे ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझती हैं। कला की उपासना और अश्लील सौन्दर्य प्रदर्शन भिन्न वस्तु हे।

इस प्रकार की स्वतन्त्रता आध्यात्मिकता से दूर रखकर विलासिता सिखाती है, मर्यादा का उल्लंघन कर अनियन्त्रित उच्छृ-खलता को प्रेरित करती है। यह भारतीय आदर्श के सर्वथा विप-ी है। पाश्चात्य सभ्यता का ऐसा अधानुसरण भारत के लिए ितकर सिद्ध नही हो सकता।

योरोप मे महिलाओ को प्रारम्भ से ही आजीविका की चिंता करनी पडती है। उनकी शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य धनोपार्जन ही होता है। ऐसी अवस्था मे स्त्री और पुरुष दोनो प्रतिद्वन्द्वी हो जाते हैं। भारतीय गार्हस्थ्य व्यवस्था के समान पूर्ण रूप से सुचारु कार्य विभाजन न होने से वहा कौटुम्बिक जीवन मे शाति एव सुख का अभाव है।

पुरुष और स्त्री की स्पर्धा मे ही स्वार्थ-भावना अंतर्हित हो जाती है । न पुरुष-स्त्री के लिए स्वार्थ त्याग कर सकता है और न स्त्री, पुरुष के लिए । जहा इतने भी आत्मसमर्पण की भावना न हो, वहां दाम्पत्य जीवन कैसे सुखी और सन्तुष्ट हो सकता है ? केवल आर्थिक स्वतन्त्रता ही तो जीवन को सुखमय वनाने के लिए पर्याप्त नहीं । किन्ही परिस्थितियो मे यह दम्पती के हृदय मे वैमनस्य बढाने मे सहायक भी हो सकती है । वहा स्त्री जाति की स्वतन्त्रता ही ने पारिवारिक सुखो पर पानी सा फेर दिया है । महिलाएं उसका उचित उपयोग नहीं करती । जहा दोनो के हृदयो मे एक दूसरे के प्रति तनिक-सी भी त्याग और वलिदान की भावना न हो, वहा कौटुम्बिक जीवन मे सरसता की आशा किस प्रकार की जा सकती है ? विचारो की थोडी सी विभिन्नता शीघ्र ही हृदयो मे कटुता व मलिनता उत्पन्न कर सकती है । योरोप मे ऐसी परिस्थितिया अत्यन्त भीषण रूप धारण कर खडी हैं । वहा विचारक गण अपने मस्तिष्क की शक्ति को इन समस्याओ को सुलझाने मे लगा रहे हैं, पर यह विषय मस्तिष्क का न होकर हृदय का है । जब तक समाज की, विशेष रूप से महिलाओ की, मनोवृत्तियो मे परिवर्तन नही हो जाता, कौटुम्बिक जीवन मे सुधार की आशा असम्भव है ।

ठीक ऐसी ही परिस्थितिया अभी भारतवर्ष मे होती जा रही हैं । ज्यो-ज्यो स्त्री शिक्षा का प्रचार होता जा रहा है, महिलाओ की सामाजिक व आर्थिक स्वतन्त्रता के नारे लगाए जा रहे हैं । पाश्चात्य सभ्यता की चमक भारतीय महिलाओ के सरल नेत्रो मे एक विचित्र सा जादू कर रही है वे चकाचौंध होकर स्थिर दृष्टि से कुछ सोच भी नही सकती । अभी तक तो यही दिखलाई पड रहा हैं कि हमारी शिक्षा पाश्चात्य सभ्यता की ओर जा रही है । कोई

आर्थिक स्वतन्त्रता से जीवन में जो नीरसता तथा कर्कशता आ सकती है, उसी के लक्षण यहा भी दिखाई पडने लग गए हैं । सम्भवत इस प्रकार की शिक्षा दाम्पत्य-जीवन को सरस एव सुन्दर बनाने मे अपूर्ण रहेगी । शिक्षिता स्त्रियां स्वाभाविक रूप से पहिले से ही कुछ आत्म-गौरव का अनुभव करती हैं, जिसके कारण पति के प्रति सहज प्रेम और वह आदर भाव नही होता, जो सफल दाम्पत्य-जीवन का प्राण है ।

हमे विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रम की शिक्षा के अलावा ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए जो क्रियात्मक रूप से सरस कौटुम्बिक जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके । केवल अर्थ-प्राप्ति ही तो जीवन को सुखी नही बना सकती । निर्धन पुरुष भी श्रीमन्तो की अपेक्षा अधिक सन्तुष्ट, निश्चिन्त तथा सुखी रह सकते हैं । प्रश्न तो हृदय मे प्रेम और सहानुभूति का है । जहा पवित्र प्रेम हो, वहा कैसी भी परिस्थिति मे जीवन सरस रहता है ।

हम अभी यह अनुभव नही कर रहे हैं कि आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ स्त्री के प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र मे प्रवेश करने पर उसकी भावनाओ मे स्वार्थपरता आने की अधिक सम्भावना है, ठीक योरोप की तरह । लेकिन स्त्रियो को तो आत्मसमर्पण, प्रेम और त्याग की सजीव प्रतिमा होना चाहिए । आर्थिक प्रश्न तो यहा उपस्थित ही नही होना चाहिए । जीवन के इन बहुमूल्य गुणो को खोकर थोडी सी स्वतन्त्रता प्राप्त की तो वह बिल्कुल नगण्य है । इन गुणो से जीवन मे जो शाति, सुख, सन्तोष एव सरसता प्राप्त हो सकती है, वह बहुत सा अर्थ सचय करने मे भी नही । भौतिक-वादी दृष्टिकोण से अर्थ को ही जीवन की सबसे मुख्य वस्तु समझ लेना बड़ी भारी भूल है । स्त्री जाति को इससे दूर रखने की

आवश्यकता है । उनके लिए सब से मुख्य वस्तु तो प्रेम, सहानुभूति, आत्म-समर्पण तथा विनय द्वारा आदर्श पत्नी तथा आदर्श माता बनकर राष्ट्रोत्थान के लिए वीर, तथा गुणवान सन्तान उत्पन्न करने मे ही जीवन की सार्थकता है ।

महिला-महिमा

स्त्रियो को हीन समझ लेने से ही आज भारत के प्राचीन गौरव से लोग हाथ धो बैठे हैं । जिस समय भारत उन्नति के पथ पर था, उस समय का इतिहास देखने से पता लग सकता है कि तब स्त्रियो को किस उच्च दृष्टि से देखा जाता था और समाज मे उनका कितना ऊचा स्थान था । पश्चात् जैसे-जैसे पुरुष स्त्रियो का सम्मान कम करते गए, वैसे-वैसे ही स्वय अपने सम्मान को भी नष्ट करते गए । राष्ट्र मे नवीन चैतन्य आना स्त्रियो की उन्नति पर ही निर्भर है ।

कई लोगो ने स्त्री समाज को पगु कर रखा है, या यो कहो कि पगु बना रखा है । यही कारण है कि यहा सुधार आदोलनो मे पूरी सफलता नहीं होती । यदि स्त्रियो को इस प्रकार तुच्छ न समझ कर उन्हे उन्नत बना दिया जाय, तो जो सुधार आदोलन आज अनेक प्रयत्न करने पर भी असफल रहते हैं, फिर उनके असफल होने का कोई कारण ही न रहे ।

स्त्रियो की शक्ति कम नही है । जैन शास्त्र मे वर्णन है कि स्त्रियो की स्तुति स्वय इन्द्रो ने की है और उन्हे साक्षात् देवी कहकर त्रिलोकी मे उत्तम बताया है । त्रिलोकीनाथ को जन्म देने वाली स्त्रिया ही हैं भगवान् महावीर ऐसे को उत्पन्न करने का सौभाग्य इन्हीं को प्राप्त है ।

आर्थिक स्वतन्त्रता से जीवन में जो नीरसता तथा कर्कशता आ सकती है, उसी के लक्षण यहा भी दिखाई पडने लग गए हैं। सम्भवत इस प्रकार की शिक्षा दाम्पत्य-जीवन को सरस एव सुन्दर बनाने मे अपूर्ण रहेगी। शिक्षिता स्त्रिया स्वाभाविक रूप से पहिले से ही कुछ आत्म-गौरव का अनुभव करती हैं, जिसके कारण पति के प्रति सहज प्रेम और वह आदर भाव नहीं होता, जो सफल दाम्पत्य-जीवन का प्राण है।

हमे विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रम की शिक्षा के अलावा ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए जो क्रियात्मक रूप से सरस कौटुम्बिक जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। केवल अर्थ-प्राप्ति ही तो जीवन को सुखी नही बना सकती। निर्धन पुरुष भी श्रीमन्तो की अपेक्षा अधिक सन्तुष्ट, निश्चित तथा सुखी रह सकते हैं। प्रश्न तो हृदय मे प्रेम और सहानुभूति का है। जहा पवित्र प्रेम हो, वहा कैसी भी परिस्थिति मे जीवन सरस रहता है।

हम अभी यह अनुभव नही कर रहे हैं कि आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ स्त्री के प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र मे प्रवेश करने पर उसकी भावनाओ मे स्वार्थपरता आने की अधिक सम्भावना है, ठीक योरोप की तरह। लेकिन स्त्रियो को तो आत्मसमर्पण, प्रेम और त्याग की सजीव प्रतिमा होना चाहिए। आर्थिक प्रश्न तो यहां उपस्थित ही नही होना चाहिए। जीवन के इन बहुमूल्य गुणो को खोकर थोडी सी स्वतन्त्रता प्राप्त की तो वह बिल्कुल नगण्य है। इन गुणो से जीवन में जो शाति, सुख, सन्तोष एव सरसता प्राप्त हो सकती है, वह बहुत सा अर्थ सचय करने मे भी नही। भौतिक-वादी दृष्टिकोण से अर्थ को ही जीवन की सबसे मुख्य वस्तु समझ लेना बड़ी भारी भूल है। स्त्री जाति को इससे दूर रखने की

आवश्यकता है । उनके लिए सब से मुख्य वस्तु तो प्रेम, सहानुभूति, आत्म-समर्पण तथा विनय द्वारा आदर्श पत्नी तथा आदर्श माता बनकर राष्ट्रोत्थान के लिए वीर, तथा गुणवान सन्तान उत्पन्न करने मे ही जीवन की सार्थकता है ।

महिला-महिमा

स्त्रियो को हीन समझ लेने से ही आज भारत के प्राचीन गौरव से लोग हाथ धो बैठे हैं । जिस समय भारत उन्नति के पथ पर था, उस समय का इतिहास देखने से पता लग सकता है कि तब स्त्रियो को किस उच्च दृष्टि से देखा जाता था और समाज मे उनका कितना ऊचा स्थान था । पश्चात् जैसे-जैसे पुरुष स्त्रियो का सम्मान कम करते गए, वैसे-वैसे ही स्वय अपने सम्मान को भी नष्ट करते गए । राष्ट्र मे नवीन चैतन्य आना स्त्रियो की उन्नति पर ही निर्भर है ।

कई लोगो ने स्त्री समाज को पगु कर रखा है, या यो कहो कि पगु बना रखा है । यही कारण है कि यहा सुधार आदोलनो मे पूरी सफलता नहीं होती । यदि स्त्रियो को इस प्रकार तुच्छ न समझ कर उन्हे उन्नत बना दिया जाय, तो जो सुधार आदोलन आज अनेक प्रयत्न करने पर भी असफल रहते हैं, फिर उनके अस-फल होने का कोई कारण ही न रहे ।

स्त्रियो की शक्ति कम नही है । जैन शास्त्र मे वर्णन है कि स्त्रियो की स्तुति स्वय इन्द्रो ने की है और उन्हे साक्षात् देवी कहकर त्रिलोकी मे उत्तम बताया है । त्रिलोकीनाथ को जन्म देने वाली स्त्रिया ही हैं भगवान् महावीर ऐसे को उत्पन्न करने का सौभाग्य इन्हीं को प्राप्त है ।

स्त्री पुरुष का आधा अंग है, अत उस अंग के निर्बल होने से अनिवार्य रूप से ही पुरुष निर्बल होगा। ऐसी स्थिति मे पुरुष समाज की उन्नति के लिए जितने भी उद्योग करते हैं, वे सब असफल ही रहेगे, अगर उन्होने पहले महिला-समूह की उन्नति व स्थिति सुधारने का प्रयत्न न किया।

मैं समभाव का व्यवहार करने के लिये कहता हू। इसका अभिप्राय यह नही है कि स्त्रियों को पुरुषो के अधिकार दे दिये जाय। मेरा आशय यह है कि स्त्रियो को स्त्रियो के अधिकार देने मे कृपणता न की जाय। नर और नारी मे प्रकृति ने जो विभेद कर दिया है, उसे मिटाया नही जा सकता। अतएव कर्त्तव्य मे भी भेद रहेगा ही। कर्त्तव्य के अनुसार अधिकारो मे भी भेद भले ही रहे मगर जिस कर्त्तव्य के साथ जिस अधिकार की आवश्यकता है, वह उन्हे सौंपे बिना वे अपने कर्त्तव्य का पूरी तरह निर्वाह नही कर सकती।

पुरुष जाति को स्त्री जाति ने ज्ञानवान् और विवेकी बनाया है। फिर किस बूते पर पुरुष इतना अभिमान करते हैं? बिना किसी कारण के एक उपकारिणी जाति का अपमान करना, उसका तिरस्कार करना महाधूर्तता और नीचता है। पुरुषो की इन्ही करतूतों से आज समाज रसातल की ओर जा रहा है। प्रकृति के नियम को याद रखे बिना और स्त्री जाति के उद्धार के बिना समाज का उद्धार होना कठिन ही नही, वरन् असम्भव है।

कभी-कभी विचार आता है—धन्य है स्त्री जाति! जिस काम को पुरुष घृणित समझता है और एक बार करने मे भी हाय तोबा मचाने लग जाता है, उससे कई गुना अधिक कष्टकर कार्य स्त्री जाति हर्षपूर्वक करती है। वह कभी नाक नहीं सिकोडती। मुह से कभी 'उफ' तक नही करती। वह चुपचाप अपना कर्त्तव्य

समझकर अपने काम मे जुटी रहती है । ऐसी महिमा है, स्त्री जाति की । स्त्री जाति जिसका एक बार हाथ पकड लेती है, जन्म भर के लिये उसी की हो जाती है । फिर भी निष्ठुर पुरुषो ने उसे नरक का द्वार बतला कर अपने वैराग्य की घोषणा की है । अनेक ग्रन्थ-कारो ने स्त्री जाति को नीचा बतलाया है । वे यह क्यो नही सोचते कि पुरुष के वैराग्य मे अगर स्त्री बाधक है तो स्त्री के वैराग्य मे क्या पुरुष बाधक नही है ? फिर क्यो एक की कडी से कडी भर्त्सना और दूसरे को दूध का धुला बताया जाता है ? इस प्रकार की बातें पक्षपात के अतिरिक्त और क्या हैं ?

२

ब्रह्मचर्य

१–स्त्रियां और ब्रह्मचर्य

'किन्नाप्नोति रमारूपा ब्रह्मचर्य-तपस्विनी'

'उस लक्ष्मीस्वरूपा स्त्री के लिए कुछ भी असम्भव नही, जो ब्रह्मचर्य-तप की तपस्विनी है।'

कुछ लोगो का कथन है कि स्त्रियो को पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना उचित नही, लेकिन जैन शास्त्र इस कथन के बिल्कुल समर्थक नही, अपितु विरोधी हैं। उनमे जैसे पुरुषो के लिए ब्रह्मचर्य का उपदेश है बिल्कुल वैसा ही स्त्रियो के लिए भी है। जैन शास्त्रो का यह आदेश कई महान् महिलाओ के आदर्श के अनुकूल है। ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की भगवान् ऋषभदेव की दोनो सुपुत्रियो ने आजीवन ब्रह्मचारिणी रह कर संसार की स्त्रियो के सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार राजीमती और चन्दनबाला आदि सतियो ने भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया था। इस प्रकार जैन शास्त्रो मे स्त्री और पुरुष दोनो को समान रूप से ब्रह्मचर्य-पालन का आदेश है। स्त्रिया ब्रह्मचारिणी न हो, वे ब्रह्म-

चर्य का पालन न करें, यह कथन जैन शास्त्रों से सर्वथा विपरीत है। उन पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाना अनुचित है। स्त्री हो या पुरुष, जो ब्रह्मचर्य का पालन करेगा, उसे उसका फल अवश्य ही प्राप्त होगा।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रिया ब्रह्मचर्य का पालन भी अधिक सुचारु रूप से कर सकती हैं। जैन शास्त्रों मे ऐसी कई महिलाओ के उदाहरण हैं, जिन्होने अपने ब्रह्मचर्य व्रत से कई पतित पुरुषों को ब्रह्मचर्य पर स्थिर किया है, राजीमती ने रथनेमि को पतित होने से बचाया था।

जिस प्रकार पुरुषो को अब्रह्मचर्य से हानियां होती हैं, उसी प्रकार स्त्रियो को बालविवाह, अतिमैथुन आदि से नुकसान होता है। इसके विपरीत ब्रह्मचर्य के पालन से स्त्रियो को सभी प्रकार का लाभ होता है।

२–ब्रह्मचर्य का स्वरूप

मन का कार्य इन्द्रियो को सुख देना नहीं किन्तु आत्मा को सुख देना है और इन्द्रियो को भी उन्ही कामो मे लगाना है, जिनसे आत्मा सुखी हो। इन्द्रियो और मन का, इस कर्त्तव्य को समझ कर इस पर स्थिर रहना, इसी का नाम ब्रह्मचर्य है। गाधीजी ने ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध मे लिखा है।—

"ब्रह्मचर्य का अर्थ सभी इन्द्रियो और सभी विकारों पर पूर्ण अधिकार कर लेना है। सभी इन्द्रियो तन, मन और वचन से सब समय और सब क्षेत्रो मे सयम करने को 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं।"

यद्यपि सब इन्द्रियो और मन का दुर्विषयो की ओर न

दौडना ही ब्रह्मचर्य है परन्तु व्यवहार में मैथुन-सेवन न करने को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं।

ब्रह्मचर्य मन, वचन और शरीर से होता है इसलिए ब्रह्मचर्य के तीन भेद हो जाते है—मानसिक ब्रह्मचर्य, वाचिक ब्रह्मचर्य और शारीरिक ब्रह्मचर्य। मन, वचन और काय इन तीनो द्वारा पालन किया गया ब्रह्मचर्य ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है। अर्थात् न मन मे ही अब्रह्म-चर्य की भावना हो, न वचन द्वारा ही अब्रह्मचर्य प्रकट हो और न शरीर द्वारा ही अब्रह्मचर्य की क्रिया की गई हो, इसका नाम पूर्ण ब्रह्मचर्य है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे कहा है—

कायेन मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो, ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते।

'शरीर, मन और वचन से, सब अवस्थाओ मे, सर्वदा और सर्वत्र मैथुनत्याग को ब्रह्मचर्य कहा है।'

कायिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव मे, शरीर द्वारा अब्रह्मचर्य की कोई क्रिया न की गई हो। यानी, शरीर से अब्रह्म-चर्य मे प्रवृत्ति न हुई हो। मानसिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव मे दुर्विषयो का चिंतन न किया जाय अर्थात् मन मे अब्रह्मचर्य भावना भी न हो। वाचिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव मे, अब्रह्मचर्य सम्बन्धी वचन न कहा जाय। इन तीनो प्रकार के ब्रह्म-चर्य के सद्भाव को—यानी इन्द्रियो और मन का दुर्विषयो की ओर न दौड़ने को पूर्ण ब्रह्मचर्य कहते हैं।

कायिक; मानसिक और वाचिक ब्रह्मचर्य का परस्पर कर्ता, क्रिया और कर्म का-सा सम्बन्ध है। पूर्ण ब्रह्मचर्य वही हो सकता है, जहां उक्त प्रकार के तीनो ब्रह्मचर्य का सद्भाव हो। एक के अभाव मे,

दूसरे और तीसरे का एक दम से नहीं तो शनै. शनैः अभाव होना स्वाभाविक है ।

सक्षेप मे, इन्द्रियों का दुर्विषयो से निवृत्त होने, मन का दुर्विषयों की भावना न करने, दुर्विषयो से उदासीन रहने, मैथुनागो सहित सव प्रकार के मैथुन त्यागने और पूर्णरीति से,वीर्यरक्षा करने एव कायिक वाचिक और मानसिक शक्ति को आत्मचिंतन, आत्म-हित-साधन तथा आत्म-विद्याध्ययन मे लगा देने ही का नाम ब्रह्मचर्य है ।

३—ब्रह्मचर्य के लाभ

'तवेसु वा उत्तमं बम्भचेरं'

(सूत्रकृतांगसूत्र)

'ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है'

आत्मा का ध्येय, संसार के जन्म—मरण से छूट कर मोक्ष प्राप्त करना है। आत्मा, इस ध्येय को तभी प्राप्त कर सकता है जव उसे शरीर की सहायता हो—अर्थात् शरीर स्वस्थ हो। बिना शरीर के धर्म नही हो सकता और धर्म के अभाव मे आत्मा अपने उद्देश्य की पूर्ति मे समर्थ नही । उसे इसके लिए शरीर की आवश्यकता है और उसका भी आरोग्य होना आवश्यक है। अस्वस्थ और रोगी शरीर धर्म—साधन मे उपयुक्त नहीं होता ।

ब्रह्मचर्य—पालन से शरीर स्वस्थ रहता है और रोग पास भी नही फटकने पाता । जैन शास्त्रो मे यह एक आवश्यक व्रत है । इसके लिए प्रश्न व्याकरण सूत्र मे कहा है —

"पउमसरतलागपालिभूयं, महासगडअरगभूयं, तुम्बभूयं, महानगरपागारकवाडफलिहभूयं, रज्जुपिणद्धोव्व इन्दकेऊ, विसुद्धणेगगुणसंपिणद्धं जम्मि य भग्गम्मि होइ सहसा सव्वं

संभग्गमट्टियचुणिय कुसल्लियपल्लट्टपडियखंडियपरिसडिय विणासिय विणय सीलतवनियमगुणसमूहं ।"

'ब्रह्मचर्य, धर्मरूप पद्म सरोवर का, पाल के समान रक्षक है। यह दया, क्षमा आदि गुणो का आधार एवं धर्म के अगो का आधारस्तभ है । ब्रह्मचर्य धर्म रूपी नगरी का कोट और मुख्य रक्षाद्वार है। ब्रह्मचर्य के खण्डित हो जाने पर सभी प्रकार के धर्म पर्वत से नीचे गिरे मृत्तिका के घट सदृश चकनाचूर होकर नष्ट हो जाते हैं।

मोक्ष के प्रधान साधनो में ब्रह्मचर्य का स्थान महत्त्वपूर्ण है । प्रश्नव्याकरण सूत्र मे और भी कहा है—

जम्बू ! एत्तो य बम्भचेरं तव-नियम-नाण
दंसण-चरित्त-सम्पत्तं विणय-मूलं ।।
यमनियम गुणप्पहाणजुत्तं हिमवत महंत-
तेयमंत पसत्थं गम्भीरथिमियमज्झं ।।

हे जम्बू ! ब्रह्मचर्य उत्तप तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, और विनय का मूल है । जिस प्रकार अन्य समस्त पहाडो हिमालय सबसे महान् और तेजवान् है, उसी प्रकार सब तपो मे ब्रह्मचर्य उत्तम है ।

अन्य ग्रन्थो मे भी ब्रह्मचर्य को बहुत महत्त्व दिया गया है। इससे परलोक सम्बन्धी लाभ भी प्राप्त होता है । कहा है :—

समुद्रतरणे यद्वत् उपायो नौः प्रकीर्तिता ।
संसारतरणे तद्वत् ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम् ।।

—स्मृति

समुद्र तरने का उपाय जिस प्रकार नौका है, उसी तरह संसार से पार उतरने के लिए, ब्रह्मचर्य सर्वश्रेष्ठ साधन है ।

भवोदधि पार कर मोक्ष मे जाने के लिए भगवान् ने जिन पाच महाव्रतो को बताया है, उनमे ब्रह्मचर्य चौथा है । इसके बिना मनुष्य का चारित्र नही सुधर सकता । मोक्ष प्राप्ति मे सहायक चारित्र धर्म का ब्रह्मचर्य अविभाज्य अ ग है ।

पारलौकिक लाभ मे जिन्हे अविश्वास हो, उनके लिए भी ब्रह्मचर्य हेय नही । इससे इहलौकिक लाभ भी बहुत होते हैं । सांसारिक जीवन मे शरीर स्वस्थ, पवित्र, निर्मल, बलवान्, तेजस्वी और सुन्दर रहता है । चिरायु रहने की, विद्या की, धन की कार्य-क्षमता और कर्त्तव्य दृढता की भावना सदैव रहती है । जीवन निराशामय कभी नही होता । प्रत्येक कार्य मे सफलता प्राप्त होती है।

४—अब्रह्म

ब्रह्मचर्य को विधिवत् पालने के लिए मैथुन के समस्त अ गों का परित्याग करना आवश्यक है ! मैथुन के अ ग इस प्रकार बताए गए हैं —

'स्मरण कीर्त्तनं केलि प्रेक्षण गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टागं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेषाष्टलक्षणम् ॥'

'स्मरण, कीर्तन, केलि, अवलोकन, गुप्त भाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रियानिष्पत्ति, ये मैथुन के अ ग हैं। इन लक्षणों से विपरीत रहने का नाम ब्रह्मचर्य है ।

देखे हुए या सुने हुए पुरुषो को याद करना, उनके सौदर्य को देखकर या प्रशंसा सुन कर उसे याद करना 'स्मरण' है। पुरुषो की प्रशसा करना, उनके सम्बन्ध मे वार्तालाप करना उनके सौन्दर्य, यौवन आदि के सम्बन्ध मे बातचीत करना 'कीर्त्तन' है। पुरुषो के साथ किसी प्रकार के खेल खेलना 'केलि' मैथुन का तीसरा अग है। काम-सेवन की दृष्टि से पुरुषो की ओर दृष्टिपात करना 'प्रेक्षण' है। पुरुषो से छिप-छिप कर प्रेमालाप करना 'गुह्यभाषण' मैथुन का पचम अ ग है। पुरुष सम्बन्धी कामभोग भोगने का विचार करना 'सकल्प' है। पुरुष प्राप्ति की चेष्टा करना 'अध्यवसाय' और मैथुन करना 'क्रियानिष्पत्ति' मैथुन का आठवा अ ग है।

मैथुन के किसी भी एक अ ग के सेवन से सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का नाश हो जाना स्वाभाविक है। किसी भी एक इन्द्रिय के विषय-लोलुप हो जाने पर सभी इन्द्रिया और मन विषयलोलुप हो सकते हैं। उदाहरणार्थ—यदि कान किसी पुरुष के शब्द सुनने को आतुर हों तो नेत्र उसके सौन्दर्य को देखने, मुख उससे वार्तालाप करने, नाक उसके शरीर-सुगन्ध को सूंघने और त्वचा उसका स्पर्श करने ही आनन्द का अनुभव करेंगे।

इस प्रकार जब सभी इन्द्रिया दुर्विषयो की ओर आकर्षित हो जाती हैं तब बुद्धि भी नष्ट हो जाती है। आत्मसयम की शक्ति नही रहती। इन्द्रिया निरंकुश होकर मन को कही भी ले जाती हैं। फिर आत्मा दिन प्रतिदिन पतन की ओर अग्रसर होती रहती है। फिर केवल काम-वासना की पूर्ति के लिए अन्याय से अर्थ-सचय किया जाता है। वह पतन के गहरे गर्त्त मे गिर कर अपने शरीर की सुधबुध तक भूल जाता है। जैन शास्त्रो मे अब्रह्म-चर्य को बहुत बुरा कहा गया है। इन शास्त्रो के सिवाय अन्य सभी

भारतीय और पाश्चात्य धर्म ग्रन्थो मे भी ब्रह्मचर्य को उत्तम तप और अब्रह्मचर्य को महान् पाप कहा है । प्रश्नव्याकरण सूत्र मे अब्रह्मचर्य को चौथा अधर्मद्वार माना है । इस सम्बन्ध मे ग्रन्थकार कहते हैं —

"जम्बू ! अबभं चउत्थं सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स पत्थणिज्ज, पक-पणग-पास-जालभूय त्थी ।"

हे जम्बू ! अब्रह्मचर्य चौथा अधर्मद्वार है । सुर-असुर, नर, लोकपति आदि सभी इस पाप रूपी कीच के दल-दल मे फसे हुए हैं। उनको यह जाल के समान फसाने वाला है

आगे भी कहा है —

"मेहुणसन्नागिद्धा य मोहभरिया सत्थेहि हणंति एक्क-मेक्कं विसय-विसे उदारएहि अवरे परदारेहिंहिंसति ।"

मैथुन मे आसक्त अब्रह्मचर्य के अज्ञानाधकार से पूर्ण लोग परस्पर एक दूसरे की हिंसा करते हैं, जहर देकर घात करते हैं। यदि परदारा हुई तो उस स्त्री का पति जहर दे हिंसा कर देता है । इस प्रकार यह अब्रह्मचर्य का पाप मृत्यु का कारण है । अब्रह्मचर्य से धन, राज्य, स्वजन का नाश होता है । कई जगह अपनी सन्तानो की भी हिंसा कर दी जाती है । इससे मित्रो भाइयो, पिता-पुत्रो और पति-पत्नियो मे स्नेह नष्ट होकर वैर-भाव उत्पन्न हो जाता है । अब्रह्मचारी का चरित्र क्षण भर मे नष्ट हो जाता है । उसका शरीर अत्यन्त निर्बल और रोगी हो जाता है । सैकडो व्याधिया उसे आकर घेर लेती हैं । बहुत दुर्ग अवस्था मे होकर उसे मृत्यु के मुख मे जाना पडता है ।

"जेण सुद्धचरिएणं भवति सुवभणो, सुसमणो, सुसाहू, सुइसी, सुमुणी, स एव भिक्खू जो सुद्धं चरति बभचेर ।"

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का शुद्धाचरण करता है, वही उत्तम ब्राह्मण, उत्तम श्रमण और उत्तम साधु है। शुद्ध ब्रह्मचर्याचरण से ही वह ऋषि, मुनि, सयमी और भिक्षु है ।

५—ब्रह्मचर्य के दो मार्ग

शास्त्रानुसार ब्रह्मचर्य पालन के दो मार्ग हैं—क्रिया मार्ग और ज्ञान मार्ग। क्रिया मार्ग अब्रह्मचर्य को रोकने का साधन है, उसके सस्कारो को निर्मूल करने मे समर्थ है । ज्ञान के द्वारा मनुष्य को सयमी और ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन स्वाभाविक और अब्रह्मचर्यमय जीवन अस्वाभाविक और अनुचित लगने लगता है । ज्ञान मार्ग द्वारा प्राप्त विवेक पवित्रता और आत्मचिंतन द्वारा उत्पन्न होता है । अत वह नित्य है । उसमे स्थिरता अधिक होती है । क्रिया मार्ग मे अस्थिरता हो सकती है। जब तक हृदय विशुद्ध और भावना पवित्र नही हो जाती क्रियामार्ग द्वारा रक्षण अपूर्ण है। उसमे कभी भी विकार आ जाने की सम्भावना है । इसीलिए दोनो मार्गों मे ज्ञान ार्ग श्रेष्ठ है। लेकिन ज्ञानमार्गियो को भी क्रिया—मार्ग की उपेक्षा रना उचित नही। बाह्य वातावरण और क्रिया मे स्खलन ज्ञानियो हृदय मे भी कभी—कभी अस्थिरता उत्पन्न करने मे समर्थ हो सकता है ।

६—ब्रह्मचर्य के नियम

क्रिया—मार्ग मे बाह्य नियमो का समावेश किया जाता है। इस सम्बन्ध मे प्रश्नव्याकरण सूत्र मे पाच भावनाओ का उल्लेख किया गया है, वे इस प्रकार हैं —

(१) केवल पुरुषो से सम्बन्धित कथाएं न कहे।

(२) पुरुषो की मनोहर इन्द्रियाँ न देखे।

(३) पुरुषो के रूप को न देखे।

(४) कामभोग को उत्तेजित करने वाली वस्तुओं को न कहे, न स्मरण करे।

(५) कामोत्तेजक पदार्थ न खाए-पीए।

ब्रह्मचर्य व्रत पालन के लिए भगवान् ने दस समाधिस्थान भी बताये हैं—

(१) संसर्ग-रहित स्थान मे निवास करना।

(२) अकेले पुरुष से वार्तालाप न करना। न अकेले पुरुष को कथा, भाषण कहना। केवल पुरुषो के सौन्दर्य, वेश का भी वर्णन न करना।

(३) पुरुषो के साथ एक आसन पर न बैठना, जिस आसन पर पुरुष पहले बैठा हो, उससे दो घडी पश्चात् तक उस आसन पर न बैठना।

(४) पुरुषो के आकर्षक नेत्र आदि का तथा दूसरे अंगोपांग का अवलोकन न करना और न उनका चिंतन ही करना।

(५) पुरुषों के रति-प्रसग के मोहक शब्द, रति-कलह के शब्द, गीत की ध्वनि, हंसो की खिलखिलाहट, कीडा, विनोद आदि के शब्द या विरह रुदन को परदे के पीछे से या दीवाल की आड से कभी न सुनना चाहिए।

(६) पहले अनुभव किए हुए रति-सुख, आचरण की हुई या सुनी हुई रति-क्रीडा आदि का स्मरण भी न करना।

"जेण सुद्धचरिएणं भवति सुवभणो, सुसमणो, सुसाहू, सुइसी, सुमुणी, स एव भिक्खू जो सुद्धं चरति बभचेर ।"

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का शुद्धाचरण करता है, वही उत्तम ब्राह्मण, उत्तम श्रमण और उत्तम साधु है। शुद्ध ब्रह्मचर्याचरण से ही वह ऋषि, मुनि, सयमी और भिक्षु है।

५-ब्रह्मचर्य के दो मार्ग

शास्त्रानुसार ब्रह्मचर्य पालन के दो मार्ग हैं-क्रिया मार्ग और ज्ञान मार्ग। क्रिया मार्ग अब्रह्मचर्य को रोकने का साधन है, उसके सस्कारो को निर्मूल करने मे समर्थ है। ज्ञान के द्वारा मनुष्य को सयमी और ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन स्वाभाविक और अब्रह्मचर्यमय जीवन अस्वाभाविक और अनुचित लगने लगता है। ज्ञान मार्ग द्वारा प्राप्त विवेक पवित्रता और आत्मचिंतन द्वारा उत्पन्न होता है। अत वह नित्य है। उसमे स्थिरता अधिक होती है। क्रिया मार्ग मे अस्थिरता हो सकती है। जब तक हृदय विशुद्ध और भावना पवित्र नही हो जाती क्रियामार्ग द्वारा रक्षण अपूर्ण है। उसमे कभी भी विकार आ जाने की सम्भावना है। इसीलिए दोनो मार्गों मे ज्ञान मार्ग श्रेष्ठ है। लेकिन ज्ञानमार्गियो को भी क्रिया-मार्ग की उपेक्षा करना उचित नही। बाह्य वातावरण और क्रिया मे स्खलन ज्ञानियों के हृदय मे भी कभी-कभी अस्थिरता उत्पन्न करने मे समर्थ हो सकता है।

६-ब्रह्मचर्य के नियम

क्रिया-मार्ग मे बाह्य नियमो का समावेश किया जाता है। इस सम्बन्ध मे प्रश्नव्याकरण सूत्र मे पाच भावनाओ का उल्लेख किया गया है, वे इस प्रकार हैं —

(१) केवल पुरुषो से सम्बन्धित कथाएं न कहे ।

(२) पुरुषो की मनोहर इन्द्रियां न देखे ।

(३) पुरुषो के रूप को न देखे ।

(४) कामभोग को उत्तेजित करने वाली वस्तुओ को न कहे, न स्मरण करे ।

(५) कामोत्तेजक पदार्थ न खाए-पीए ।

ब्रह्मचर्य व्रत पालन के लिए भगवान् ने दस समाधिस्थान भी बताये हैं —

(१) संसर्ग-रहित स्थान मे निवास करना ।

(२) अकेले पुरुष से वार्तालाप न करना । न अकेले पुरुष को कथा, भाषण कहना । केवल पुरुषो के सौन्दर्य, वेश का भी वर्णन न करना ।

(३) पुरुषो के साथ एक आसन पर न बैठना, जिस आसन पर पुरुष पहले बैठा हो, उससे दो घडी पश्चात् तक उस आसन पर न बैठना ।

(४) पुरुषो के आकर्षक नेत्र आदि का तथा दूसरे-अगोपांग का अवलोकन न करना और न उनका चिंतन ही करना ।

(५) पुरुषों के रति-प्रसग के मोहक शब्द, रति-कलह के शब्द, गीत की ध्वनि, हंसी की खिलखिलाहट, कीडा, विनोद आदि के शब्द या विरह रुदन को परदे के पीछे से या दीवाल की आड से कभी न सुनना चाहिए ।

(६) पहले अनुभव किए हुए रति-सुख, आचरण की हुई या सुनी हुई रति-क्रीड़ा आदि का स्मरण भी न करना ।

(७) पौष्टिक या कामोत्तेजक खाद्य और पेय पदार्थों का उपयोग न करना।

(८) सादा भोजन भी परिमाण से अधिक न करना।

(९) शृंगार–स्नान, विलेपन, धूप, माला, विभूषा व केश-रचना न करना।

(१०) कामोत्तेजक शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से बचते रहना।

सर्व विरति ब्रह्मचारी को, ऊपर निर्देशित भावनाओ और समाधिस्थानो के नियमो का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए शरीर के साथ-साथ मन और वचन पर भी पूर्ण सयम रखना अत्यन्त आवश्यक है। केवल शरीर पर ही नियन्त्रण रखने से अब्रह्मचर्य का निराकरण नही किया जा सकता। मन पर अ कुश न रखने से कभी भी हृदय में विकार उत्पन्न हो सकता है। शरीर तो मन के अनुसार कार्य करता है। अगर मन पवित्र है तो शरीर भी पवित्र ही रहेगा। इसीलिए मन को वश मे रखना शरीर की अपेक्षा ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

मन मे कभी कामवासना उत्पन्न न हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि उसे सदैव शुभ कामो मे प्रवृत्त किया जाए। किसी भी कार्य से खाली रहना अनुचित है। मन को जब कोई कार्य नही रहता, तब बुरे विचार आने लगते हैं। उसे प्रत्येक समय किसी न किसी सत्कार्य मे लगाना चाहिए।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए भोजन पर सयम रखना भी

अत्यन्त आवश्यक है । मनुष्य की मनोवृत्तियो पर भोजन का बहुत प्रभाव पडता है । जो जैसा भोजन करेगा, उसका मन भी वैसा ही हो जायगा । अधिक खाना ब्रह्मचारी के लिए वर्ज्य है । जीवन-यापन के लिए जितना भोजन करना आवश्यक है, उतना ही उसके लिए पर्याप्त है । अधिक भोजन से हृदय मे विकार उत्पन्न हो जाता है, जो काम-वासनाओ का उत्तेजक हो सकता है ।

प्रश्नव्याकरण सूत्र मे ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के उपायो मे बताया गया है—

'नो पाण-भोयणस्स अइमायाए आहारइत्ता'

ब्रह्मचर्य व्रत का पालक खान-पान अपरिमाण मे न ले ।

ब्रह्मचारी को भूख से अधिक भोजन कदापि न करना चाहिए । साथ ही साथ वह भी अधिक मसालेदार, चरका, गरिष्ट, कामोत्तेजक, खट्टा, मीठा न हो । ब्रह्मचारी हलका, थोडा, नीरस और रूखा भोजन ही पर्याप्त मात्रा मे करे ।

ब्रह्मचारी को मादक द्रव्यो का सेवन सर्वथा त्याग देना चाहिए । इनसे बुद्धि का विनाश हो सकता है । इन पदार्थों में चाय, गाजा, भग, चरस, अफीम, शराब, तमाखू, बीडी सिगरेट आदि समाविष्ट हैं ।

जो स्त्री ब्रह्मचारिणी रहना चाहती हैं,उन्हें अपना जीवन बहुत सादगी से व्यतीत करना चाहिए । चटकीले भडकीले वस्त्र पहनना, विविध प्रकार के आभूषणों से अपने को सुशोभित रखना, सुगन्धित तेल, इत्र, फुलेल का उपयोग करना, पुष्पो आदि से बालो को सजाना सर्वथा अनुचित है ।

पुरुष के पास एकान्तवास करना भी ब्रह्मचर्य के लिए घातक है। एकान्त मे कुवासनाएं घेरे रहती हैं। मन मे हमेशा दुर्भावनाए रहने से दुष्कार्यों की ओर प्रवृत्ति हो सकती है। चाहे कोई जितेन्द्रिय ही क्यो न हो पर सतत एकान्तवास से ब्रह्मचर्य के खण्डित होने का भय है।

ब्रह्मचारी को ऐसी अश्लील पुस्तकें कदापि नही पढनी चाहिए, जो कामविकार को जागृत करने वाली हो तथा जिनसे मन एव इन्द्रिया दुर्विषयो की ओर प्रवृत्त हो। इस प्रकार का अध्ययन ब्रह्मचर्य को भ्रष्ट करने मे समर्थ हो सकता है। आज-कल ऐसी अश्लील प्रेम कहानिया और उपन्यास बहुत प्रचलित हैं। उनसे हमेशा बचते रहना चाहिए। ब्रह्मचारियो को धर्म-ग्रन्थो का अध्ययन करना उचित है। महापुरुषो की जीवनियां, ससार की असारता सूचक तथा वैराग्य उत्पन्न करने वाली तथा दुर्विषयो से घृणा पैदा करने वाली किताबें पढना उसके लिए लाभप्रद है। ऐसे अध्ययन से मन मे विकार ही उत्पन्न नही होता, बल्कि ब्रह्मचर्य—पालन मे भी बहुत सहायता मिलती है।

ब्रह्मचारिणी स्त्री को कामी या व्यभिचारी स्त्री पुरुषो का सग कदापि नही करना चाहिए। ऐसे लोगो की संगति से कभी न कभी ब्रह्मचर्य के खण्डित होने का भय है। वेश्याओ आदि से परिचय बढ़ाने मे हानि ही हो सकती है। उत्तम साधु साध्वियो के सम्पर्क मे रहना, उनका उपदेश श्रवण करना लाभप्रद है।

७–स्वपतिसन्तोष

सर्व विरति ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करने में असमर्थ महिलाएं जो विवाह करना चाहती हैं, उन्हे भी 'स्वपति सन्तोष व्रत' का पालन करना चाहिए। कहा भी है :—

"कोकिलानां स्वरो रूपं नारीरूपं पतिव्रतम्"

कोकिला का शृंगार उसका मधुर स्वर है और नारी का शृंगार उसका पतिव्रत ही है।

जिस प्रकार पुरुषो के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि 'एक नारी सदा ब्रह्मचारी' उसी प्रकार नारियो मे :—

"या नारी पतिभक्ता स्यात्सा सदा ब्रह्मचारिणी"

जो स्त्री पतिव्रता है, अपने पति के सिवाय दूसरे पुरुषों से अनुराग नहीं रखती, वह भी ब्रह्मचारिणी है। गृहस्थावस्था में इस व्रत के सिवा नारियो के लिए उपयुक्त धर्म और कोई नहीं। पति–व्रता स्त्री के लिए इस लोक तथा परलोक मे कुछ भी दुर्लभ नही, वह देवताओ के लिए भी पूज्य है। सीता, द्रोपदी आदि सतियो को उनके पातिव्रत्य के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उनका सदैव आदर और प्रशसा की जाती है। उन्हे कोई भी दुःख और व्याधि कभी पीडित नहीं करते। जीवन मे वे सदैव सुखी और सन्तुष्ट रहती हैं।

इसके विपरीत व्यभिचारिणी स्त्रियां निरन्तर कष्टो और व्याधियों से पीडित रहती हैं। उनको जीवन मे कभी सुख नही मिलता। प्राचीन काल मे स्त्रियो की स्थिति इसीलिए ऊंची थी कि उनमे पति के प्रति असीम भक्ति और प्रेम होता था। अन्य पुरुषो के प्रति सदैव पिता और बन्धुत्व का भाव रहता था। अतएव 'स्व–पति–सतोष व्रत' का पालन कर स्त्रियो को इहलोक और परलोक को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए।

८—ब्रह्मचर्य और सन्तान

जो भाई बहिन ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे, वे ससार को अनमोल रत्न दे सकेंगे। हनुमानजी का नाम कौन नहीं जानता? आलकारिक भाषा मे कहा जाता है कि उन्होने लक्ष्मणजी के लिए द्रोण पर्वत उठाया था। उसी पर्वत का एक टुकडा गिर पडा, जो गोवर्धन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अलकार का आवरण दूर कर दीजिए और विचार कीजिए तो इस कथन मे आप हनुमानजी की प्रचण्ड शक्ति का दिग्दर्शन पाएगे। हनुमानजी मे इतनी शक्ति कहा से आई? यह महारानी अजना और पवन की बारह वर्ष की अखण्ड ब्रह्मचर्य की साधना का ही प्रताप था। उनके ब्रह्मचर्य-पालन ने ससार को एक ऐसा उपहार, ऐसा वरदान दिया, जो न केवल अपने समय मे ही अद्वितीय था, वरन् आज तक भी वह अद्वितीय समझा जाता है और शक्ति की साधना के लिए उसकी पूजा की जाती है।

बहिनो! अगर तुम्हारी हनुमान सरीखा पुत्र उत्पन्न करने की साध है तो अपने पति को कामुक बनाने वाले साज-सिंगार को त्याग कर स्वय ब्रह्मचर्य की साधना करो और पति को भी ब्रह्मचर्य का पालन करने दो।

सन्तान के विषय मे माता—पिता की भावना जैसी होती है वैसी ही सतान उत्पन्न होती है। पिता और खास कर माता को ऐसी भावना हमेशा मन मे रखनी चाहिए कि मेरा पुत्र वीर्यवान् और जगत् का कल्याण करने वाला हो। इस प्रकार की भावना से बहुत लाभ होता है।

सब लोगो को को प्राय अलग-अलग तरह के स्वप्न आते

हैं, इसका क्या कारण है ? कारण यही कि सबकी भावना अलग-अलग तरह की होती है। यह बात प्राय सभी जानते हैं कि जैसी भावना होती है, वैसा ही स्वप्न आता है। इसी प्रकार माता-पिता की जैसी भावना होती है, वैसी ही सन्तान बन जाती है। जिस प्रकार भावना से स्वप्न का निर्माण होता है, उसी प्रकार भावना से सन्तान के विचारो और कार्यों का निर्माण होता है। नीच विचार करने से खराब स्वप्न आता है और यही बात सन्तान के विषय मे भी समझनी चाहिए।

जिस नारी के चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज अठखेलियां करता है, उसे पाउडर लगाने की जरूरत नही पडती। जिसके अग-प्रत्यग से आत्मतेज फूट रहा हो, उसे अलकारो की भी अपेक्षा नही रहती। गृहस्थ को अपनी पत्नी के साथ मर्यादा के अनुसार रहना चाहिए। उसी प्रकार स्त्रियो को भी चाहिए कि वे अपने मोहक हाव-भाव से पति को विलासी न बनावें। जो स्त्री सतानोत्पत्ति के सिवाय केवल विलास के लिये पति को फसाती है वह पति का जीवन चूसने वाली है।

८-विवाह और ब्रह्मचर्य

प्राचीन काल मे विवाह के सम्बन्ध मे कन्या की भी सलाह ली जाती थी और अपने लिए उसे वर खोजने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। माता-पिता इस उद्देश्य से स्वयवर की रचना करते थे। अगर कन्या ब्रह्मचर्य पालन करना चाहती थी तो उसे अनुमति दी जाती थी। भगवान् ऋषभदेव की ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दो कन्याए विवाह के योग्य हुई। भगवान् उनके विवाह सम्बन्ध का विचार करने लगे। दोनो कन्याओ ने भगवान् का विचार जाना तो कहा—पिताजी, आप हमारी चिन्ता न कीजिये। आपकी पुत्री

मिटकर दूसरे की पत्नी बनना हमसे न हो सकेगा। अन्ततः दोनो कन्याएं आजीवन ब्रह्मचारिणी रही।

हा, विवाह न करके अनीति की राह चलना बुरा है, पर ब्रह्मचर्य पालन करना बुरा नही है। ब्रह्मचारिणी रह कर कुमारिकाएं जन समाज की अधिक से अधिक सेवा कर सकती हैं।

बलात् विवाह और बलात् ब्रह्मचर्य दोनो बातें अनुचित हैं। दोनो स्वेच्छा और सामर्थ्य पर निर्भर होनी चाहिये। पूर्ण ब्रह्मचर्य अगर पालन न भी कर सके तो भी विवाह के उपरान्त विवाहित पति-पत्नी को अवश्य ही मर्यादा के अनुसार रहना चाहिए।

३

स्त्री-शिक्षा

१-शिक्षा का प्रभाव

शिक्षा मनुष्य के नैतिक और सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने का साधन है। वह जीवन को सभ्य सुसस्कृत एवं सहानुभूतिशील बनाने की योग्यता प्रदान करती है। वर्तमान मे शिक्षा-प्राप्ति के उद्देश्य को ध्यान मे लेकर, उसकी परिभाषा संकुचित क्षेत्र मे करते हुए चाहे उसे हम अर्थप्राप्ति का साधन कहें पर ऐसा कहना मूलत गलत होगा। शिक्षा का उद्देश्य कभी अर्थप्राप्ति नही। सामाजिक क्षेत्र मे शिक्षा जीवन के वातावरण को अधिक सुखमय और सरस बनाती है - हमे निचाई से ऊचाई पर प्रतिष्ठित करती है। वह एक प्रकार का नवजीवन सा प्रदान करके कई बुराइयो से बचाकर अच्छाइयो की ओर ले जाने को प्रेरित करती है।

मानव इतिहास की ओर हलका-सा दृष्टिपात करने पर हमे शिक्षा की उपयोगिता और उसका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जायगा। किसी जमाने मे मनुष्य आज की भाति सभ्य एव सस्कृत नही थे। उनका खान पान, रहन सहन तथा वातावरण बिल्कुल

भिन्न था । वृक्षो के वल्कल धारण कर अथवा नग्न ही रह कर अपना जीवन-यापन करते थे । माता, पिता, बधु आदि के प्रति भी जैसे स्नेह और कर्त्तव्यपालन की दृष्टि होनी चाहिए, वैसी न थी । यो कहना चाहिए कि कौटुम्बिक भावना ही जागृत नही हुई थी । न उनका कोई निश्चित निवास-स्थान था और न कोई निश्चित वस्तुए ही थी, जो उनके भोजनादि के प्रबन्ध के लिए उपयुक्त थी । जहा जो चीज मिल गई, उसी का उपयोग करते थे । और जहा रात्रि मे स्थान मिला, विश्राम करते थे । न वहा कोई सामाजिक अथवा राजनीतिक बन्धन थे और न कायदे कानून । मनुष्य अपने आप मे ही सीमित था और प्रकृति पर ही निर्भर था।

लेकिन आज ,,....? सामाजिक जीवन मे आकाश और पाताल का अन्तर है । यही शिक्षा का प्रभाव है । इसी मापदण्ड से हम शिक्षा की उपयोगिता का अनुमान सहज ही लगा सकते हैं। जीवन मे जितनी जागृति और उन्नति होती है, वह केवल शिक्षा से ही । जैन शास्त्रो के अनुसार इस युग मे प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेवजी ने ही सर्व प्रथम शिक्षा का प्रचार किया था। उन्होंने ही कृषिविद्या, पाक विज्ञान, बुनाई विज्ञान आदि की शिक्षा लोगो को दी । पुरुषो के लिए बहत्तर कलाए दी तथा स्त्रियों के लिए चौसठ। इस प्रकार लोगो को सभी प्रकार से शिक्षित कर उन्होंने सभ्यता तथा सस्कृति का प्रथम पाठ पढाया । तभी से आज तक वह परम्परा अबाध गति से चली आ रही है । यद्यपि समय-समय पर राजनैतिक परिस्थितियो के अनुसार उसमे परिवर्तन भी बहुत हुए ।

शिक्षा को हम मुख्य रूप से दो भागो मे विभाजित कर सकते हैं-(१) फल-प्रदायिनी (२) प्रकाशिनी । फल-प्रदायिनी

शिक्षा विशेष रूप से मनुष्य का सामाजिक स्तर ऊंचा लाती है। किस प्रकार से भिन्न-भिन्न कार्य किए जाने पर उत्तम रीति से पूर्ण होगे, वह इसमे बताया जाता है। सिलाई, बुनाई कृषि, शरीर-विज्ञान आदि शिक्षा इसी कोटि में आ सकती है।

प्रकाशिनी शिक्षा क्रियात्मक रूप से किसी विशेष कार्य की पूर्णता के लिए नही होती। उसका कार्य है-भिन्न-भिन्न वस्तुओ के गुणो और उनके प्रभाव पर प्रकाश डालना। भौतिक वस्तुओं के सिवाय आध्यात्मिक क्षेत्र में भी इसकी पहुंच रहती है। दर्शन शास्त्र, धर्मशास्त्र, रसायनशास्त्र, इतिहास, भूगोल आदि को हम इसके अन्तर्गत ले सकते हैं। यह शिक्षा भी परोक्ष रूप से जनता के सामाजिक स्तर को उन्नत करने में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी यह लोगो के नैतिक स्तर को ऊचा उठाती है।

शिक्षा मनुष्य के रहन-सहन में अपूर्व परिवर्तन कर देती है। इसके बिना हम बहुत-सी वस्तुओ से बिल्कुल अज्ञात रह सकते हैं, जो हमारे जीवन मे सफलता प्रदान करने मे सहायक हो सकती हैं। किसी भी क्षेत्र मे अशिक्षा सफल नही हो सकती। दूसरे शब्दों मे अशिक्षित कुछ भी नही कर सकता। ✡ किसी भी विषय में निपुणता और दक्षता प्राप्त करने के लिए शिक्षा अपेक्षित है। एक डाक्टर कभी सफल नहीं हो सकता, जब तक वह पूर्ण रूप से शरीर विज्ञान और रसायनशास्त्र का गहरा अध्ययन न कर ले। मनुष्य सफल व्यापारी भी तब तक नही बन सकता, जब तक वह अर्थशास्त्र, भूगोल आदि का अच्छा अध्ययन नही कर लेता। कृषि विद्या,

---

✡ अन्नाणी कि काही, कि वा नाही सेय-पावग ?

—श्रीदशवैकालिकसूत्र

सिलाई, बुनाई आदि की भी क्रियात्मक शिक्षा के अभाव मे अपूर्णता ही है ।

इस प्रकार सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि शिक्षा के अभाव मे समस्त जीवन ही अपूर्ण है । किसी भी एक क्षेत्र मे निपुणता प्राप्त करके ही जीवन निर्माण किया जाता है। किसी भी देश की अवनति के कारणो का यदि पता लगाया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि शिक्षा का अभाव ही इसका मुख्य कारण है ।

शिक्षा के अभाव मे कई बुराइया स्वत· घर कर लेती हैं। अयोग्यता के कारण एक प्रकार की अज्ञानता फैल जाती है, जिसके कारण ही गृह-कलह, अन्धविश्वास, फूट आदि समाज मे फैलते हैं। शिक्षा के अभाव मे किसी भी वस्तु को तर्क और योग्यता की कसौटी पर कस कर लोग नही देख सकते। परम्परा से चली आती हुई परिपाटी तथा रीति रिवाजो को नहीं छोडना चाहते। इतना ही नही बल्कि समय की गति के अनुसार उसमे तनिक-सा भी परिवर्तन नही करना चाहते, चाहे वह खुद के लिए व समाज के लिए कितनी ही हानिप्रद क्यो न हो ।

शिक्षा से अभिप्राय यहा केवल विशेष रूप मे स्त्री या पुरुप की ही शिक्षा से नही, लेकिन समान रूप से दोनो की शिक्षा से है। स्त्री और पुरुप समाज के दो महत्त्वपूर्ण अग हैं। किसी एक को विशेप महत्त्व देकर और दूसरे की पूर्ण रूप से अवहेलना कर समाज की उन्नति नही की जा सकती। उन्नति के लिए यह परमावश्यक है कि स्त्री और पुरुप समाज के दोनो ही अग शिक्षा प्राप्त करें ।

२–स्त्रीशिक्षा

बहुत समय से स्त्रियो का कार्यक्षेत्र घर के भीतर ही समझा जाता है। समाज ने इस ओर कभी दृष्टिपात ही नही किया कि घर की दुनिया के बाहर भी उनका कुछ कार्य हो सकता है। भोजन बनाना, चक्की पीसना, पति की आज्ञा का पालन कर उसे सदैव सुखी और सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करना ही उसके जीवन का उद्देश्य रहा है। इन कार्यों के लिए भी शिक्षा की उपयोगिता हो सकती है, इसका कभी विचार भी नही किया गया। बालिकाओ को शिक्षा देने का प्रयत्न किया गया तो वह भी उतना ही, जिससे पत्र पढना और लिखना आ सके और पति का मनोरजन किया जा सके। प्राचीन योरप मे ऐसी ही मनोवृत्तियां लोगो मे फैली हुई थी। स्त्रियो का स्थान वहा भी बहुत सकुचित था। अधिक शिक्षा प्राप्त करना और बाहरी दुनिया से सम्पर्क बढाना अनावश्यक समझा जाता था। सीना–पिरोना, चर्खा कातना, भोजन बनाना आदि जानना ही उनके लिए पर्याप्त था। पुरुषो की शिक्षा का प्रयत्न भी बहुत बाद मे किया गया था और उसमे कुछ उन्नति हो जाने पर भी, स्त्रियो के लिए भी शिक्षा उपयोगी हो सकती है, इसका किसी ने विचार तक नही किया।

भारतवर्ष में प्राचीन काल मे स्त्रिया काफी शिक्षित होती थीं। घर के बाहर भी उन्हें बहुत कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त थी। जैन समाज मे भी उस समय स्त्रियो मे काफी जागृति थी। सती ब्राह्मी ने शिक्षा प्रारम्भ करके महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। ब्राह्मी लिपि भी उन्ही के नाम से चली। सोलह सतियो में से प्रत्येक ६४ कलाओ मे निपुण होने के साथ–साथ बडी विदुषी थी। साधारण पुस्तकीय ज्ञान के अलावा उन्होंने उत्कृष्ट सयम द्वारा

विशिष्ट ज्ञान भी प्राप्त किया था । उनकी योग्यता के लिए क्या कहा जाय ? स्त्री-शिक्षा और स्त्री-स्वातन्त्र्य का अनुमान इतने से ही सहज मे लगाया जा सकता है । विद्या की अधिष्ठात्री देवी भी सरस्वती ही मानी गई है ।

स्त्री जाति का पतन मुसलमानो के आगमन के साथ-२ हो रहा था । धीरे-धीरे उन्हे पहिले जैसी स्वतन्त्रता न रही, उनका कार्यक्षेत्र सीमित होता गया और अन्त मे उनका पतन चरम सीमा तक पहुच गया । उनकी शिक्षा के प्रश्न को समाप्त कर दिया गया । पाश्चात्य देशो मे तो उसमे बहुत सुधार हो चुका है पर भारतवर्ष मे अभी बहुत सुधार की आवश्यकता है ।

कहते हैं वर्तमान युग मे स्त्रीशिक्षा की विशेष आवश्यकता का अनुभव सर्व प्रथम जापान के मि० नारू ने किया था । उस समय वहां की स्त्रियो की हालत बहुत खराब थी । उनमे जरा भी नैतिकता की भावना न थी । वे अत्यन्त पतित-अवस्था को पहुच चुकी थी । मि० नारू ने अनुभव किया कि राष्ट्र के उत्थान के लिए स्त्रियो का सुशिक्षित और उन्नत होना नितान्त आवश्यक है। उन्होने यह भी समझने का प्रयत्न किया कि स्त्रियो और पुरुषों की शिक्षा साधारण रूप से एक ही प्रकार की नही हो सकती, कुछ न कुछ भिन्नता कार्यक्षेत्र और व्यक्तित्व की दृष्टि से होनी ही चाहिए । स्त्रियो के लिए साधारण और पुस्तकीय शिक्षा का उद्देश्य मानसिक स्तर का उन्नत होना चाहिए । महिलाओ की प्रतिभा का सर्वतोमुखी विकास करना ही उनकी शिक्षा का उद्देश्य है । वह विकास शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक तीनो प्रकार का होना चाहिए । शिक्षा का ध्येय ऐसा हो, जिससे वे जीवन मे योग्यता-क अपने कर्त्तव्य को पूर्ण कर सकें और स्वतन्त्रता से जीवन-

पथ मे अपना समुचित विकास कर अपनी प्रतिभा का सदुपयोग कर सकें। स्त्री शिक्षा की व्यवस्था करते हुए हमे यह न भूलना चाहिए कि उनका कार्य-क्षेत्र पुरुषो से कुछ भिन्न है। जीवन मे उनका कर्त्तव्य सुगृहिणी और माता बनना है। हमारे समाज का बहुत प्राचीन काल से सगठन और श्रम-विभाजन भी ऐसा ही है, जिससे स्त्रियो के कर्त्तव्य पुरुषो से कुछ भिन्न हो गए हैं। यद्यपि दोनो मे कोई मौलिक भेद नही है पर कौटुम्बिक जीवन की सरलता के लिए यह भेद किया गया। सुगृहिणी और माता बनना कोई ऐसी सरल वस्तु नहीं, जैसी आजकल समझी जाती है। माताओ के क्या-क्या गुण और कर्त्तव्य होने चाहिए, इस तरफ कोई दृष्टि नही डालता। उत्तम चरित्र और कार्य-सम्पादन की योग्यता होना उनमे सर्वप्रथम आवश्यक है।

परन्तु इतने मे ही उनके कर्त्तव्य की इतिश्री नही हो जाती। यह कदापि नही भूलना चाहिए कि स्त्री, समाज और राष्ट्र की अभिन्न अग हैं। उनके उद्धार का बहुत कुछ उत्तरदायित्व इन्ही पर है। वैसे सफल और बुद्धिमति माता बनकर ही वे राष्ट्र की बहुत कुछ भलाई कर सकती हैं। पर वे पुरुषो के क्षेत्रो मे भी, जहा उनकी प्रतिभा और रुचि हो, अपनी योग्यता द्वारा सफल कार्यकर्त्री और नेत्री हो सकती हैं, क्योकि यह आवश्यक नही कि जो कार्य पुरुषो द्वारा सम्पादित हो, वे स्त्रियो द्वारा पूर्ण हो ही नही सकते। ऐसा न कभी हुआ है और न होगा। अगर उन्हें उचित शिक्षा और उचित स्वतन्त्रता दी जाय तो वे अपनी योग्यता का उपयोग कर समाज की काफी भलाई कर सकती हैं।

अतएव सर्व प्रथम स्त्रियो को मानव जाति के नाते शिक्षा दी जानी चाहिए, फिर स्त्रीत्व के नाते, जिससे कि वे एक सफल गृहिणी

और सुशिक्षिता तथा उपयुक्त माता वन सके। तीसरे, उन्हे राष्ट्र के एक अभिन्न अंग होने के नाते शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे उनके मन मे यह भावना सदैव रहे कि घर मे रहते हुए भी राष्ट्र के उत्थान और पतन से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

३–स्त्रीशिक्षा की आवश्यकता

लोग कहते हैं कि लडकी को क्या हुंडी लिखनी है जो उन्हे शिक्षा दिलाई जाय? यह आज के युग मे घोर अज्ञान और स्त्रियो के प्रति अन्याय का चिह्न है। भगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी को ही सर्व प्रथम अक्षर ज्ञान सिखाया था। यदि शिक्षा की आवश्यकता न होती तो इतने बुद्धिमान् और नीतिमान महापुरुष को क्या आवश्यकता थी जो उन्हे शिक्षा देते? भरत और वाहुवली को तो शिक्षा फिर मिली। ब्राह्मी के ही नाम से हमारी लिपि ब्राह्मी कहलाई, यद्यपि समयानुसार आज तक उसमे बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका है। आज की भाषा मे ब्राह्मी को सरस्वती कहा जाता है। स्त्री की दी हुई विद्या पुरुष पढें और स्वय स्त्रिया न पढें, यह उचित है या अनुचित? अज्ञान के कारण आज पुरुष का अर्धांग निकम्मा हो रहा है। आज की स्त्रिया न कुछ कह सकती हैं, न सुन सकती हैं, न प्रश्न कर सकती हैं। वे पर्दे के भीतर बन्द रहती हैं। भगवान् महावीर के समवसरण मे स्त्रिया भी प्रश्न कर सकती थी। लेकिन यहा स्त्रिया प्रश्न नही कर सकती। अगर कोई महिला कही धार्मिक प्रश्न करे तो लोग उसे निर्लज्जता का फतवा देने मे कसर न रखेंगे।

कुछ लोगों की धारणा है कि लिखने पढने से लडके–लडकियो का विगाड हो जाता है। लेकिन क्या यह आवश्यक है कि विना पढ़े–लिखे लोग हमेशा अच्छे ही होते हैं? सामाजिक या

धार्मिक हानिया क्या शिक्षित ही करते हैं ? यह विचारणीय है कि योग्य शिक्षा सदैव उचित मार्ग के खोजने में सहायक होती है। ग्रन्थ-कारो का कथन है कि ज्ञानी के द्वारा कोई भूल हो जाए तो वह शीघ्र ही समझ सकता है मगर मूर्ख तो कोई भूल करके समझ भी नही सकता ।

भगवान् महावीर ने कहा कि अगीतार्थ साधु चाहे सौ वर्ष का हो, फिर भी उसे गीतार्थ साधु की नेश्राय मे ही रहना चाहिए। पच्चीस साधुओ मे एक ही साधु अगर आचाराग और निशीथ सूत्र का जानकार हो और वह शरीर त्याग दे तो भादो का ही महीना क्यो न हो, शेष चौबीस को विहार करके आचाराग और निशीथ सूत्र के ज्ञाता मुनि की देखरेख मे चले जाना चाहिए। अगर उनमे दूसरा कोई साधु आचाराग निशीथ का ज्ञाता हो तो उसे अपना मुखिया स्थापित करना चाहिए ।

तात्पर्य यह है कि शिक्षा के साथ उच्च क्रिया लाने का प्रयत्न तो करना ही चाहिए मगर मूर्ख रहना किसी के लिए भी उचित नही।

एक सम्प्रदाय वालो का कहना है कि साधुओ के सिवाय औरो को खाने को देकर शस्त्र तीखा मत करो। भोजन देने से शस्त्र तीखा हो जाता है । किन्तु यह कथन अज्ञानपूर्ण है। इनके कथनानुसार अगर एक महिला विचार करती है कि मेरी लडकी की आखें होगी तो वह पुरुषो को देखेगी। देखने पर नियत बिगड जाना भी सम्भव है। ऐसा विचार करके वह महिला अपनी लडकी की आखें फोड डाले तो आप उसे क्या कहेगे ?

'पापिनी'

जो महिलाए अपनी लडकी की आखो को अच्छी रखने के लिए

लडकी की आंखों में काजल आजती हैं, वे वहिनें उसकी मा हैं या शत्रु ?

'मां।'

मगर खाने को देने से शस्त्र तीखा होता है, ऐसा कहने वालों की श्रद्धा के अनुसार तो वह बहिन लडकी की आखो मे काजल लगा-कर शस्त्र तीखा कर रही है ? इसलिए न लडकी को खिलाना चाहिए और न आखो में अ जन ही आजना चाहिए । फिर तो उसे ले जाकर कही समाधि करा देना ही ठीक होगा। कैसा अनोखा विचार है ! यह सब अशिक्षा का ही फल है ।

लडकी की माता को पहिले ही ब्रह्मचारिणी रहना उचित था, तब मोह का प्रश्न ही उपस्थित न होता, लेकिन जब मोह-वश सन्तान उत्पन्न की है तो उचित लालन पालन तथा शिक्षित करके उस मोह का कर्ज भी चुकाना है । इसी कारण जैन शास्त्रो मे माता-पिता और सहायता करने वाले को उपकारी बताया है । भगवान् ने कहा है कि सन्तान का लालन-पालन करना अनुकम्पा है ।

तात्पर्य यह है कि जो माता अपनी कन्या की आखें फोड दे उसे आप माता नही, वैरिन कहेगे । लेकिन हृदय की आखें फोडने वाले को आप क्या कहेगे ? कन्या-शिक्षा का विरोध करना वैसा ही है जैसा अपनी संतति के ज्ञान-चक्षु फोडने मे ही कल्याण मानना । जो कन्याओ की शिक्षा का विरोध करते हैं, वे उनकी शक्तियो का घात करते हैं । किसी की शक्ति का घात करने का किसी को अधि-कार नही है ।

अलबत्ता शिक्षा के साथ सत्संस्कारों का होना भी आवश्यक है । कन्याओ की शिक्षा की योजना करते समय यह ध्यान रखना

जरूरी है कि कन्याएं शिक्षिता होने से साथ-साथ सत्संस्कारों के से भी युक्त हों और पूर्वकालीन योग्य महिलाओ और सतियो के चरित्र पढ़कर उनके पथ पर अग्रसर होने मे ही वे अपना कल्याण मानें। यही बात बालकों की शिक्षा के सम्बन्ध मे भी आवश्यक है। ऐसी अवस्था मे कन्याओ की शिक्षा का विरोध करना, उनके विकास में वाधा डालना और उनकी शक्ति का नाश करना है।

प्रत्येक समाज और राष्ट्र का भविष्य कन्या-शिक्षा पर मुख्य रूप से आधारित है। कन्याएं ही आगे होने वाली माताए हैं। यदि वे शिक्षित और धार्मिक सस्कार वाली हैं तो उनकी सतान अवश्य शिक्षित और धार्मिक होगी। ये देविया ही देश और जाति का उत्थान करने मे महत्त्वपूर्ण भाग लेने वाली हैं। एक सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ के कथनानुसार.—

"यदि किसी जाति की भविष्य-संतानों के ज्ञान, आचरण, उन्नति और अवनति का पहिले से ज्ञान करना है तो उस समाज की वर्तमान बालिकाओ की शिक्षा, सस्कार, आचार और भाव प्रणालियो को देखो ये ही भावी सन्तानो के ढालने के ढाचे है।"

स्त्री ही बच्चे की प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षिका है। उसके चरित्र का गठन करने वाली भी वही है। इस दृष्टि से स्त्री समस्त राष्ट्र की माता हुई। समाज के वृक्ष को जीवित और सदैव हरा-भरा बनाए रखने के लिए बालिकाओ की शिक्षा अत्यन्त ही आवश्यक है। श्री ऋषभदेव जी आदि ६३ शलाका पुरुषो को जन्म देकर उत्तम सस्कार और चरित्र प्रदान करने वाली महिलाए ही थी। प्राचीन जैन इतिहास मे स्पष्ट है कि जैन महिलाओ ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। महारानी कैकेयी ने युद्ध के समय महाराजा

दशरथ को अनुपम सहायता कर अपूर्व साहस और वीरत्व का परिचय दिया। सती द्रौपदी ने स्वयवर के पश्चात् समस्त विद्रोही राजाओ के विरुद्ध अविचलित रह कर उनके दमन मे अपने पति अर्जुन और भाई धृष्टद्युम्न की सहायता की थी। सती राजुल ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर भारतायो के लिए एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। पतिसेवा के लिए मैना सुन्दरी और धर्मदृढता मे सती चेलना भारतीय इतिहास मे अमर हो गई हैं। उनका चरित्र, ज्ञान और त्याग महिलाओ के लिए सदैव अनुकरणीय रहेगा।

इतना सब होते हुए भी आजकल बहुत से लोग स्त्रीशिक्षा का तीव्र विरोध करते हैं। धर्मान्धता ही इसका मुख्य कारण है। वे यह नही सोचते कि योग्य माताओ के बिना समाज की उन्नति सर्वथा असम्भव है।

जैन शास्त्र स्त्रीशिक्षा का हमेशा समर्थन करते है। स्त्री को धर्म और अपने सभी कर्त्तव्यो का ज्ञान कराना नितात आवश्यक है। अगर स्त्री मूर्ख तथा अज्ञानी रही तो वह अपने कर्त्तव्य को भूल सकती है। जैन शास्त्रो के अनुसार गृहस्थ रूपी रथ के स्त्री और पुरुष ये दो चक्र हैं। इन दोनो का सम्बन्ध कराकर मिलाने वाला वैवाहिक बन्धन है। बहुत लोग एक ही पहिए को अत्यन्त मजबूत और शक्तिशाली रखना चाहते हैं। किन्तु जब तक दोनो चक्र समान गुण वाले और समान शक्ति वाले न होगे, रथ सुचारु रूप से नही चल सकता। उसकी गति मे स्थिरता कभी नही आ सकती। पुरुष और स्त्री का स्थान बराबर होने के साथ ही साथ उनके अधिकार, शक्ति, स्वतन्त्रता मे भी सदैव एकता लाने का प्रयत्न होना चाहिए। यद्यपि दोनो मे कुछ भिन्नता भी अवश्य है पर वे एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का सुखमय जीवन उनके पूर्ण सहयोग और प्रेम पर ही निर्भर है।

अन्य पुस्तकीय शिक्षा के साथ-साथ बालिकाओ के शारीरिक विकास की ओर भी अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके अभाव मे उनका शरीर बहुत निर्बल होता है। एक तो वे स्वभावत. ही कोमल होती हैं और दूसरे उनका गिरा हुआ स्वास्थ्य, कायरपन और भीरुता वढाने मे सहायक होता है। वे पुरुष के और ज्यादा आश्रित रहती हैं। उनको किसी कार्य मे स्वतन्त्रता प्राप्त नही होती, उन्हे सदैव दासता के वन्धन मे बन्ध कर पुरुष की गुलामी करते हुए अपना जीवन निर्वाह करना पडता है। कहा गया है :—

"स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है"

निर्बल और सदैव बीमार रहने वाली महिलाओ का जीवन सुखी नही रह सकता। परिवार के सभी सदस्य, चाहे कितने ही सहनशील और सभ्य क्यो न हो, हमेशा की बीमारी से तग आ ही जाते हैं। पति के मन मे भी एक प्रकार का असन्तोष-सा रहता है। गृहकार्य पूर्ण रूप से न होने पर अव्यवस्था होती है। अगर प्रारभ से ही शरीर की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाय तो बीमारिया नही हो सकती।

लडको के विद्यालयो मे तो उचित खेल-कूद का भी प्रवन्ध रहता है पर बालिकाओ के लिए इसका पूर्ण अभाव-सा है। उनका स्वास्थ्य बुरी अवस्था मे है। प्राचीन काल मे स्त्रिया सभी गृहकार्य अपने हाथो से किया करती थी, जिसमे कूटना, पीसना, खाना पकाना आदि आ जाते थे, जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहता था। पर आज-कल तो सभी कार्य नौकरो से करवाए जाने लगे हैं। हर एक कार्य के लिए लगाए गए नौकरो से स्त्रियों का स्वास्थ्य बहुत गिरता जा रहा है। वे कुछ भी काम अपने हाथ से नही करना चाहती। उनकी इस निर्बलता का प्रभाव सन्तानो पर भी पडता है। वह भी बहुत

अल्पायु और अशक्त होती है। कुछ-कुछ योरोपीय संस्कृति के प्रभाव से स्त्रियो को गृहकार्य करने मे लज्जा-सी होने लगी है। लेकिन योरोपीय महिला के रहन-सहन और भारतीय महिलाओ के रहन-सहन मे बहुत अन्तर है। वे बहुत स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने-घामने बाहर निकलती हैं। उचित व्यायाम और खेल-कूद आदि की भी उनके लिए सुव्यवस्था है। इसी कारण उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है, पर भारतीय महिलाएं तो उनका अन्धानुसरण करके अपना और अपनी सन्तान का जोवन बिगाड रही हैं।

स्त्रियो के लिए सर्वोत्तम और उपयुक्त व्यायाम गृहकार्य ही हैं। उन्ही की उचित रूप से शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वे अपना स्वास्थ्य ठीक कर सकें। चक्की चलाना बहुत अच्छा व्यायाम है। छाती, हृदय आदि इससे मजबूत रहते हैं। शिक्षिता स्त्रिया इन कार्यो को करने मे बहुत लज्जा का अनुभव करती हैं। उनकी शिक्षा मे गृहविज्ञान भी एक आवश्यक विषय होना चाहिए।

बहुत पहिले श्री मुशी का स्त्रीशिक्षा पर एक लेख प्रकाशित हुआ था। इसमे स्त्रीशिक्षा के विभिन्न पहलुओ पर गम्भीरता से विचार किया गया था। उन्होंने कहा है :—

"ससार के प्रत्येक राष्ट्र तथा मानव जाति के लिए स्त्रीशिक्षा का प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक देश की उन्नति और विकास एव ससार का उत्कर्ष बहुत अंशो मे इस महत्त्वपूर्ण समस्या को सन्तोषपूर्वक हल करने पर ही अवलम्बित है।"

इस समस्या को हल करने का प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रयत्न उनकी शारीरिक विकास की योजनाओ को कार्यान्वित करना है। स्त्रियो के शारीरिक व मानसिक विकास के लिए उचित शिक्षा का प्रबन्ध करने

के लिए देश के विभिन्न भागो मे शिक्षा सस्थाए स्थापित की जानी चाहिए, जहा पर पुस्तकीय शिक्षा के उपरात चरित्र-निर्माण और शारीरिक विकास की ओर विशेष लक्ष्य दिया जाय। जो राष्ट्र इस प्रकार की सस्थाए स्थापित नही कर सकता, उसे अपने उत्कर्ष का स्वप्न देखना भी असम्भव है। जिस देश की स्त्रिया कमजोर व निर्बल हों, उनसे गुणवान् और शक्तिमान् सतानो की क्या आशा रखी जा सकती है ? जिन महिलाओ ने शिक्षा के साथ-साथ अपने स्वास्थ्य को सुधारने का प्रयत्न किया, उनकी सतान भी निश्चित रूप से होनहार होगी। और उन्हीं से तो राष्ट्र का निर्माण होना है। शरीर से स्वस्थ होने पर ही नारियां उच्च शिक्षा एव उत्कृष्ट विचारो से साहसपूर्वक राष्ट्र की राजनैतिक और सामाजिक समस्याओ को हल करने की क्षमता रखेंगी। साथ ही साथ आदर्श पत्नी और आदर्श माता बन कर अपना सामाजिक कर्त्तव्य पूर्ण करने मे समर्थ होगी। पुरुष स्त्री का आजन्म साथी है, सुख दु ख मे सदैव अपनी पत्नी के प्रति अपनत्व की भावना रखता है। स्त्री का भी पूर्ण कर्त्तव्य है कि सभी विषम परिस्थितियो में पुरुष की सदैव सहायिका रहे। उसमे उतनी योग्यता होनी चाहिए कि पति की प्रत्येक समस्या पर गम्भीरता से वह विचार कर सके। तभी पति-पत्नी दोनो सच्चे सहयोगी और प्रेमी सिद्ध हो सकेंगे। स्त्री की शिक्षा इसी मे पूर्ण नही हो जाती कि बीजगणित या रेखागणित का प्रत्येक सवाल शीघ्र हल कर सके या रसायन शास्त्र मे अच्छी योग्यता रख सके, उसकी शिक्षा तो गृहस्थ जीवन को स्वर्ग बनाने मे है। पति पत्नी जहा जितने प्रेम से रह कर एक दूसरे के कार्य मे रुचि रखेंगे, शिक्षा उतनी ही सफल सिद्ध होगी। उनकी शिक्षा तभी पूर्ण होगी, जब वे पुराने सभी उच्च विचारकों तथा कार्य-कर्त्ताओ के कार्यों का भली-भाति अध्ययन करके, अपने दृष्टिकोण से विचार कर, अपने आदर्शों

का उनके साथ तुलनात्मक रूप से विचार कर सकें, प्रत्येक इतिहास के पात्र के कार्यों और चरित्रो पर दृष्टि डालकर समय और परिस्थितियो को देखकर उनके समान बनकर अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर सकें। उन्हे ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे नियति के विपरीत भीषण आघातो से, जो सदैव पश्चात्ताप और शोक का पथ प्रदर्शन करते हैं, बचकर नूतन साहस से अपने कर्त्तव्य पथ की ओर बढती चली जाए। उन्हे कभी निराशा का अनुभव नहीं करना चाहिए। सफलता और असफलता का जीवन मे कोई महत्त्व नही। महत्त्व तो मनुष्य की प्रतिभा और प्रयत्नो का है।

हृदय मे सहानुभूति दया, प्रेम, वात्सल्य आदि गुणो का विकास ही शिक्षा का उद्देश्य हो। उन्हे यह सिखाना चाहिए कि पीडा और शोक आसू बहाने और निश्वासो के द्वारा कम नही हो सकते। जीवन मे वस्तुओ के प्रति जितनी उपेक्षा की जाएगी, वे वस्तुए उतनी ही सुलभ और सुखमय हो जाएगी। शिक्षा मानवता का पाठ पढाने वाली हो। पीडा आखिर पीडा ही है। वह जितना हमे दुखी करती है, उतनी ही दूसरो को। जितना हम उससे बचना चाहते है, उतने ही दूसरे। हमारे हृदय और दूसरो के हृदयो मे कोई मौलिक भेद नही। सहानुभूति की भावना अपने परिवार तक ही सीमित नही होनी चाहिए। जितना विशाल हृदय बनाया जा सके, उतना ही बना कर अधिक से अधिक लोगो मे आत्मीयता का अनुभव करना ही शिक्षा का उद्देश्य हो। विश्व मे ऐसे कई अबोध बालक, सरल महिलाए और निरपराध मनुष्य है, जिन्हे दुनिया मे कोई पूछने वाला नही। वे किसी के कृपापात्र नही। ऐसे लोगो के प्रति प्रेम और सहानुभूति का सम्बन्ध रखना ही ईश्वर मे सच्ची श्रद्धा रखना है। ऐसे ही लोग भगवान् को प्रिय और उसके कृपापात्र होते हैं। अगर शिक्षा का रुख बीजगणित तक ही सीमित न रहकर इस

तरफ हो तो विश्व मे अधिक सुख, सन्तोष और आत्मीयता फैल सकती है।

☸ ☸ ☸

बालिकाओ को अपने चरित्र–निर्माण की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। लज्जा, विनय, शिष्टता सदाचार, शील आदि उनके आवश्यक गुण हैं। इनसे गृह–जीवन मे शाति और प्रेममय वातावरण रहता है। माताओ को चाहिए कि बालिकाओ को ऐसे सस्कार दें जिनसे जीवन मे ये गुण स्वाभाविक हो जाए। उनका हृदय कोमल और दयार्द्र होना चाहिए। दीन, दुखियो और रोगियो की हालत देखकर उनमे कुछ सेवा और अपनत्व की भावना होनी चाहिए। गृहागत अतिथि या सम्बन्धी के उचित स्वागत की योग्यता भी होनी चाहिए।

भारतवर्ष मे स्त्रीशिक्षा की बहुत दुर्दशा है। मुश्किल से पाच प्रतिशत महिलाए यहा साक्षर होगी। जापान मे ९६ प्रतिशत और अमेरिका मे ९३ प्रतिशत लडकिया शिक्षित हैं। इसी प्रकार अन्य बहुत से देशो मे लडको की शिक्षा से लडकियो की शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाता है किन्तु भारतवर्ष मे स्त्री शिक्षा पर जोर नही दिया जाता है। इसके लिए बहुत कम व्यय किया जाता है। हमारे भाइयो का लक्ष्य बालिकाओ की शिक्षा की ओर जाता ही नही। शिक्षा के अभाव मे नारियो की हालत आज अत्यन्त दयनीय है। वे अपना समय गृहकलह और व्यर्थ की टीका–टिप्पणी मे लगाती हैं। छोटे–छोटे बालको पर भी वैसे ही सस्कार पड जाते हैं। माता के जैसे सस्कार और कार्य होगे, उनका असर तत्काल बच्चे पर पडेगा। अत–एव स्त्रियो का शिक्षित होना जरूरी ही नही वरन् अनिवार्य है। शिक्षा पाए बिना नारिया अपना कर्त्तव्य पूर्ण रूप से निभाने मे सफल

न हो सकेंगी। ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी ने ही भारतवर्ष मे शिक्षा का प्रचार किया था। नारियो को इस बात का पूर्ण ज्ञान व अभिमान होना चाहिये कि हमारी ही बहिन ने भारत को शिक्षित बनाया था। उस देवी के नाम से भारतीय लिपि अब भी ब्राह्मी लिपि कहलाती है। ब्राह्मी का नाम सरस्वती है और अन्य ग्रन्थो में उसे ब्रह्मा की पुत्री बतलाया है। ऋषभदेव ब्रह्मा थे और उनकी पुत्री ब्रह्मा कुमारी थी। इस प्रकार दोनो कथनों से एक ही बात फलित होती है। जैन ग्रन्थो से पता चलता है कि ऋषभदेव की दूसरी पुत्री सुन्दरी ने गणितविद्या का प्रचार किया था।

ससार मे स्त्री–पुरुष का जोडा माना गया है। जोडा वह है जिसमे समानता विद्यमान हो। पुरुष पढा लिखा और शिक्षित हो और स्त्री मूर्खा हो तो उसे जोडा नही कहा जा सकता। आप स्वयं विचार कीजिये कि क्या वह वास्तविक और आदर्श जोडा है ?

पहले यह नियम था कि पहले शिक्षा और पीछे स्त्री मिलती थी। प्रत्येक बालक को ब्रह्मचय–जीवन व्यतीत करते हुए विद्याभ्यास करना पडता था परन्तु आजकल तो पहिले स्त्री और पीछे शिक्षा मिलती है। जहा यह हालत है, वहा सुदृढ शारीरिक सम्पत्ति से सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान् कहा से उत्पन्न होगे ?

स्त्री शिक्षा का तात्पर्य कोरा पुस्तक ज्ञान नही है। पुस्तक पढना सिखा दिया और छुट्टी पाई, इससे काम नही चलेगा। कोरे अक्षर–ज्ञान से कुछ नही होने का, अक्षर ज्ञान के साथ कर्त्तव्य ज्ञान की शिक्षा दी जायगी तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध होगा।

स्त्री शिक्षा के पक्ष मे कानूनी दलील देने के लिए बहुत समय की आवश्यकता है। शिक्षा देने के विषय मे अब पहले जितना विरोध

भी दिखलाई नहीं देता। कुछ समय पहले तो इतना अधिक वहम घुसा हुआ था कि लोग घर में दो कदम चलना भी अनिष्टजनक समझते थे। पर अब भी कुछ भाई स्त्रीशिक्षा का विरोध करते हैं। उन्हें समझ लेना चाहिए कि यह परम्परागत कुसंस्कारो का परिणाम है। स्त्रियो को शिक्षा देना अगर हानिकारक होता तो भगवान् ऋषभदेव अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी दोनो पुत्रियो को शिक्षा क्यो देते? आज पुरुष स्त्रीशिक्षा का निषेध भले ही करें मगर उन्हें यह नही भूलना चाहिए कि रमणीरत्न ब्राह्मी ने पुरुषो को साक्षर बनाया है। उसी की स्मृति मे लिपि का नाम आज भी ब्राह्मी प्रचलित है। पुरुष जिसके प्रताप से साक्षर हुए, उसी के वर्ग (स्त्री वर्ग) को अक्षरहीन रखना क्या कृतघ्नता नही है? अन्य समाज मे ब्राह्मी का 'भारती' नाम भी प्रचलित है। 'भारती' और 'सरस्वती' शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। विद्या प्राप्ति के लिए लोग सरस्वती—अरे स्त्री की पूजा करते हैं, फिर कहते हैं कि स्त्री-शिक्षा निषिद्ध है! स्मरण रखिये, जब से पुरुषो ने स्त्री शिक्षा के विरुद्ध आवाज उठाई है, तभी से उनका पतन प्रारम्भ हुआ है और आज भी उस विरोध के कटुक फल भुगतने पड रहे हैं।

स्त्री शिक्षा का अर्थ यह नही कि आप अपनी बहू-बेटियो को यूरोपियन लेडी बनावें और न यही अर्थ है कि उन्हे घूघट मे लपेटे रहे। मैं स्त्रियो को ऐसी शिक्षा देने का समर्थन करता हू जैसे सीता, सावित्री, द्रौपदी, ब्राह्मी, सुन्दरी और अजना आदि को मिली थी, जिसकी बदौलत वे प्रातःस्मरणीय बन गई हैं और उनका नाम मागलिक समझकर आप श्रद्धा भक्ति के साथ प्रतिदिन जपते हैं। उन्हे ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे अज्ञान के अन्धकार से बाहर निकल कर ज्ञान के प्रकाश मे आ सकें। उन्हे ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे वे भली-भाति धार्मिक उपदेशो को अपना सकें।

उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिसके कारण उन्हे अपने कर्त्तव्य का, अपने उत्तरदायित्व का, अपने स्वरूप का, अपनी शक्ति का, अपनी महत्ता का और अपनी दिव्यता का बोध हो सके। उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससे वे अबला न रहें—प्रबला बनें। पुरुषों का बोझ न रहे—शक्ति बनें। वे कलहकारिणी न रहे—कल्याणी बने। उन्हे जगज्जननी एव भवानी बनाने वाली शिक्षा की आवश्यकता है।

४—अशिक्षा का परिणाम

स्त्रियो को घर से बाहर निकलने पर प्रतिबन्ध लगाना पूर्ण रूप से दासता का चिह्न है। स्त्री शिक्षा के अभाव मे पुरुषो ने महिलाओ की सरलता और अज्ञानता से बहुत लाभ उठाया। उन्हे यह पट्टी अच्छी तरह पढाई गई कि स्त्रियो का सबसे बडा धर्म पतिसेवा है, उनका सबसे बडा देवता पति है। पति को प्रसन्न और सुखी रखना उनके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। पति चाहे क्रूर, निर्दय, पापी, दुराचारी चाहे जैसा हो, वह देव तुल्य पूज्य होता है। पत्नी को वह चाहे कितनी ही निदयता से मारे पीटे, पर पत्नी को उफ तक न करना चाहिए। पति की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति वह जान देकर भी करे। उसकी आज्ञा का उल्लघन करने पर सभी नरक उसके लिए मुह बाए खडे हैं। जीवन पर्यंत उसके पाव की धूलि अपने मस्तक पर चढाकर अपने को धन्य मानना चाहिए। प्रात उठते ही पतिदेव का दर्शन कर नेत्रो को पवित्र करे, उसकी प्रत्येक आज्ञा को ब्रह्मवाक्य समझ कर शिरोधार्य करे। इस प्रकार की एकागी शिक्षा दे देकर वास्तव मे स्त्री जाति के प्रति बहुत अत्याचार किया गया। पतिव्रत धर्म तथा धर्म शास्त्र के अनेक पवित्र आदर्शो का गलत अर्थ ले लेकर 'उनका' अनुचित फायदा उठाया गया और

शास्त्रों की बदनामी की गई। शिक्षा के अभाव मे ऐसी कार्यवाहियो द्वारा स्त्री समाज को अपार हानि उठानी पडी । बिल्कुल गुलामों सरीखा व्यवहार उनके साथ किया गया। दहेज प्रथा द्वारा उनका क्रय और विक्रय तक करने मे बालिकाओ के माता-पिता को लज्जा का अनुभव नही होता था ।

कई शताब्दियो तक स्त्रियो के ऐसी अवस्था मे रहते हुए यही कहा जाने लगा है कि स्त्रिया स्वभावत शारीरिक दृष्टि से कमजोर होती हैं। उन्हे स्वतन्त्रता स्वत पसन्द नही, घर के सिवा बाहर जाना भी नही चाहती तथा पुरुषो की गुलामी ही मे जीवन की सफलता समझती हैं। लेकिन यह बात पूर्ण रूप से असत्य है। अशिक्षा एव अज्ञानता के कारण वह पृथक् रूप से अपना जीवन निर्वाह नही कर सकती, अत उन्हें पति के आधीन रहना पडता है तथा दूसरे की गुलामी करनी पडती है, पर इसका यह तात्पर्य नही कि स्त्रिया गुलामी ही पसन्द करती हैं तथा स्वतन्त्रता उन्हे पसन्द नही है। आजीविका की सबसे बडी समस्या उन्हे सदैव दुखी बनाए रहती है। उन्हे ऐसी शिक्षा प्रारम्भ से नही दी जाती, जिससे वे अपने जीवन का निर्वाह स्वतन्त्र रूप से कर सकें। अगर वे इस योग्य हो कि स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना और अपनी सन्तानो का पालन-पोषण कर सकें तो उनकी हालत मे बहुत कुछ सुधार हो सकता है। वे पति की दासी मात्र न रहकर पवित्र प्रेम की अधिकारिणी हो सकती हैं। उनका हृदय स्वभावत कोमल होता है, उसमे प्रेम रहता है और आत्मसमर्पण की भावना पूर्ण रूप से विद्यमान होती है। पूर्ण रूप से शिक्षा प्राप्त करने पर भी वे प्रेममय दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर सकती हैं।

शिक्षा के अभाव मे स्त्री के लिए विवाह एक आजीविका का साधन मात्र रह गया है। अभी हिन्दू समाज मे कई ऐसे पति हैं जो

बहुत क्रूर एव निर्दय हैं और अपनी स्त्रियो को दिन रात पाशविकता से मारते पीटते रहते है तथा कई ऐसी साध्वी देवियां हैं, जिन्हे अपने शराबी और जुआरी पति को देवता से भी बढकर मानते हुए पूजना पडता है और वे लाचारी से अपने बन्धनो को नही तोड सकती। अशिक्षा के कारण आजीविका के साधनो का अभाव ही उनकी ऐसी गुलामी का कारण है।

समाज मे यह भावना कूट-कूट कर भरी हुई है कि स्त्रियो का स्थान घर के भीतर ही है, बाहर नही और इन्ही विचारो की पुष्टि के लिए यह कहना पडता है कि स्त्रिया घर से बाहर कार्यक्षेत्र के लिए बिल्कुल उपयुक्त नही। कुछ समय के लिए उन्हे शारीरिक दृष्टि से अयोग्य मान भी लिया जाय तो भी इस विज्ञान के युग मे मस्तिष्क की शक्ति के सामने शारीरिक शक्ति कोई महत्त्व नही रखती। सभी महत्त्वपूर्ण कार्य मस्तिष्क से ही किए जाते हैं। मानसिक दृष्टि से तो कम से कम स्त्री और पुरुष की शक्ति मे कोई भेद नही किया जा सकता। अभी तक शिक्षा के क्षेत्र मे स्त्रिया पुरुषो के समान कार्य नही कर सकी। वह तो उनकी लाचारी थी। उन्हे पूर्ण रूप से अशिक्षित रख कर क्या समाज आशाए रख सकता था कि वे अपनी शक्तियो का उचित उपयोग कर सकें ?

अगर अच्छी तरह से विचार किया जाय तो यह भी स्पष्ट हो जायगा कि स्त्री और पुरुष की शारीरिक शक्ति मे कोई विशेष भेद नही है। कुछ तो स्त्रियो का रहन-सहन ही सदियो से वैसा चला आ रहा है तथा खान-पान और वातावरण से उनमे कमजोरी आ जाती है, जो कि पीढ़ी दर पीढी चली आ रही है। स्त्री और पुरुष की शरीर रचना मे कुछ भेद है पर उसका यह तात्पर्य नहीं कि स्त्री का किसी क्षेत्र से बहिष्कार ही किया जाय। कई ऐसी स्त्रिया

हैं और थीं जो प्रत्येक क्षेत्र मे पुरुषो के समान ही सफल कार्यकर्त्री साबित हुई । शिक्षा के क्षेत्र मे ब्राह्मी, धार्मिक क्षेत्र मे चन्दनबाला, द्रौपदी, मृगावती आदि सतिया थीं, जिनका पुरुषार्थ अनेक पुरुषो से भी बढा–चढा था। भारतवर्ष प्रारम्भ से ही अध्यात्मप्रधान देश रहा, और विशेष कर स्त्रिया तो स्वभावत धार्मिक –हृदय होती हैं। अत उसी क्षेत्र मे वे पुरुषो के समान महत्त्वपूर्ण स्थान लेती रही यद्यपि राजनीतिक क्षेत्र मे भी आजकल महिलाए बराबर भाग लेती हैं। रानी लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई, दुर्गावती, चादबीबी, नूरजहा आदि का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। वे अन्य राजाओ के समान ही नहीं लेकिन कुछ राजाओ से अधिक योग्यता और साहसपूर्वक राज्य सचालन करती रही और युद्धादि के समय वीर अधिनेत्री बनती थी । वीरता मे भी स्त्रिया पुरुषो से कम नही । यद्यपि वे स्वभावत कोमलहृदया होती हैं पर समय पडने पर वे मृत्यु के समान भयकर भी हो सकती हैं। रानी दुर्गावती और लक्ष्मीबाई के उदाहरण भारतवर्ष मे अमर रहेगे। त्याग और बलिदान की भावना उनमे पुरुषों से अधिक ही होती है। वे प्रथम तो अपना सर्वस्व ही पतिदेव को समर्पण कर विवाह करती हैं तथा साथ ही साथ अपनी इज्जत बचाने के लिए वे प्राण तक बलिदान कर सकती हैं। पद्मिनी आदि चौदह हजार रानियो का हंसते–हंसते आकाश को छूती हुई आग की लपटो में समाकर सती होना क्या विश्व के समक्ष भारतीय नारी के त्याग और बलिदान का ज्वलंत उदाहरण नही ?

महारानी एलिजाबेथ और महारानी विक्टोरिया ने भी अपनी सुयोग्यता द्वारा सफलतापूर्वक इतने बडे राज्य का सचालन किया। अगर शारीरिक दृष्टि से स्त्रिया शक्तिहीन होतीं तो किस प्रकार वे इतना बडा कार्य कर सकती थी ? वास्तव मे स्त्रियो का उचित पालन पोषण तथा शिक्षा होनी चाहिए। राजघराने की महिलाओं

को ये सब वस्तुएं सुलभ होती हैं। वातावरण भी उन्हे पुरुषों जैसा प्राप्त होता है, फलत वे भी पुरुषो के समान योग्य होती हैं। साधारण नारी को चूल्हे और चक्की के सिवाय घर मे और कुछ प्राप्त नही होता, अत उनकी योग्यता और शक्ति वही तक सीमित रह जाती है।

शारीरिक और मानसिक दोनो दृष्टियो से स्त्रियो और पुरुषो की शक्ति बराबर ही होती है। हर एक कार्य को स्त्रिया भी उतनी ही योग्यता से कर सकती हैं, जितना कि पुरुष। यह नही कह सकते कि जो कार्य पुरुष कर सकते हैं, उन्हे स्त्रिया कर ही नही सकती। अभ्यास प्रत्येक कार्य को सरल बना देता है। यद्यपि समाज की सुव्यवस्था के लिए दोनो के कार्य सुचारु रूप से विभाजित कर दिए गए हैं पर इसका अभिप्राय यह नही कि स्त्री किसी अपेक्षा से पुरुषो से कम है या जो कार्य पुरुष कर सकते हैं, वे कार्य स्त्रियो द्वारा किए ही नही जा सकते।

शरीर-रचना-शास्त्र के अनुसार बहुत से लोग यहा तक भी सिद्ध करने का साहस करते हैं कि स्त्री तथा पुरुषो के मस्तिष्क मे विभिन्नता है। स्त्री की अपेक्षा पुरुष का मस्तिष्क विशाल होता है। पर यह कथन सर्वथा उपयुक्त नही। इस कथन के अनुसार तो मोटे आदमियो का मस्तिष्क हमेशा भारी ही होना चाहिए। पर यह तो बहुत हास्यास्पद और असत्य है। हम निजी अनुभव से ही देख सकते हैं कि मोटे आदमी भी बहुत बुद्धू और मूर्ख होते हैं, तथा दुबले पतले दिखने वाले भी अधिक बुद्धिमान् और बडे मस्तिष्क वाले होते हैं।

स्त्रियो का कार्यक्षेत्र घर तक ही सीमित रखने के लिए जिस प्रकार उनकी शारीरिक कमजोरी बताई जाती है उसी प्रकार उनकी मानसिक कमजोरी को भी उनकी अज्ञानता का कारण बताया जाता

है। उनको पुरुष समाज सदियों तक घर मे, परदे मे और घूंघट में रखता रहा और आज यह तर्क दिया जाता है कि उनमे से कोई भी बडी राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, वैज्ञानिक नही हुई, अत उनमे कोई मानसिक न्यूनता है। उनसे यह आशा रखी जाती है कि वे चक्की पीसते पीसते वैज्ञानिक बन जाएं, खाना बनाते–बनाते दार्शनिक हो जाएं पति की ताडना सहते–सहते राजनीतिज्ञ हो जाए। जहां बिल्कुल शिक्षा का प्रचार ही नही और स्त्रियो को घर से बाहर नही निकाला जाता, वहां ये सब बातें कैसे सम्भव हैं ?

मानसिक कमजोरी का तर्क तब युक्तिपूर्ण हो सकता है, जब एक स्त्री प्रयत्न करने पर भी उस क्षेत्र में कुछ भी कार्य करने के योग्य न हो सके। पर ऐसा कही भी देखने मे नही आता। स्त्रिया शिक्षित होने पर हर एक कार्य बडी सफलतापूर्वक कर सकती हैं। जिस गति से भारत मे स्त्रीशिक्षा बढ रही है, उसी गति से महिलाए प्रत्येक क्षेत्र मे आगे बढती जा रही हैं। यह नही कहा जा सकता कि सुशिक्षिता स्त्रिया भी किसी मानसिक कमजोरी के कारण कोई कार्य करने मे असमर्थ रही हो। भारतवर्ष मे और अन्य देशो मे, महत्त्वपूर्ण कार्यों मे स्त्रियो के आगे न आने का कारण उनको अवसर न मिलना ही है।

अभी स्त्रीशिक्षा की नीव डाली ही गई है, धीरे–धीरे निरन्तर प्रगति होते–होते निश्चित रूप से महिलाए अपने को पुरुषो के बराबर सिद्ध कर देंगी। एकदम नव–शिक्षिताओ को पुरानी सभी विचारधाराओ का पूर्ण रूप से अध्ययन कर लेना कष्टसाध्य भी तो होता है।

इस प्रकार यह निश्चित है कि शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्त्री व पुरुष दोदो बराबर होते हैं। पति को ऐसी अवस्था में

पत्नी को दासी बना कर रखना उसके प्रति अन्याय होगा । स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि स्त्री और पुरुष की शिक्षा में भिन्नता होनी चाहिए अथवा नही ?

५–शिक्षा की रूपरेखा

यह निश्चित है कि पति चाहे कितना ही धन अर्जित करता हो अगर उस पैसे का उचित उपयोग न किया जाय तो बहुत हानि होने की सम्भावना है। अगर घर की व्यवस्था उपयुक्त नहीं, स्वच्छता की ओर कोई लक्ष्य नहीं, उचित सन्तानपोषण की व्यवस्था नही तथा खान-पान की सामग्री का इन्तजाम नही तो कौटुम्बिक जीवन कभी सफल और सुखी नही रह सकता। अगर गृहिणी शिक्षिता होकर आफिस मे पतिदेव की तरह क्लर्की करे और उनकी सन्तान सदैव दुखी रहे तथा सभी प्रकार की अव्यवस्था हो तो क्या वह दाम्पत्य जीवन सुखी होगा ? एक सफल गृहिणी होना ही स्त्री का कर्त्तव्य है। पति पत्नी दोनो ही अगर भिन्न-भिन्न क्षेत्र मे अपना-अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह पूरा करते रहे, तभी गृहजीवन सुखी हो सकता है। पति का आफिस का कार्य उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना स्त्री का भोजन बनाना। किसी का भी कार्य एक दूसरे से हीन नही। स्त्रियो को सुशिक्षित होकर अपनी गृहस्थी को स्वर्ग बनाने और अपनी सन्तान को गुणवान् बनाकर सत्सस्कारी करने का उपक्रम करना चाहिए। स्त्रियो की शिक्षा निश्चित रूप से पुरुषो से भिन्न प्रकार की होनी चाहिए। साधारण रूप से सभी शिक्षित स्त्रियो को सफल गृहिणी बनने मे सीता सावित्री का आदर्श अपनाना चाहिए। किन्हीं विशेष परिस्थितियो मे कोई स्त्री अर्थप्राप्ति मे भी पति का हाथ बटा सकती है, अपनी सुविधा और योग्यता के अनुसार। पर स्त्रियो के बिना गृहस्थी सुव्यवस्थित नही रह सकती और उन्हे इस ओर

सुशिक्षिता होकर उपेक्षा कदापि नही करनी चाहिए ।

आजकल स्त्रियो को धर्म, विज्ञान, गृहकार्य, रन्धन, सीना, सन्तान पोषण और स्वच्छता आदि की शिक्षा दी जानी चाहिए ।

अश्लील नाटको, उपन्यासो, सिनेमा आदि मे व्यर्थ समय नष्ट न किया जाय तो अच्छा है । मनोरंजन के लिए चित्रकला, सगीत आदि की शिक्षा देना उपयुक्त है । प्राचीन काल मे वालिकाओ को अन्य शिक्षाओं के साथ-साथ संगीत आदि का भी अभ्यास कराया जाता था । नृत्य भी एक सुन्दर कला है । नृत्य और सगीत शिक्षा मनोरजन के साथ-साथ स्वास्थ्यलाभ की दृष्टि से भी अच्छी है । इन बातो से दाम्पत्य जीवन और भी सुखमय, आकर्षक तथा मनोरञ्जक वन जाता है । परस्पर पति-पत्नी मे प्रेम भी वढता है । कला के क्षेत्र मे वे उन्नति करेंगी और वहुत से आदर्श कलाकार पैदा होंगे ।

शिक्षा के प्रति प्रेम होने से आदर्श नारी चरित्र की ओर अग्रसर होने का वे प्रयत्न करेंगी । सीता, सावित्री, दमयन्ती, मीरा-वाई आदि के जीवनचरित्र को समझकर अपने जीवन को उन्ही के अनुरूप वनाने का वे प्रयत्न करेंगी । स्त्रियो के लिए सवसे महत्त्व-पूर्ण शिक्षा तो मातृत्व की है । जितनी योग्यता से वे वच्चो का पालन-पोषण करेंगी, राष्ट्र का उतना ही भला होगा ।

वालको के स्वभाव का मनोवैज्ञानिक अध्ययन होना सतान के हृदय मे उच्च सस्कार डालने मे विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकता है । प्रत्येक वालक की प्रारम्भ से ही भिन्न-भिन्न प्रकार की स्वाभाविक रुचि होती है । कोई स्वभाव से ही गम्भीर और शात होते हैं, कोई चचल और कोई वुद्धिहीन और मूर्ख होते हैं । कइयो की रुचि खेल-कूद की ओर ही होती है, कोई सगीत का प्रेमी होता है तो कोई

अध्ययनशील। किसी को दूकान की गद्दी पर बैठ कर सामान तोलने मे ही प्रसन्नता होती है तो किसी को मन्दिर मे जाकर ईश्वर के भजन मे ही आत्मसन्तोष प्राप्त होता है। अगर ऐसी ही स्वाभाविक रुचि के अनुसार बालको की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय तो वे उसमे बहुत सफल और प्रवीण हो सकते हैं। स्त्रियो के लिए ऐसी ही मनोवैज्ञानिक शिक्षा उपयोगी है, जिसके द्वारा वे बालको को समझ सकें। उनके मस्तिष्क की गतिविधि को पहचानने मे ही उनके जीवन की सफलता निर्भर रहती है।

जैसा व्यवहार करना बचपन मे बालकों को सिखाया जायगा वैसा ही वे जीवन भर करते रहेंगे। वे प्रत्येक बात मे माता-पिता और कुटुम्ब के वातावरण का अनुकरण करते हैं। अगर माता स्वभाव से योग्य, कर्त्तव्यनिष्ठ, सुसस्कृत और सभ्य है तो कोई वजह नही कि पुत्र अयोग्य हो। पुत्रो को सुधारने के लिए माताओ को अपने आचरण और व्यवहार को सुधारना चाहिए। स्त्रियो को इसी प्रकार की शिक्षा देना उपयुक्त है, जिससे वे सतान के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझें और अपना व्यवहार सुधारें। झूठे ममत्ववश वालको को जिद्दी और हठी बना देना, उनका जीवन बिगाडने के समान है।

मातृत्व मे ही स्त्रियों पर सबसे बडे उत्तरदायित्व का भार रहता है, अतः उसी से सम्बन्धित शिक्षा भी उनके लिए उपयुक्त है। इसका यह तात्पर्य नही कि और किसी प्रकार की शिक्षा की उनको आवश्यकता ही नही। महिलाओ के लिए भी शिक्षा का बहुत-सा क्षेत्र रिक्त है। घर के आय-व्यय का पूर्ण हिसाव रखना गृहिणी का ही कर्त्तव्य है। कितना रुपया किस वस्तु में खर्च किया जाना चाहिए, इसका अनुमान लगाना चाहिए। धन की प्रत्येक इकाई को

कहां-कहा खर्च किए जाने पर अधिक से अधिक सन्तोष प्राप्त किया जा सकता है, यह स्त्री ही सोच सकती है। बच्चो को चोट लग जाने पर, जल जाने पर, गर्मी सर्दी हो जाने पर, साधारण बुखार मे कौनसी औषधि का प्रयोग किया जाना चाहिए, इसका साधारण ज्ञान होना अत्यावश्यक है। घर की प्रत्येक वस्तु को किस प्रकार रखा जाय कि किसी को भी नुकसान न पहुचे, यह सोचना गृहिणी का कार्य है। घर को स्वच्छ और आकर्षक बनाए रखने मे ही गृहिणी की कुशलता आकी जाती है। घर की स्वच्छता और सुन्दरता भी वातावरण की तरह मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रभाव डालने वाली होती है। चतुर गृहिणी अपनी योग्यता से घर को स्वर्ग बना सकती है और मूर्ख स्त्रिया उसी को नरक। यद्यपि अकेली शिक्षा ही पर्याप्त नही होती, उसके साथ-साथ कोमलता, विनय और सरलता आदि स्वाभाविक गुण भी महिलाओ मे होने चाहिए, पर शिक्षा का महत्त्व जीवन मे कभी कम नही हो सकता। जितना अधिक महिलोचित शिक्षा का प्रचार होगा, गृहस्थी की व्यवस्था उतनी ही उत्तम प्रकार से होगा, बालकों की शिक्षा उचित रूप से होगी और कौटुम्बिक जीवन सुखी होगा।

कुछ लोगो की धारणा है कि स्त्रियो का कार्य घर मे चूल्हा चक्की ही है, अत उनको पढाने लिखाने की आवश्यकता नही तथा कई लोग प्रत्येक स्त्री को एम ए कराकर पुरुषो के समान ही नौकरी करने की पक्षपाती हैं। ये दोनो बातें उपयुक्त नहीं। यह कथन अत्यन्त निराधार है कि सफल गृहिणी को शिक्षा की आवश्यकता नही। कुछ प्रारम्भिक शिक्षा के उपरात उच्च गृहस्थ-शास्त्र का अध्ययन करना प्रत्येक स्त्री के लिए आवश्यक है। हर एक कार्य को सफलता से पूर्ण करने के लिए शिक्षा होनी चाहिए। प्रत्येक वस्तु का गहरा अध्ययन होने से ही उसकी उपयोगिता और अनुपयोगिता का

पता चलता है। सुशिक्षिता स्त्रिया सफल गृहिणी और सफल माता बन कर गृहस्थ जीवन को स्वर्ग बना सकती हैं।

वास्तव मे स्त्री-पुरुष का श्रम-विभाजन ही सर्वथा उचित और अनुकूल है। दोनो के क्षेत्र भिन्न-भिन्न होते हुए बराबर महत्त्व-पूर्ण हैं। पुरुष पैसा कमा कर लाता है और स्त्री उसका भिन्न-भिन्न कार्यो मे उचित विभाजन करती है। न स्त्री ही पुरुष की दासी है और न पुरुष ही स्त्री का मालिक है। दोनो प्रेमपूर्वक अगर मैत्री सम्बन्ध रखेंगे, तभी गृहस्थी सुखमय होगी। स्त्री को गुलाम न समझ कर घर मे उसका कार्य क्षेत्र भी उतना ही महत्त्वपूर्ण समझा जाना चाहिए। परन्तु पुरुष-समाज मे ऐसे बहुत ही कम लोग होगे, जो ऐसी मनोवृत्ति के हो। ऐसी विषम परिस्थितियो मे कम से कम स्त्री मे इतनी योग्यता तो होनी ही चाहिए कि स्वतन्त्र रूप से वह अपना जीवन-निर्वाह कर सके। विशेष प्रतिभावान् स्त्री अगर अपनी प्रखर प्रतिभा से समाज को विशेष लाभ पहुचा सकती है तो उससे उसे वचित न रखा जाना चाहिए। पर साधारण स्त्रियों को अपनी गृहस्थी की अवहेलना न करना ही उचित है। शिक्षा के क्षेत्र मे उन्हे प्रति-बन्ध तो कुछ होने ही नही चाहिए।

शिक्षा के अभाव मे भारतीय विधवा-समाज को बहुत हानि उठानी पडी। उनका जीवन बहुत कष्टमय और दुखी रहा। कुटुम्ब मे उनको कुछ महत्त्व नही दिया जाता है और बहुत बन्धन मे रह कर जीवन व्यतीत करना पडता है। अगर प्रारम्भ से ही इनकी शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया जाता और अपनी आजीविका चलाने लायक योग्यता इनमे होती तो इनका जीवन सुधर सकता था। समाज को इनकी प्रतिभा से बहुत कुछ लाभ भी मिल सकता था।

एक कुटुम्ब मे यह आवश्यक है कि पति अवश्य ही पर्याप्त

रुपया कमाए जिससे कि जीवन-निर्वाह हो सके। अगर कोई पति इतना नही कर सकता हो तो समस्त कुटुम्ब पर आफत आ जाती है। कई परिवार ऐसे हैं, जिनमे गृहपति के बन्धुगण या बच्चे नही कमा पाते और फलस्वरूप वह कुटुम्ब बर्बाद हो जाता है। अगर स्त्रिया सुशिक्षिता हो तो वे ऐसी परिस्थितियो मे पति का हाथ बटाकर उसकी सहायता कर सकती हैं। श्रमविभाजन का यह तात्पर्य तो कदापि नही कि स्त्रिया पैसा कमाने का कार्य करें ही नही, अगर उनमे इतनी योग्यता है तो उनका कर्त्तव्य है कि वे आपत्ति के समय पति की यथाशक्ति मदद करे। आखिर जिसे जीवन-साथी बनाया है, उसके दु:ख मे दु:ख और सुख मे सुख मानना ही तो स्त्रियो का कर्त्तव्य है।

हर एक स्त्री को पढ लिखकर बिल्कुल पुरुषों के समान स्व-तत्र होकर नौकरी आदि करना चाहिए, यह विचार भी युक्तिसगत नही। हर एक स्त्री यदि ऐसा करने लगे तो घर की व्यवस्था कैसे हो? सतान का पालन-पोषण कौन करे? घर की प्रत्येक वस्तु को हिफाजत से यथास्थान कौन रखे और खानपान का उचित बन्दो-बस्त कैसे हो? नौकरी भी करते रहना और साथ मे इन सब बातो का इन्तजाम भी पूर्ण रूप से करना तो बहुत ही कष्टसाध्य होगा। अगर कोई ऐसी असाधारण योग्यता वाली महिला हो तो वह जैसा चाहे, वैसा कर सकती है।

चाहे ऐसी परिस्थितिया कभी उत्पन्न न हो पर प्रत्येक अवस्था में स्त्री को अपनी स्वतत्र आजीविका चलाने लायक योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। स्त्री का पुरुष पर किसी बात पर निर्भर न होना और पुरुष का स्त्री पर किसी बात पर निर्भर न रहना कोई अनु-चित बात नही। जो स्त्री घर के कार्यक्षेत्र मे रुचि न रख कर

किसी अन्य क्षेत्र के लिए योग्य होकर अपनी शक्तियो के विकास का दूसरा मार्ग ग्रहण करना चाहती है, उसे पूरी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। पुरुषो का क्षेत्र स्त्रियो के पहुच जाने से कोई अपवित्र नही हो जाएगा और न वे किसी कार्य के लिए सर्वथा अनुपयुक्त ही हैं क्योंकि पुरुष-समाज अब तक स्त्रियो को दासता मे रखने का अभ्यस्त था, इसलिए उन्हे शिक्षा से पूर्ण रूप से वचित रखा गया। इसी दासता को और मजबूत बनाए रखने के लिए बहुत प्रयत्न किए गए थे। उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों की कमजोरी का तर्क किया जाता रहा। इन सब के परिणामस्वरूप स्त्री की परवशता बढ़ती गई और जैसे-जैसे स्त्री परतन्त्र होती गई, पुरुष को स्वामित्व के अधिकार भी ज्यादा मिलते गए। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र मे उसका प्रभुत्व बढता गया। परिस्थिति ऐसी हो गई कि पुरुष, स्त्री को चाहे कितनी ही निर्दयता से मारे, पीटे या घर से निकाल दे पर स्त्री चू तक नही कर सकती।

अगर प्रारम्भ से स्त्रियो को अपने जीवननिर्वाह करने योग्य शिक्षा दी जाती तो समाज की बहुत-सी अबलाओ और विधवाओ के नैतिक पतन के एक मुख्य कारण का लोप हो जाता।

आज स्त्रियो मे जागृति की भावना बढती जा रही है। वह [illegible] मे राजनैतिक, सामाजिक या धार्मिक क्षेत्र मे पुरुषो से सहायता करने के लिए तैयार है। युनीवर्सिटियो मे लडकिया बडी [illegible] शिक्षा प्राप्त करने मे तल्लीन हैं। पर हमारा देश अभी पतन के गहरे गड्ढे मे गिर रहा है या उन्नति की ओर अग्रसर है? इस प्रश्न का उत्तर देना जितना सरल है, उससे ज्यादा कठिन। किसी देश की उन्नति [illegible] कोई निश्चित सीमारेखा अभी तक किसी के द्वारा निर्धारित नही की गई है। प्रत्येक देश की सभ्यता और संस्कृति

की भिन्नता के साथ-साथ लोगो की मनोवृत्तियों और विचारधाराओं मे भी विभिन्नता आ जाती है। उन्नति की एक परिभाषा एक देश मे बहुत उपयुक्त भी हो सकती है और वही दूसरे देश मे उसके ही विपरीत हो सकती है। सभी के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

कुछ समय पहले भारत मे शिक्षित स्त्रिया बहुत कम थी, पर अब तो उनकी सख्या उत्तरोत्तर बढती जा रही है। अपने अधिकारो और स्वतत्रता की मागो की प्रतिध्वनि भी स्पष्ट रूप से सुनाई देने लगी है। पर मुख्य प्रश्न है कि क्या यह वर्तमान शिक्षा प्रणाली भारतीयो के सुख, सन्तोष व समृद्धि को बढा सकेगी ? क्या केवल शिक्षिता होने से पति-पत्नी के सम्बन्ध अच्छे रहकर गृहस्थ-जीवन स्वर्ग बन सकेगा ? अगर नही तो शिक्षित स्त्रिया क्या करेंगी और उनका भविष्य क्या होगा ?

६-वर्तमान शिक्षा का बुरा प्रभाव

शिक्षा के अभाव में बहुत समय तक हमारे स्त्री-समाज की हालत बहुत दयनीय, परतन्त्र और दासतापूर्ण रही। उनकी अज्ञानता के कारण बहुत-सी बुराइया उत्पन्न हो गई। फलत स्त्रीशिक्षा को प्रधानता दी जाने लगी। अशिक्षा को ही सब बुराइयो का मुख्य कारण समझकर उसे ही दूर करने पर बहुत जोर दिया जाने लगा पर अब धीरे-धीरे शिक्षित स्त्रियो की सख्या बढती जा रही है। अब तक यह आशा की जाती थी कि पढ-लिख कर स्त्रिया सफल एव चतुर गृहिणी बनेंगी। वे आदर्श पत्नी होकर पतिव्रत धर्म का आदर्श विश्व के समक्ष रखेंगी। वीर, गुणवान् सतान उत्पन्न कर राष्ट्र का भला करेंगी। शिक्षा की ओर महिलाओ की रुचि देखकर हम शकुन्तला, सीता के स्वप्न देखने लगे। हम सोचते थे कि बहुत

समय पश्चात् अब भारतवर्ष मे फिर लव, कुश, भरत और हनुमान जैसे तेजस्वी, शक्तिवान् और गुणवान् पुत्र उत्पन्न होने लगेंगे। हमे पूर्ण विश्वास था कि महावीर, बुद्ध, गौतम सरीखे महापुरुष उत्पन्न होगे और भारत की कीर्तिपताका एक वार फिर विश्व मे लहराने लगेगी। ऐसी ही मनोहर आशाओ और आकाक्षाओ के साथ-साथ अविद्या-रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए ज्ञान-सूर्य का उदय हुआ। पर अब उस प्रकाश मे अपने आपको, भारत के वर्तमान-नवयुवक और नवयुवतियो को और उनकी शिक्षा को परखने का अवसर आ गया है। क्या भारत की वर्तमान शिक्षित स्त्रिया अपने उसी कर्त्तव्य को समझने का प्रयत्न कर रही हैं? क्या उनसे जो आशाएं थी, उन्हें पूर्ण करने की क्षमता उनमे है? आदि वहुत से प्रश्न अभी विचारणीय हैं।

हमारी वे सव आशाएं मुरझाई-सी जा रही हैं। हमारे सुख-स्वप्न अधूरे ही समाप्त हो रहे हैं। दहेज की प्रथा वहुत ही घातक है। इससे प्राय: अनमेल विवाह होते हैं। शिक्षिता लडकियो को शिक्षित पति नही मिलते और शिक्षित पतियो को सुशिक्षिता पत्नियां नही मिलती। इस प्रकार सामाजिक जीवन वहुत खराव हो रहा है। दाम्पत्य सुख भी प्राप्त नही होता। विवाह के वाद से ही एक प्रकार का असतोष-सा घेरे रहता है, जिससे जीवन दु खमय हो जाता है।

शिक्षिता होकर स्त्रिया नौकरी का साधन तो ढूढ सकती हैं पर आदर्श गृहिणी और सफल माता नही बनना चाहती। गृहिणी बनने के स्थान पर शिक्षिता होकर पति को तलाक देकर आफिस मे क्लर्की करना चाहती हैं और सफल माता बनने के स्थान पर सतान पालन-पोषण की जिम्मेवारी से सचने के लिए कृत्रिम गर्भनिरोध के साधन ढूढती फिरती हैं। ऐसी अवस्था मे कौटुम्बिक जीवन कहां

तक सुखी हो सकता है ? पति के प्रति भी प्रेम रखना, उसकी आज्ञाओ का पालन करना, विशेष अवसरो पर सेवा आदि करना, वे दासता का चिह्न समझती हैं ।

किसी भी गृहकार्य को करना उनकी शान के खिलाफ है। अगर सीता-सावित्री बनना उचित नहीं समझती तो कम से कम साधारण रूप से गृहस्थी की सुव्यवस्था करना तो उनका धर्म है । पूर्णरूप से पतिव्रता बनकर नही रह सकती हो तो कम से कम आफिस से थके-मादे आए हुए पति के साथ दो मीठी बातें तो कर सकती हैं। लव, कुश, भरत सरीखे पुत्रों का पोषण नही कर सकती तो उन्हें साधारण रूप से नैतिक शिक्षा तो दी जा सकती है। पर जिनमे खुद जरा भी नैतिकता नहीं, चारित्र नही, वे क्या खाक सतानो पर अच्छे सस्कार डालेंगी ? जो हमेशा प्रेमविवाह कर रोज पतियो को तलाक देने की सोचती हैं, उनसे क्या आशा की जाए कि वे सतानो का मानसिक स्तर ऊंचा उठाकर उन्हे गुणवान बनाए गी ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस शिक्षा का उद्देश्य ही भारतीय सस्कृति के विपरीत है। योरप मे चाहे इसे सभ्यता की अन्तिम सीढी कहा जाए पर कम से कम भारतवर्ष मे ये बातें उपयुक्त नहीं हो सकतीं ।

हमारी शिक्षा तो शारीरिक और मानसिक विकास के लिए होनी चाहिए। चरित्र-निर्माण का ध्येय ही यहा मुख्य हो, तभी सतानों के लिए यह आशा की जा सकती है कि वे भी ऊंचे विचारों वाली होगी। केवल पुस्तकीय शिक्षा तो भारतवर्ष के लिए भार-स्वरूप ही होगी। भारत की उन्नति केवल चरित्रबल से ही हो सकती है, जो सदियो तक हमारी सभ्यता और सस्कृति का वरदान रहा है ।

७–चार प्रकार की स्त्री–शिक्षा

स्त्री–शिक्षा से तात्पर्य कोरा पुस्तक–ज्ञान ही नही है। पुस्तक पढना सिखा दिया और छुट्टी पाई, इससे काम नही चलेगा। याद रखना, कोरे अक्षर–ज्ञान मे कुछ भी नही होने का। अक्षर ज्ञान के साथ व्यावहारिक ज्ञान, कर्त्तव्यज्ञान की शिक्षा दी जायगी, तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा।

मैंने एक दिन आपके सामने द्रौपदी का जिक्र किया था। मैंने बतलाया था कि द्रौपदी को चार प्रकार की शिक्षा मिली थी। एक बालिका शिक्षा, दूसरी वधू शिक्षा, तीसरी मातृ-शिक्षा और चौथी कदाचित् कर्मयोग से वैधव्य भोगना पडे तो विधवा–शिक्षा। तात्पर्य यह है कि स्त्री को जिन अवस्थाओ मे से गुजरना पडता है, उन अवस्थाओ मे सफलता के साथ निर्वाह करने की उसे शिक्षा मिली थी। यही शिक्षा समूची शिक्षा कही जा सकती है। स्त्रियो को जीवन की सर्वाङ्ग उपयोगी शिक्षा मिलनी चाहिए।

स्त्रियो की सब प्रकार की शिक्षा पर ही तो संतान का भी भविष्य निर्भर है। आज भारत के बालक आपको देखने मे, ऊपर से भले ही खूबसूरत दिखलाई देते हो, पर उनके भीतर कटुकता भरी पडी है। प्रश्न होता है, बालको मे यह कटुकता कहा से आई ? रीक्षा करके देखेंगे तो ज्ञात होगा कि बालक रूपी फलो मे माता -पी मूल मे से कटुकता आती है। अतएव मूल को सुधारने की आवश्यकता है। जब आप मूल को सुधार लेंगे तो फल आप ही सुधर जाएगे।

माता रूपी मूल को सुधारने का एकमात्र उपाय है, उन्हें शिक्षित बनाना। यह काम, मेरा खयाल है, पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो

से बहुत शीघ्र हो सकता है। उपदेश का असर स्त्रियों पर जितना जल्दी होता है, उतना पुरुषो पर नही होता।

पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे त्याग की मात्रा अधिक दिखाई देती है। पुरुष चालीस वर्ष की अवस्था मे विधुर हो जाय तो समाज के हित-चिन्तको के मना करने पर भी, जाति मे तड डालने की परवाह न करके दूसरा विवाह करने से नही चूकता। दूसरी तरफ उन विधवा बहिनो की ओर देखिए, जो बारह-पन्द्रह वर्ष की उम्र मे ही विधवा हो गई हैं। वे कितना त्याग करके आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करती हैं! क्या यह त्याग पुरुषो के त्याग से बढकर नही है?

४
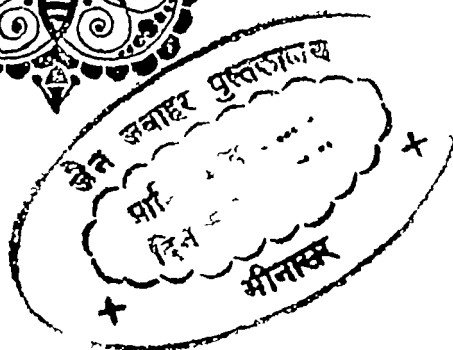
विवाह और उसका आदर्श

१–जीवन का आदर्श

वर्तमान शताब्दी को चाहे हम मशीन–सदी कहे अथवा सभ्यता की ऊची सीढी, फिर भी यह भौतिकता के कठोर धरातल पर अपने जीवन का आदर्श व उद्देश्य सीमित रखते हुए जीवन को अधिक सरल, सन्तुष्ट, सुखी व शात नही बना सकती, कम से कम इस न्तिप्रधान देश भारतवर्ष मे। प्राचीन भारतीय सस्कृति अध्यात्म–प्रधान थी। लोगो की सामाजिक, राष्ट्रीय व नैतिक अवस्था मे समय की विभिन्नता व परिस्थितियो के फेर से काफी परिवर्तन हो गया है। इस समय मनुष्य आध्यात्मिकता से मुह मोड भौतिक वस्तुओ की ाप्ति में ही अपने जीवन का उद्देश्य समझने लगा है। पहिले के नुष्य अर्थ–सचय को ओर से उदास थे। वे जीवन मे अर्थ की अपेक्षा अन्य मानवोचित गुणो मे, जैसे—प्रेम, दया, क्षमा, धैर्य आदि में अधिक विश्वास रखते थे। मानव हृदयो को पवित्र–प्रेम के उज्ज्वल धागो मे बांध लेना ही उनकी सबसे बडी साधना थी। ससार के प्रत्येक अणु–अणु मे अपने समान एक ही अज्ञात सप्राण छाया की

झाकी पाना उनका आदर्श था। वे जीवन की ओर से जितने उदासीन थे, अपने मानवोचित गुणो की ओर उतने ही सजग। प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे वे भौतिक विभिन्नता को भूल कर आध्यात्मिक एकता स्थापित करना चाहते थे। उनके सामाजिक, धार्मिक व दार्शनिक सिद्धान्त भी इसी दृष्टिकोण पर आधारित थे। वे मानव-जीवन को अत्यन्त दुर्लभ मानते थे, और उसके पीछे एक आदर्श था, जो हमारी भारतीय सस्कृति का प्राण रहा है। वह आदर्श—प्रेम व सौन्दर्य की कोमल भावनाओ से युक्त था, धैर्य व सन्तोष की मृदुल कल्पनाओ से विशाल तथा त्याग व बलिदान के कठोर मत्रो से गतिशील था। हृदयो मे एकता का अनुभव कर समस्त मानवता के कल्याण की कामना करना ही उसका उद्देश्य था। यही विशालता उन्नतिपथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा करती थी। अपनी आत्मा तथा अपनी शक्ति को अपने तक ही सीमित न रखकर वे अपना कार्य-क्षेत्र विस्तृत बनाने का प्रयत्न करते थे। अपने को अपने तक ही सीमित समझने वाले मनुष्यो की सख्या अगणित है पर मानवता की दृष्टि से उनका कोई महत्त्व नही। भौतिक क्षेत्र मे केवल अपनी ही स्वार्थपूर्ति करना कोई मानवोचित गुण नही। महानता प्राप्ति का सब प्रथम आदर्श है विशालता। जो मनुष्य जितना ही विशाल हृदय होगा, उसका कार्यक्षेत्र भी उतना ही विस्तृत होगा, कार्य-क्षमता भी उसमे रहेगी व जीवन मे वह निश्चित रूप से एक सफल कार्यकर्त्ता होगा। ऐसे ही मनुष्यो का जीवन इतिहास मे स्वर्णाक्षरो से अकित करने योग्य होता है, जिन्होने अपने असीम—प्रेम व त्याग द्वारा मानवता को कुछ नूतन सदेश देने का प्रयत्न किया। महानता को नापने का सबसे उपयुक्त अस्त्र है हृदय की विशालता।

सभी सामाजिक व राष्ट्रीय प्रवृत्तियां इसी की अपेक्षा रखती हैं। बिना प्रेम के तो मानव—जीवन रह ही नही सकता। विश्व

के प्रत्येक अणु-अणु मे प्रेम की उज्ज्वल रश्मिया प्रकाशमान हैं। उसकी ज्योति से मनुष्य अपनी आत्मा के साथ अन्य आत्माओ का पवित्र सम्बन्ध स्थापित करता है। संकीर्णता व द्वेष मनुष्य के जन्मजात शत्रु है। प्रेम के द्वारा हृदय जीतने मे ही प्राचीन भारतीय सस्कृति विश्वास रखती थी। कानून व तर्क के आधार पर प्रेममय दाम्पत्य जीवन की आशा रखना स्वप्न मात्र होगा। प्रेम ही ऐसा सम्मोहन मन्त्र है, जो हृदय को वशीभूत करने की अलौकिक क्षमता रखता है।

यही हमारी प्राचीन सस्कृति का आदर्श था। हमारे सामाजिक रीति-रिवाज, राष्ट्रीय कर्त्तव्य, धार्मिक उद्देश्य इन्ही सिद्धातो के अनुसार निर्धारित किए गए थे। अर्थ-समस्या इन सबसे बिल्कुल पृथक् रही। वे अर्थ-प्राप्ति की अपेक्षा त्याग, प्रेम व सन्तोष को अधिक महत्त्व देते थे। अर्थ को तो वे असन्तोष व सामाजिक विद्वेष का कारण समझते थे। जीवन की महानता मे अर्थ अपेक्षणीय नही था।

अपने आदर्श को क्रियात्मक रूप देने के लिए भी हमारे ऋषि-मुनियो ने बहुत प्रयत्न किया।

२-जीवन का विभाजन

मनुष्य जीवन को आयु के चार भागो मे विभक्त कर दिया गया था। यह विभाजन बहुत उपयुक्त तरीके से किया गया। सर्व प्रथम मनुष्य ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ अपने जीवन का सुन्दर निर्माण करे और फिर आदर्श गृहस्थ बने। अन्त मे त्यागमय जीवन मे प्रवेश कर मानवता के सिद्धातो का जगत् मे प्रचार कर लोगो मे नैतिक व धार्मिक जागृति कायम रखे। आत्मा को आदर्श

से पूर्ण रूप से परिचित कराने के लिए यही मार्ग उपयुक्त समझा गया। सब आश्रमो का भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से अलग-अलग महत्त्व था।

जीवन के आदर्श को अधिक पवित्र व मधुर बनाने के लिए यह आवश्यक था कि पहले पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन किया जाय और उसके बाद ही गृहस्थाश्रम मे प्रवेश हो। आत्मा को विकसित, निर्मल व पवित्र बनाने का यही एक उपाय था क्योंकि पवित्र आत्मा के भाव ही तो भावी विकास का आधार था। इसी अवस्था मे शरीर व मन को भावी कार्यक्षेत्र के लिए तैयार किया जाता था। यही वह दृढ नीव थी, जिस पर गृहस्थ जीवन रूपी महाप्रासाद की रचना होने वाली थी। अगर वही कमजोर रहे तो प्रासाद की मजबूती की कामना विफल ही रहेगी। जब शरीर व मन कर्त्तव्यपथ पर अग्रसर होने के उपयुक्त हो जाते थे, गृहस्थाश्रम के प्रवेश की तैयारी होती थी।

ब्रह्मचर्यवस्था मे मनुष्य की दृष्टि कुछ सीमित, 'स्व' तक ही रहती थी, पर गृहस्थावस्था मे अपनी दृष्टि को दूर तक फैलानी पडती थी, हृदय को विशाल बनाना पडता था व कार्यक्षेत्र विस्तृत हो जाता था। प्रथम अवस्था मे मनुष्य की दृष्टि अपने से उठकर पत्नी तक तथा सतानो तक पहुच ही जाती थी। यद्यपि हृदय की विशालता की कोई सीमा नही, फिर भी साधारणतया कुछ सीमित क्षेत्र मे मनुष्य अपने कर्त्तव्य का ज्ञान करता था। वे अपने ऊपर आए हुए कष्टो को बडे धैर्य से सहन करने की क्षमता रखते थे पर सतानो का तनिक-सा कष्ट भी असह्य होता था। क्षुधा या पिपासा उन्हे व्याकुल नही कर सकती पर सतानों के पैर मे एक साधारण-सा काटा भी उनके हृदय के समस्त तारो को एक बार

झंकृत कर सकता था ।

परन्तु भारतीय आदर्श गृहस्थ जीवन मे ही समाप्त नहीं होते । उनका सिद्धात विश्वमैत्री का था । गृहस्थ जीवन तो 'सर्व-भूतहिते रत' तक पहुचने को प्रथम डग था । जीवन का वास्तविक आदर्श तो प्राणिमात्र की हार्दिक मगलकामना मे है । पूर्णरूप से दूसरे की आत्मा मे अपनी आत्मा को लय करना है । आत्मा के विकास को किसी भी एक दायरे पर रोक देना भारतीय आदर्श के विपरीत है । निरन्तर प्रगति करते रहना ही जीवन का उद्देश्य होना चाहिए । गृहस्थाश्रम जीवन-विकास की प्रथम मजिल है, अन्तिम लक्ष्य नही । गृहस्थाश्रम मे हृदय की विशालता परिवार के कुछ सदस्यो तक ही सीमित रहती है । किन्तु जीवन का उद्देश्य तब तक पूर्ण नही होता जब तक प्राणिमात्र के लिए हृदय मे एकात्मकता का आभास नही हो जाता ।

कुछ समय तक गृहस्थाश्रम मे आत्मा का विकास करके और अधिक विशालता प्राप्त करने के लिए इस आश्रम का त्याग कर देना ही भारतीय आदर्श के अनुरूप है । क्षणिक भोगो मे लिप्त रह कर समस्त जीवन इसी के कीडे बन कर व्यतीत करना पशुता से भी बदतर है । प्रत्येक वस्तु किसी विशिष्ट सीमा तक ही उचित होती है, सीमोल्लघन करने पर साधारण वस्तु भी सर्वनाश का कारण बन सकती है ।

गृहस्थाश्रम के पश्चात् उस सीमित परिवार को त्याग कर वनवास करने का विधान था । उदारता की जो शिक्षा उसे गृहस्थ जीवन मे मिली, उसे और विस्तृत क्षेत्र मे प्रयुक्त करने का अवसर दिया जाता था । प्राणिमात्र मे अपनी ही आत्मा का प्रतिबिम्ब देखा गया । प्राणिमात्र मे अपनापन अनुभव किया जाता था । यही

जीवन का सर्वोत्तम आदर्श है ।

इस प्रकार क्रमशः मनुष्य की दृष्टि विशाल से विशालतर होती जाती थी । अन्त मे आत्मा परमात्वस्वरूप बन जाती है । यही पर जीवन के आदर्श की पूर्णता थी ।

३–विवाह

जन्म से लेकर मृत्यु तक जितने भी सस्कार किए जाते हैं, उनमे विवाह सस्कार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके बाद जीवन में बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। एक नई भावना, नई उमग-सी हृदय मे उठती है। मनुष्य एक नए अनजान पथ पर अग्रसर होने की तैयारी करता है । नए उत्तरदायित्व के भार से अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होता है। ऐन्द्रिक सुख जीवन को आध्यात्मिक पृष्ठभूमि से हटाकर मतवाले नयनो मे एक नया राग-सा भर देते हैं। यह अवस्था जीवन मे बहुत खतरनाक होती है। अपने कर्त्तव्य पथ के विस्मरण की सम्भावना जितनी इस समय रहती है, उतनी और कभी नही । ऋषि-मुनि जीवन को विषयभोग के पागलपन से दूर करने मे सजग थे । जीवन को आदर्शमय बनाने के प्रथम अवसर को अधिक से अधिक पवित्र एव निर्मल रखने का उन्होंने उद्योग किया । विवाह सस्कार मे आध्यात्मिकता का पुट दिया गया। यही आध्यात्मिकता भारतीय सस्कृति की एक मात्र विशेषता रही। विवाह मे भोग व रति को गौण स्थान देकर पवित्रता को प्रथम स्थान दिया गया। वैषयिक सुख मनुष्य को सच्चे कर्त्तव्य-पथ से हटा कर गन्दे कीचड मे फसा देते हैं । जो जितना ही अधिक मन को वशीभूत कर हृदय को पवित्र रखेगा, उसे अपने जीवन मे उतनी अधिक ही सफलता प्राप्त होगी। इसी दृष्टिकोण से विवाह एक पवित्र

झंकृत कर सकता था ।

परन्तु भारतीय आदर्श गृहस्थ जीवन मे ही समाप्त नहीं होते । उनका सिद्धात विश्वमैत्री का था । गृहस्थ जीवन तो 'सर्व-भूतहिते रत.' तक पहुचने को प्रथम डग था । जीवन का वास्तविक आदर्श तो प्राणिमात्र की हार्दिक मगलकामना मे है । पूर्णरूप से दूसरे की आत्मा मे अपनी आत्मा को लय करना है । आत्मा के विकास को किसी भी एक दायरे पर रोक देना भारतीय आदर्श के विपरीत है । निरन्तर प्रगति करते रहना ही जीवन का उद्देश्य होना चाहिए । गृहस्थाश्रम जीवन-विकास की प्रथम मजिल है, अन्तिम लक्ष्य नही । गृहस्थाश्रम मे हृदय की विशालता परिवार के कुछ सदस्यो तक ही सीमित रहती है । किन्तु जीवन का उद्देश्य तब तक पूर्ण नही होता जब तक प्राणिमात्र के लिए हृदय मे एकात्मकता का आभास नही हो जाता ।

कुछ समय तक गृहस्थाश्रम मे आत्मा का विकास करके और अधिक विशालता प्राप्त करने के लिए इस आश्रम का त्याग कर देना ही भारतीय आदर्श के अनुरूप है । क्षणिक भोगो मे लिप्त रह कर समस्त जीवन इसी के कीडे बन कर व्यतीत करना पशुता से भी बदतर है । प्रत्येक वस्तु किसी विशिष्ट सीमा तक ही उचित होती है, सीमोल्लघन करने पर साधारण वस्तु भी सर्वनाश का कारण बन सकती है ।

गृहस्थाश्रम के पश्चात् उस सीमित परिवार को त्याग कर वनवास करने का विधान था । उदारता की जो शिक्षा उसे गृहस्थ जीवन मे मिली, उसे और विस्तृत क्षेत्र मे प्रयुक्त करने का अवसर दिया जाता था । प्राणिमात्र मे अपनी ही आत्मा का प्रतिबिम्ब देखा गया । प्राणिमात्र मे अपनापन अनुभव किया जाता था । यही

जीवन का सर्वोत्तम आदर्श है ।

इस प्रकार क्रमश मनुष्य की दृष्टि विशाल से विशालतर होती जाती थी । अन्त मे आत्मा परमात्वस्वरूप वन जाती है । यही पर जीवन के आदर्श की पूर्णता थी ।

३–विवाह

जन्म से लेकर मृत्यु तक जितने भी सस्कार किए जाते हैं, उनमे विवाह सस्कार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके बाद जीवन मे बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। एक नई भावना, नई उमग-सी हृदय मे उठती है। मनुष्य एक नए अनजान पथ पर अग्रसर होने की तैयारी करता है । नए उत्तरदायित्व के भार से अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होता है। ऐन्द्रिक सुख जीवन को आध्या–त्मिक पृष्ठभूमि से हटाकर मतवाले नयनो मे एक नया राग–सा भर देते हैं। यह अवस्था जीवन में वहुत खतरनाक होती है। अपने कर्त्तव्य पथ के विस्मरण की सम्भावना जितनी इस समय रहती है, उतनी और कभी नही। ऋषि–मुनि जीवन को विषयभोग के पागल-पन से दूर करने मे सजग थे। जीवन को आदर्शमय वनाने के प्रथम अवसर को अधिक से अधिक पवित्र एव निर्मल रखने का उन्होंने उद्योग किया। विवाह सस्कार मे आध्यात्मिकता का पुट दिया गया। यही आध्यात्मिकता भारतीय सस्कृति की एक मात्र विशेषता रही। विवाह मे भोग व रति को गौण स्थान देकर पवित्रता को प्रथम स्थान दिया गया। वैषयिक सुख मनुष्य को सच्चे कर्त्तव्य–पथ से हटा कर गन्दे कीचड में फसा देते हैं । जो जितना ही अधिक मन को वशीभूत कर हृदय को पवित्र रखेगा, उसे अपने जीवन मे उतनी अधिक ही सफलता प्राप्त होगी। इसी दृष्टिकोण से विवाह एक पवित्र

सम्बन्ध कहा गया है, जिससे स्त्री व पुरुष एक सच्चे जीवन–साथी के रूप मे एक–दूसरे की सहायता से सफलतापूर्वक अपने कर्त्तव्य को पूरा कर सकें ।

विवाह संस्कार मे पूर्ण रूप से पवित्रता रखी गई । ईश्वर को साक्षी वनाकर वर और वधू आजन्म जीवन–साथी वने रहने की प्रतिज्ञा करते हैं । देवताओ के समक्ष, पवित्र वातावरण मे पिता ने कन्यादान कर दिया व वर–वधू को सदा के लिए प्रेम–वन्धन मे वाध दिया गया । इस प्रकार की आध्यात्मिकता जीवन मे निर्मलता व प्रेम का सचार करती रहती थी ।

सम्बन्ध किस प्रकार निश्चित किया जाय ? यह समस्या जितनी महत्त्वपूर्ण व टेढी उस समय थी, उतनी ही आज भी है । कोई निश्चित सिद्धात इसका पूर्ण रूप से हल करने से असमर्थ है । साथियो का चुनाव समान गुणो, समान लक्ष्यो व समान धर्मों के अनुसार होना चाहिए, तभी दाम्पत्य जीवन सुखी रह सकता है पर पूर्ण रूप से समान गुण व समान मनोवृत्तियो का मिलना सर्वथा असम्भव है । मानवोचित गुणो को निश्चित सीमा–रेखा मे नही बाधा जा सकता और न उन्हे मापने का कोई यन्त्र ही उपयुक्त हो सकता है । लेकिन जहा हृदय की विशालता व प्रेम हो, वहा परस्पर असमान गुणो का सम्मिलन भी अपने–अपने लक्ष्य तक पहुचने में बाधक नही हो सकता ।

४–चुनाव

ऋग्वेद मे एक स्थान पर आया है कि वह सुन्दरी वधू अच्छी है जो अनेक पुरुषो मे से अपने पति का चुनाव स्वय करती है । यहा कन्या की स्वेच्छा से पति को वरण करने की ओर सकेत

है। प्राचीन काल मे राजकुमारियो के स्वयवर हुआ करते थे। दमयन्ती, सीता, द्रौपदी आदि के स्वयवर तो भारतीय इतिहास मे अमर हैं ही। जयचद की पुत्री सयोगिता का स्वयवर इस प्रथा का शायद सबसे अन्तिम उदाहरण है। कन्या चुनाव मे कही धोखा न खा जाय या किसी अयोग्य पुरुप के गले मे वरमाला न डाल दे, इसकी भी व्यवस्था की जाती थी। प्राय विशिष्ट वीरतामय कार्य करने के लिए एक आयोजन होता था। जो पुरुष वह कार्य सफलतापूर्वक करता, वही वीर राजकुमारी के साथ विवाह के योग्य समझा जाता था। सीता के स्वयवर मे शिव-धनुप को उठाना तथा द्रौपदी के स्वयवर मे मत्स्य-वेध इसी दृष्टि से किए गए थे कि वीरत्व की परीक्षा सफलता से हो। इस प्रकार कन्या स्वय अपनी इच्छा से किसी वीर तेजस्वी पुरुप को विवाह के लिए चुन लेती थी।

वर्तमान समय मे यह स्वयवर प्रथा समाप्त हो गई तो ऐसी चुनाव प्रथा का स्वरूप ही बदल गया। कन्याओं को पति के चुनाव करने की स्वतन्त्रता नही रही पर पुरुषों को ही पत्नी के चुनाव का अधिकार मिल गया, जो प्राचीन रीति से सर्वथा प्रतिकूल है। ज्यादा से ज्यादा आजकल के सुधरे हुए शिक्षित परिवारो मे भी पुत्रियो को पूर्ण रूप से पति के चुनाव की स्वतन्त्रता नही है. यह अधिकार पुत्रो को ही है। कही-कही कन्याओ से सम्मति मात्र ले ली जाती है पर प्राचीन काल मे तो चुनाव का सम्पूर्ण अधिकार कन्याओं को ही था। आज-कल विवाह करने वर, वधू के स्थान पर जाता है। उसे इसी स्वयवर प्रथा का बिगडा हुआ रूप कहा जा सकता है।

स्त्रियो को उस समय के सामाजिक क्षेत्र मे वह बहुत बडा अधिकार प्राप्त था। स्त्री को यह अधिकार प्राप्त था कि जिसे वह

अपने हृदय का ईश्वर बनाती है, किस वीर पुरुष के गुणों से आकर्षित होकर अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिए उद्यत होती हैं ? आत्मार्पण करना कोई साधारण वस्तु नहीं, जिसे डण्डे के जोर से जबर्दस्ती किसी के प्रति भी कराया जा सके। प्रेममय जीवन व्यतीत करने के लिए आत्मसमर्पण आवश्यक था तथा आत्मसमर्पण के लिए स्वेच्छा से चुनाव होना भी आवश्यक है। इसी अधिकार को पाकर स्त्री पति की आज्ञाकारिणी हो सकती है। आज कई माता-पिता कन्या को किसी भी पुरुष के साथ बांध देते हैं तथा जिन्हे जीवन के लिए अपना साथी चुनना है, उनसे सम्मति लेना भी आवश्यक नही समझते। यह अज्ञानता दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए उचित नही हो सकती। क्या इस प्रकार का चुनाव पति-पत्नी मे समानता का सूत्र पिरोकर उसका विस्तार कर सकता है ?

सफल विवाह के लिए सुन्दर चुनाव बहुत महत्त्वपूर्ण है। जब चुनाव स्वेच्छा से किया गया है तो पति-पत्नी के बीच का सम्बन्ध मित्रता के सम्बन्ध के अतिरिक्त अन्य कोई, उपयुक्त नही हो सकता। दास-दासी का सम्बन्ध तो सर्वथा अनुपयुक्त है। दोनो एक-दूसरे के सुख-दुःख के सम्पूर्ण जीवन भर के साथी हैं। गृह्य सूत्र मे लिखा है-

"यदेतद् हृदय तव तदस्तु हृदयं मम, यदिद हृदय मम तदस्तु हृदय तव।"

अर्थात् जो तेरा हृदय है वह मेरा हृदय हो जाय और जो मेरा हृदय है वह तेरा हृदय हो जाए। हम एक-दूसरे मे इतने घुल-मिल जाए कि हम दोनों की पृथक् सत्ता न रहे।

विवाह जीवन का अन्तिम लक्ष्य नही, यह तो आदर्श की पूर्णता का साधन मात्र है। परस्पर का सख्य भाव ही इस उद्देश्य

की पूर्णता की प्राप्ति मे सहायक हो सकता है । नही तो विवाहित जीवन का मुख्य उद्देश्य कभी पूरा नही हो सकता । हम दैनिक जीवन की साधारण घटनाओ से भी उसकी पुष्टि कर सकते हैं। दो मित्र परस्पर के सहयोग से प्रत्येक कार्य अत्यन्त सफलता से व प्रसन्नता से पूर्ण कर सकते हैं । हसी-खुशी मे जीवन की कठिनाइया भी मनुष्य को हताश नही कर सकतीं । जटिल से जटिल समस्याए भी पारस्परिक सहयोग से क्षण भर मे हल हो जाती हैं । एकाकीपन का विचार ही कठिनाइयों को बढाने तथा असन्तोष का कारण होता है ।

५-आदर्शो का पतन

विवाह से सम्बधित भारतीय आदर्श उस समय बहुत महत्त्वपूर्ण रहे । उनके फलस्वरूप गृहस्थ-जीवन बहुत सुखमय तथा आह्लादकर था । सामाजिक अवस्था के साथ-साथ नैतिक तथा धार्मिक आदर्श भी ऊचे रहे । पति-पत्नी विषय-भोग को ही जीवन का आदर्श न मानकर अपने कर्त्तव्यपथ से च्युत न होते थे । अपने पवित्र उद्देश्य की ओर से सर्वदा जागरूक रहना ही उनकी विशेषता रही । सन्तानोत्पत्ति के लिए ही विषयभोग की मर्यादा सीमित रखी गई । सन्तान भी अनुपम तेजस्वी, बलवान् व गम्भीर होती थी । इस प्रकार प्राचीन भारत का सामाजिक व नैतिक स्तर सर्वदा ऊंचा ही रहा । पर दुर्भाग्य से ये आदर्श स्थायी नही रहे । राजनैतिक परिस्थितियो के अनुसार उनमे सतत परिवर्तन होते रहे । कुछ इस्लामी सस्कृति के प्रभाव ने तथा विशेष रूप से पाश्चात्य सस्कृति की चमक ने हमारे नेत्र की ज्योति को एकाएक चकाचौंध-सा कर दिया । हमारे नेत्र खुद को देखने में असमर्थ से हो गए । हम उस रग मे इतने अधिक रग गए कि सदियो से चले आये हुए हमारे उस रंग का कुछ अस्तित्व ही न रह गया । कुछ स्वाभाविक रूप से नवीनता

की भडकीली लहर रुचिकर ही आभासित होती है और कुछ राज-नैतिक परिस्थितियो के बन्धन मे हम बन्ध गए । लेकिन जनता की रुचि मे राजनैतिक परिस्थिति की अपेक्षा मनोवृत्तियो का ज्यादा असर रहा। पाश्चात्य कला, पाश्चात्य शिक्षा, पाश्चात्य वातावरण, रहन-सहन, वेश-भूषा,खान-पान ने भारतवर्ष मे आश्चर्यजनक प्रभाव डाला । पुराने रीति-रिवाज, चाहे उनके पीछे नैतिक उन्नति के कितने ही बहुमूल्य सिद्धात क्यो न छिपे हो, हम अपनी शान के विरुद्ध समझने लगे । इस प्रकार इस पाश्चात्य लहर के साथ साथ हम बह गए। प्राचीन आदर्शों को सदैव के लिए नियति के गर्भ मे छोड-कर हम नवीनता के नूतन पथ की ओर अग्रसर हो गए ।

यो तो आजकल भी विवाह के वैसे ही रीतिरिवाज चल रहे हैं पर उसके मूलभूत आदर्शों को भूल जाने से उनमे कुछ जान नहीं रही। वे सौन्दर्य व सुगन्ध से रहित पुष्प की तरह मलिन, स्वाद तथा पोषक तत्त्व के अभाव मे भोजन की तरह नीरस तथा आत्मा के बिना निर्जीव शरीर के समान निकम्मे है ।

बिषय-भोगों मे ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य समझ कर हम पथभ्रष्ट होकर विपरीत दिशा की ओर अबाध गति से गमन कर रहे हैं । कहा नही जा सकता कि पाश्चात्य सस्कृति कहा तक भारती-यता को कायम रखकर लोगो के नैतिक स्तर को उन्नत कर सकती है। अभी तक के प्रयोग के अनुसार नैतिकता की दृष्टि से भारतीय नवयुवक अपनी मर्यादा को सीमित रखने मे सर्वथा असमर्थ रहे पर निश्चित रूप से विवाह सम्बन्धी पाश्चात्य कायदे-कानून भारत मे कभी सफल नही हो सकते ।

अभी अधिकाश नवयुवक विवाह के महत्त्व को समझते भी नहीं । वे तो इसे दुर्विषयभोग का साधन मानते हैं। अगर कुछ समय के लिए मान भी लिया जाय कि विवाह का उद्देश्य विषयभोग ही

है तो क्या हम सोच सकते हैं कि विवाह प्रथा के अभाव में हमारा सामाजिक जीवन अधिक सुखी रह सकता है ? यह कल्पना तो स्वप्न मे भी सर्वथा असम्भव है । ऐसी परिस्थिति मे तो सर्वत्र अशाति तथा असन्तोष का साम्राज्य हो जायगा । मनुष्य स्वभावत अपने प्रेमी के प्रेम मे अन्य पुरुषो का साझीदार होना सहन नही कर सकता । आज भी एक स्त्री के अनेक चाहने वाले तथा एक पुरुष को अनेक चाहने वाली स्त्रियो के मध्य मे निरन्तर विद्वेषाग्नि प्रज्वलित रहती है । इस प्रकार विवाहप्रथा न होने पर मनुष्य उस दाम्पत्य प्रेम से सर्वथा वचित रह जाता, जो विवाहित पति-पत्नी मे हुआ करता है । विवाह की प्रथा का स्थान यदि नैमित्तिक सम्बन्ध को ही प्राप्त होता, तो स्त्री-पुरुष एक-दूसरे से उतने ही समय तक प्रेम करते, जब तक कि विषयभोग नही भोगा जा चुका है या जब तक वे विषय-भोग भोगने के लिए लालायित रहते हैं । उसके बाद उस प्रेम सम्बन्ध की समाप्ति हो जाएगी । ऐसी अवस्था मे तो सामाजिक स्थिति के और भी बिगडने की सम्भावना है। स्त्रियो की परिस्थिति तो और भी विषम होगी । मनुष्य मात्र के स्वच्छन्द हो जाने पर सहानुभूति, दया व प्रेम का भी सद्भाव न होगा । मनुष्य का सुख कुछ निश्चित समय तक ही सीमित रहेगा और बाद का जीवन अत्यन्त पश्चात्तापपूर्ण, नीरस तथा दुखमय होगा । अपने उत्तरदायित्व से दोनो स्त्री-पुरुष बचने का प्रयत्न करते रहेगे तो सन्तानो के पालन-पोषण की समस्या भी बहुत जटिल होगी । आज की सन्तानो पर ही तो कल का भविष्य निर्भर है। अत सामाजिक अवस्था और भी खराब हो जायगी । कृत्रिम उपायो द्वारा सतति-निरोध हुआ तो भ्रूण हत्या या बाल-हत्या जैसी भयकर चेष्टाओ द्वारा समाज पशुता पर उतरने में भी सकोच नही करेगा । धीरे-धीरे प्रेम, अहिंसा, सहानुभूति वात्सल्य आदि मानवोचित गुणो के लुप्त होने के साथ मानवता दानवता के रूप मे परिवर्तित होने लग जायगी ।

६—विवाह का उद्देश्य

वास्तव मे विवाह का उद्देश्य दुर्विषय—भोग नही है किन्तु ब्रह्मचर्य पालन की कमजोरी को धीरे—धीरे मिटा कर ब्रह्मचर्य पालन की पूर्ण शक्ति प्राप्त करना तथा आदर्श गृहस्थ जीवन व्यतीत करना है। यदि कामवासना को शान्त करने की पूर्ण क्षमता विद्यमान हो तो विवाह करने की कोई विशेष आवश्यकता नही। जिस प्रकार यदि आग न लगने दी गई या लगने पर तत्क्षण बुझा दी गई, तब तो दूसरा उपाय नही किया जाता और तत्क्षण न बुझा सकने पर और बढ जाने पर उसकी सीमा करके उसे बुझाने का प्रयत्न किया जाता है। इसके लिए जिस मकान मे आग लगी होती है, उस मकान से दूसरे मकानो का सम्बन्ध तोड दिया जाता है, ताकि उनमे वह फैल न सके और इस प्रकार उसे सीमित करके फिर बुझाने का प्रयत्न किया जाता है। वह आग, जो लगने के समय ही न बुझाई जा सकी थी, इस उपाय से बुझा दी जाती है, बढने नही दी जाती। यदि आग को, सीमित न कर दिया जाय, तो उसके द्वारा अनेक मकान भस्म हो जाए। यही दृष्टात विवाह के सम्बन्ध मे भी है। यदि मनुष्य मन पर नियत्रण रख कर उद्दीप्त कामवासना पर नियंत्रण रख सकता हो या उद्दीप्त होने ही न दे सकता हो तो उसे विवाह की कोई आवश्यकता नही। लेकिन उपयुक्त नियत्रण न रख सकने के कारण उस अग्नि को विवाह द्वारा सीमित कर दिया जाता है। इस प्रकार वासना की अग्नि बढने नही पाती तथा मनुष्य की शारीरिक व मानसिक शक्तियो का ह्रास होने से बच जाता है। यदि नियंत्रण की क्षमता न हो और विषयेच्छा की पूर्ति मे पूर्ण स्वतन्त्रता हो तो भयकर हानि की सम्भावना है। तात्पर्य यह है कि विवाह करने के पश्चात् भी विषयेच्छा को सीमित करने का प्रयत्न करना

चाहिए तथा आदर्श गृहस्थ-जीवन व्यतीत कर हृदय की विशालता द्वारा अपने कर्त्तव्यपथ को ओर अग्रसर होते रहना चाहिए।

आदर्श विवाहित जीवन व्यतीत करने मे वात्सल्य, अनुकम्पा, सहानुभूति, विश्वमैत्री आदि सद्गुणो का भी समुचित निर्वाह किया जा सकता है, जिसका लाभ स्वच्छन्दता मे नही होता। सतान के पालन-पोषण तथा उनके प्रति वात्सल्य गृहस्थजीवन मे ही हो सकता है, जो कि विश्वमैत्री की ओर अग्रसर होने का प्रथम प्रयास होता है। अगर मनुष्य इतने सीमित क्षेत्र मे भी सफलता प्राप्त न कर सके तो उससे क्या आशा की जा सकती है कि वह और विस्तृत क्षेत्र मे प्रवेश कर प्राणीमात्र के कल्याण का प्रयत्न करेगा ?

ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर दुराचारपूर्ण जीवन श्लाघ्य नही हो सकता। इस विषय मे गाधीजी लिखते हैं —

"यद्यपि महाशय ब्यूरो अखड ब्रह्मचर्य को ही सर्वोत्तम मानते हैं लेकिन सबके लिए यह शक्य नही है, इसलिए वैसे लोगों के लिए विवाह-बधन केवल आवश्यक ही नही, वरन् कर्त्तव्य के बराबर है।" गांधीजी आगे लिखते हैं:—

"मनुष्य के सामाजिक जीवन का केन्द्र एक पत्नीव्रत तथा एक पतिव्रत ही है।" यह तभी सम्भव है, जब स्वच्छन्दता निंद्य समझी जाए और उसे विवाहबधन द्वारा त्यागा जाए।

विवाह, पुरुष व स्त्री के आजीवन साहचर्य का नाम है। यह साहचर्य कामवासना को सीमित कर आदर्श गृहस्थजीवन के निर्माण का साधन है। एक पाश्चात्य विद्वान् लिखता है —

'विवाह करके भी, विषय-विलासमय असयमपूर्ण जीवन व्यतीत

करना धार्मिक और नैतिक दोनो दृष्टियों से अक्षम्य अपराध है। असंयम से वैवाहिक जीवन को ठेस पहुचती है । सतानोत्पत्ति के सिवाय और सभी प्रकार की काम-वासना-तृप्ति दाम्पत्य प्रेम के लिए बाधक और समाज तथा व्यक्ति के लिए हानिकारक है ।'

इस कथन द्वारा जैन-शास्त्र तथा वैदिक सिद्धान्तो के कथन की पुष्टि की गई है। जैन-शास्त्र तो इसके आद्य-प्रेरक ही हैं।

विवाह तो तुम्हारा हुआ, पर देखना चाहिए कि तुम विवाह करके चतुर्भुज बने हो या चतुष्पद ? विवाह करके अगर बुरे काम मे पड गये तो समझो कि चतुष्पद बने हो। अगर विवाह को भी तुमने धर्मसाधना का निमित्त बना लिया हो तो निस्सदेह तुम चतुर्भुज, जो ईश्वर का रूप माना जाता है, बने हो। इस बात के लिए सतत प्रयत्न करना चाहिए कि मनुष्य चतुष्पद न बन कर चतुर्भुज-ईश्वर-रूप-बने और अन्तत. उसमे एव ईश्वर मे किंचित् भी भेद न रह जाय।

विवाह में जहा धन की प्रधानता होगी, वहा अनमेल विवाह हो, यह स्वाभाविक है। अनमेल विवाह करके दाम्पत्य जीवन मे सुख-शाति की आशा करना ऐसा ही है, जैसे नीम बोकर आम के फल की आशा करना। ऐसे जीवन मे प्रेम कहा ? प्रेम को तो वहा पहले ही आग लगा दी जाती है ।

❀ ❀ ❀

प्राचीन काल मे, विवाह के सम्बन्ध में कन्या की भी सलाह ली जाती थी और अपने लिए वर खोजने की स्वतन्त्रता उसे प्राप्त थी। माता-पिता इस उद्देश्य से स्वयवर की रचना करते थे। अगर कन्या ब्रह्मचर्य पालन करना चाहती थी तो भी उसे अनुमति दी

जाती थी । भगवान् ऋषभदेव की ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दोनो कन्याए विवाह के योग्य हुई । भगवान् उनके विवाह-सम्बन्ध का विचार करने लगे । दोनो कन्याओ ने भगवान् का विचार जाना तो कहा—'पिताजी, आप हमारी चिन्ता न कीजिए । आपकी पुत्री मिट-कर दूसरे की पत्नी बनकर रहना हमसे न हो सकेगा ।' अन्ततः दोनो कन्याए आजीवन ब्रह्मचारिणी रही ।

हा, विवाह न करके अनीति की राह चलना बुरा है पर ब्रह्मचर्य पालन करना बुरा नही है । ब्रह्मचारिणी रहकर कुमारी-काए जन-समाज की अधिक से अधिक और अच्छी से अच्छी सेवा कर सकती हैं ।

बलात् ब्रह्मचर्य और बलात् विवाह दोनो बातें अनुचित हैं । दोनो स्वेच्छा और स्वसामर्थ्य पर निर्भर होनी चाहिए ।

❀ ❀ ❀

स्त्री और पुरुष के स्वभाव मे जहा समता नही होती, वहा शातिपूर्वक जीवन-व्यवहार नही चल सकता । विवाह का उत्तर-दायित्व अगर माता-पिता अपना समझते हो तो प्रतिकूल स्वभाव वाले पुत्र-पुत्री का विवाह उन्हे नही करना चाहिए । लोभ के वश होकर अपनी सतान का विक्रय करके, उनका जीवन दु खमय बनाना माता-पिता के लिए घोर कलक की बात है ।

पुरुष मनचाहा व्यवहार करें, स्त्रियो पर अत्याचार करें, चाहे जितनी बार विवाह करने का अधिकार भोगें, यह सब विवाह-प्रथा से विपरीत प्रवृत्तिया हैं । ऐसे कामो से विवाह की पवित्र प्रथा कलु-षित हो गई है । विवाह का आदर्श भी कलुषित हो गया है । विवाह का वास्तविक आदर्श स्थापित करने के लिए पुरुषो को सयम-

शील होना चाहिए ।

❀ ❀ ❀

आजकल धन एव आभूषणो के साथ विवाह किया जाता है। भारत के प्राचीन इतिहास को देखो तो पता चलेगा कि सीता, द्रौपदी आदि का स्वयवर हुआ था । उन्होने अपने लिए आप ही वर पसद किया था । भगवान् नेमिनाथ तीन सौ वर्ष की उम्र तक कुमार रहे। क्या उन्हे कन्या नही मिलती थी ? पर उनकी स्वीकृति के बिना विवाह कैसे हो सकता था ? इसी कारण उनका विवाह नहीं हुआ। आजकल विवाह मे कौन अपनी सतान को सलाह लेता है ?

गाधीजी भी लिखते हैं —

'विवाहबधन की पवित्रता को कायम रखने के लिये भोग नहीं, किन्तु आत्मसयम ही जीवन का धर्म समझा जाना चाहिए। विवाह का उद्देश्य दम्पती के हृदयो से विकारो को दूर करके उन्हे ईश्वर के निकट ले जाना है ।'

विवाह सस्कार द्वारा आजीवन साहचर्य ऐसे ही स्त्री-पुरुषो का सफल और उपयुक्त हो सकता है जो स्वभाव, गुण, आयु, बल, वैभव, कुल और सौन्दर्य आदि को दृष्टि मे रखकर एक-दूसरे को पसन्द करें । स्त्री-पुरुष मे से किसी एक की ही इच्छा से विवाह नही होता किन्तु दोनो की इच्छा से हुआ विवाह ही विवाह के अर्थ मे माना जा सकता है । जबर्दस्ती केवल माता-पिता की इच्छा से किया गया विवाह सफल गृहस्थ-जीवन के लिए उचित नही हो सकता । अर्थ-सम्बन्धी प्रश्न को सामने रखकर किया जाने वाला विवाह तो समाज के लिए और भी घातक सिद्ध होगा । इसमे समान गुण व समान धर्म व समान मनोवृत्तियो वाले साथियो का मिलना दुर्लभ होगा, और निर्धन श्रेणी के पुरुषो के लिए यह बहुत जटिल

समस्या हो जायगी ।

विवाह सम्बन्ध स्थापित करने मे पुरुष और स्त्री का अधिकार समान ही होना उचित है अर्थात् जिस प्रकार पुरुष स्त्री को पसन्द करना चाहता है, उसी प्रकार स्त्री भी पुरुष को पसन्द करने की अधिकारिणी है । ऐसी अवस्था मे सामाजिक सन्तुलन ठीक रहेगा और पति-पत्नी के मध्य-मैत्री सम्बन्ध स्थापित होगा । बल्कि इस विषय मे स्त्रियो के अधिकार पुरुषों से भी अधिक हैं । स्त्रिया अपने लिए वर चुनने के लिए स्वयवर करती थी, यह कहा जा चुका है। पर पुरुषो ने अपने लिये स्त्री पसन्द करने को स्वयवर की ही तरह का कोई स्त्री-सम्मेलन किया हो, ऐसा प्रमाण कहीं नही मिलता । इस प्रकार पूर्वकाल मे स्त्री की पसन्दगी को विशेपता दी जाती थी । फिर भी यह आवश्यक न था कि जिस पुरुष को स्त्री चुने, वह उसके साथ विवाह करने को बाध्य किया जाय । स्त्री के पसन्द करने पर भी यदि पुरुष की इच्छा विवाह करने की नही होती तो विवाह करने से इन्कार करना कोई नैतिक या सामाजिक अपराध नहीं माना जाता था, न अब माना जाता है । विवाह के लिये स्त्री और पुरुष दोनो ही को समान अधिकार है । और यह नही है कि पसन्द आने के कारण पुरुष, स्त्री के साथ और स्त्री, पुरुष के साथ विवाह करने के लिए नीति या समाज की ओर से बाध्य हो । विवाह तभी हो सकता है, जब स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को पसन्द कर लें और एक-दूसरे के साथ विवाह करने के इच्छुक हो । इस विषय में जबर्दस्ती को जरा भी स्थान नही है ।

ग्रन्थकारो ने, विशेषत तीन प्रकार के विवाह बताए हैं-देव-विवाह, गन्धर्व-विवाह और राक्षस-विवाह । ये तीनो विवाह इस प्रकार हैं: -

जो विवाह, वर और कन्या दोनो की पसन्दगी से हुआ हो, जिसमे वर ने वधू के और वधू ने वर के पूर्ण रूप से गुण-दोष देखकर एक-दूसरे ने, एक-दूसरे को अपने उपयुक्त समझा हो तथा जिस विवाह के करने से वर और कन्या के माता-पिता आदि अभिभावक भी प्रसन्न हो, जो विवाह रूप, गुण, स्वभाव आदि की समानता से विधि और साक्षीपूर्वक हुआ हो और जिस विवाह मे दाम्पत्य, कलह का भय न हो और जो विवाह विषयभोग के ही उद्देश्य से नही किन्तु विश्वमैत्री के आदर्श तक पहुंचने के लक्ष्य से किया गया हो, उसे देव-विवाह कहते हैं। यही विवाह सर्वोत्तम माना जाता है।

जिस विवाह मे वर ने कन्या को और कन्या ने वर को पसन्द कर लिया हो, एक-दूसरे पर मुग्ध हो गए हो, किन्तु माता-पिता आदि अभिभावक की स्वीकृति के विना ही, एक ने दूसरे को स्वीकार कर लिया हो एव जिसमे देश-प्रचलित विवाह-विधि पूरी न की गई हो, उसे गान्धर्व-विवाह कहते हैं। यह विवाह देव-विवाह की अपेक्षा मध्यम और राक्षस-विवाह की अपेक्षा अच्छा माना जाता है।

राक्षस-विवाह उसे कहते हैं, जिसमे वर और कन्या एक-दूसरे को समान रूप से न चाहते हो किन्तु एक ही व्यक्ति दूसरे को चाहता हो, जिसमे समानता का ध्यान न रखा गया हो, जो किसी एक की इच्छा और दूसरे की अनिच्छापूर्वक जबर्दस्ती या अभिभावक की स्वार्थलोलुपता से हुआ हो और जिसमे देशप्रचलित उत्तम विवाह की विधि को ठुकराया गया हो तथा वैवाहिक-नियम भग किए गए हो। यह विवाह उक्त दोनो विवाहो से निष्कृष्ट माना जाता है।

पहले बताया जा चुका है कि कम से कम आयु का चौथा

भाग यानी पच्चीस और सोलह वर्ष की अवस्था तक के पुरुष-स्त्री को अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए। यह अवस्था सफल गृहस्थ-जीवन के लिए शरीर और मन को पूर्ण विकसित करने की है। इससे पूर्व मनुष्य की शारीरिक व मानसिक शक्तियो को बल नही मिलता।

बाल-विवाह के कुपरिणामो से भारतवर्ष अपरिचित नहीं। उससे शारीरिक शक्तियो के ह्रास होने के सिवाय स्त्रियों की स्थिति मे भी बहुत फर्क पडता है। विधवाओ की बढती हुई सख्या इसी का परिणाम है। कमजोर व अधिक सतानें कई विषम परिस्थितिया उत्पन्न कर देती हैं। शिक्षण तथा पोषण की समुचित व्यवस्था न होने से वे राष्ट्र की सम्पत्ति होने के बजाय भारभूत ही सिद्ध होती हैं। पूर्ण परिपक्व अवस्था को प्राप्त होने पर ही पुत्र-पुत्रियो का विवाह करना उचित है।

७-प्राचीन-कालीन विवाह

विवाह का मुख्य उद्देश्य आदर्श-गृहस्थ-जीवन व्यतीत कर अपने हृदय की विशालता तथा विश्वमैत्री के सिद्धांत तक पहुचना था। केवल विषय-भोग की पूर्ति के लिए विवाह नही होते थे। केवल सतानोत्पत्ति के लिए ही रति-क्रिया करने का विधान था। पशुओ के समान निरन्तर वासना के कीडे बने रहना, भारतीय सस्कृति के सर्वथा विपरीत था।

वेद के मन्त्रों मे, जहां संतानोत्पत्ति का प्रसग है, स्पष्ट लिखा है कि सन्तान शत वर्ष तक जीने वाली, हृष्ट-पुष्ट तथा बुद्धिशाली हो। वह उत्तम विचारो वाली तथा माता-पिता से भी बुद्धि-बल मे बढी-चढी हो। सतति सुधार के विचारो का प्रचार तो यूरोप में

अभी-अभी हुआ है । किन्तु हजारो वर्ष पहिले जब यूरोप 'पाषाण व 'कोयला' युग के दिन गिन रहा था, भारतवर्ष की सभ्यता तथा संस्कृति अपनी पवित्रता, बल एव बुद्धि के कारण विश्वमैत्री के सिद्धात का पालन करने का दावा करती थी । सततिसुधार के विज्ञान का प्रचार उस समय भी था । वेद के प्रत्येक सूक्त मे इस विषय का विचार भरा पडा है । कहा गया है कि—

"तं माता दशमासान् विभर्तु स जायतां वीरतमः स्वानाम्"

अर्थात् दस मास पश्चात् जो पुत्र हो, अपने सब सम्बन्धियो की अपेक्षा अधिक वीर हो ।

वेद सन्तानों की अधिक सख्या को महत्त्व नही देते हैं । अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाले माता-पिता ही पूजनीय न थे पर गुणों को अधिक महत्त्व दिया जाता था । एक ही सन्तान हो पर अपूर्व तेजस्वी तथा बलशाली हो ।

इस प्रकार वैदिक आदर्श-विवाह कोई साधारण कार्य नहीं था । उसके अनुसार पति-पत्नी पर अपने-अपने कर्त्तव्य पूर्ण करने का उत्तरदायित्व था ।

विवाह करके पति-पत्नी विशालता को प्राप्त होते हैं । महानता के गुण लेकर स्वार्थ की परिधि का उल्लघन कर परार्थ के समीप पहुचने का प्रयत्न करते हैं । जगत् की मगल कामना के प्रयत्न मे वे अपनी समस्त शक्ति और बल लगाने को उद्यत हो जाते हैं । तन मन धन से मानवता के कल्याण का प्रयत्न करना ही उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य है ।

इसी आदर्श की तरफ ले जाने मे गृहस्थ-जीवन की सफलता

है। यदि इस आदर्श तक न पहुच सके तो गृहस्थ-जीवन सर्वथा असफल है। विषय-वासना को त्याग कर सयममय जीवन व्यतीत करते हुए दूसरो के स्वार्थ को अपना स्वार्थ समझना तथा गृहस्थ जीवन से भी ऊचे उठकर इस आश्रम को त्याग देना ही गृहस्थजीवन का उद्देश्य है। यह जीवन के महान् उद्देश्य तक पहुचने का साधन माना गया है, जीवन का अन्तिम लक्ष्य नही।

इसी आदर्श को पूर्ण रूप से समझने में गृहस्थजीवन की सफलता है। प्राचीन सभी राजा कुछ समय तक विषय-भोग, भोग कर वृद्धावस्था मे पुत्र को राज्य देकर मुनि बन जाते थे। इक्ष्वाकु वश मे यही प्रथा थी कि राजागण राजकार्य पुत्र के हवाले कर वन-वास करते थे। जैन-शास्त्रो मे भी इसी प्रकार के उल्लेख आते हैं। प्राय सभी राजा युवावस्था मे राज-सुख तथा गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने के बाद वृद्धावस्था मे मुनि हो जाते थे। अन्तिम समय तक विषय-भोग मे ही पडे रह कर गृहस्थजीवन ही मे रहना बहुत ही कायरता का चिह्न तथा निंदनीय समझा जाता था।

अन्तिम समय मे सब घरेलू झगडो को छोड कर शातिपूर्ण संयममय जीवन व्यतीत किया जाता था। मुनिवृत्ति धारण कर पूर्ण ब्रह्मचर्य से जीवन को उत्तरोत्तर पवित्रता की ओर अग्रसर करना ही उस समय के जीवन का लक्ष्य था। जैन-मुनि ज्ञान प्राप्त कर लोगो को सच्चा मार्ग-प्रदर्शन करते थे। पूर्ण अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि के प्रयोग से अनुपम सिद्धि प्राप्त करने का उनका उद्देश्य होता था। १०-१२ परिवार के सदस्यो के बदले प्राणिमात्र उनका कुटुम्ब हो जाता था।

८-प्रेम-विवाह

अब जरा पाश्चात्य विवाह सम्बन्ध पर भी एक दृष्टि

डालिए। आजकल भारतवर्ष मे पाश्चात्य प्रभाव से प्रेम-विवाह अर्थात् Love Marriage सामाजिक जीवन का महत्त्वपूर्ण अग बन गया है। आजकल के अ ग्रेजी शिक्षित नवयुवक व नवयुवतिया प्राचीन भारतीय विवाहों को एक ढकोसला मात्र समझते हैं तथा प्रेम-विवाह पर जोर देते हैं। उनका कथन है कि माता-पिता द्वारा वर अथवा वधू की खोज किया जाना अनुचित है। यह तो पति-पत्नी के जीवन का प्रश्न है, जो जैसा चाहे वैसा साथी चुन सकता है। सम्भव है कि माता-पिता अपनी कन्या के लिए अपनी दृष्टि से अच्छा वर चुनें पर वह कन्या को किन्ही कारणो से पसन्द न हो, क्योकि "भिन्न-रुचिर्हि लोक" के कथनानुसार विश्व मे रुचिवैचित्र्य भी हो सकता है। अत कन्या को पूर्ण अधिकार होना चाहिए कि वह अपने पति का चुनाव कर सके। इसी प्रकार पुत्र को भी यह पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह अपने अनुकूल पत्नी का चुनाव कर सुखपूर्ण दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर सके।

इस प्रकार की वैवाहिक स्वतन्त्रता को 'प्रेम-विवाह' कहा जाता है। यह हमारे प्राचीन वैवाहिक वर्गीकरण मे गन्धर्व-विवाह के समान है।

यह प्रश्न आजकल बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार की वैवाहिक व्यवस्था चाहे पहली दृष्टि मे सुन्दर तथा व्यावहारिक मालूम पडे पर क्रियात्मक रूप से इसका प्रयोग असफल ही रहता है। प्राय कालेज के विद्यार्थी नवयुवक तथा नवयुवतिया प्रेम-विवाह के अधिक पक्षपाती होते हैं। यह प्रयोग उन्हे अधिक रुचिकर प्रतीत होता है। पर प्रेम-विवाह से विवाहित स्त्री-पुरुष समाज तथा राष्ट्र के प्रति वैवाहिक आदर्श की पूर्णता के लिए असमर्थ रहे है।

वास्तव मे जहा स्त्री-पुरुष अपने-अपने कर्त्तव्य के प्रति पूर्ण

रूप से सजग रहे, वहा प्रेम-विवाह का प्रश्न ही नही उठता। पर जब वासनातृप्ति ही विवाह का उद्देश्य होता है, उसी अवस्था मे प्रेम-विवाह की ओर दृष्टिपात किया जाता है। मनुष्य अगर अपने वैवाहिक आदर्श तथा कर्त्तव्य को समझकर विवाह करता है तथा उसके अनुसार आचरण करने के लिए प्रयत्नशील रहता है तो कोई भी जीवन-साथी उसे अप्रिय तथा अरुचिकर नही लग सकता। अलबत्ता कुछ मानवोचित गुणो का होना अपेक्षणीय है। हम प्रेम-विवाह के सम्बन्ध मे आज तक के प्रयोग के आधार पर विचार करते हैं और वह भी भारतवर्ष की दृष्टि से। अन्य देशो की सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियो से भारतीय मनोवृत्ति मे बहुत भिन्नता है। निश्चयात्मक रूप से यह नही कहा जा सकता कि वहा के प्रयोग भारतवष मे भी सफल हो सकते हैं।

आजकल शिक्षित नवयुवक तथा नवयुवतिया यौवन के वासनात्मक प्रवाह मे अधे होकर बहते हुए प्रेम-विवाह की शरण लेते हैं। उस समय उनका दृष्टिकोण आदर्शात्मक न होकर ऐन्द्रिय सुखात्मक ही होता है। ऐसे प्रवाह मे बहते हुए न तो कभी ऐसे योग्य जीवन-साथी का चुनाव होता है, जो जीवन मे आदर्श बनकर कर्त्तव्य क्षेत्र की ओर अग्रसर कर सके और न ऐसे जीवन-पथ का निर्माण होता है, जिसके द्वारा वे अपने लक्ष्य तक पहुच सकें। अज्ञात तथा अनिर्दिष्ट पथ मे वे अपने जीवन के वास्तविक आनन्द का उपयोग भी नही कर सकते।

अकसर प्रेम-विवाह का प्रेम-बरसाती नाले के सदृश होता है, जो प्रारम्भ मे अपनी पूर्णता के कारण बडी-बडी महत्वाकाक्षाओ को जन्म देता है पर धीरे-धीरे आश्चर्यजनक गतिविधि से कम होता हुआ शून्यता को प्राप्त हो जाता है। अपने कर्त्तव्य की ओर निरन्तर

जागरूक रहने से कभी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न नही हो सकती। भारतीय आदर्श के अनुसार तो वास्तविक प्रेम पति–पत्नी मे निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता रहना चाहिए। विवाह मे मुख्य वस्तु तो आदर्श प्राप्ति है। अगर उसका अस्तित्व है तो चाहे वह प्रेम–विवाह हो अथवा प्राचीन भारतीय विवाह, एक ही वस्तु है। नाम मात्र की भिन्नता होने से किसी वस्तु के प्रभाव व परिणाम मे भिन्नता नही होती। वर्तमान समय मे प्रेम-विवाह के परिणाम छिपे नही। प्रेम-विवाह के पश्चात् तलाक प्रथा भी आवश्यक हो जाती है। फलतः भारतवर्ष मे इस तरह के विवाह तो एक तरह के खिलवाड-से हैं। अधिकाश भारतीय शिक्षिता स्त्रिया, जिनमे कुछ तो राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र मे अभिनेत्रिया भी हैं, पहले प्रेम-विवाह कर वाद मे अपने पतिदेव को तलाक देकर ही अपने जीवन को सुखी बनाती हैं।

इस प्रकार गृहस्थ-जीवन अपने आदर्श को पूर्ण रूप से समझने व आचरण करने से ही है। पति–पत्नी अगर दोनो ही अपने कर्त्तव्य को समझ कर आचरण करें, तभी जीवन सुखी हो सकता है क्योंकि किसी एक की भी कमजोरी के कारण जीवन दुखमय हो सकता है।

सफल-गृहस्थी के लिए युवक व युवतियो का आपस मे सच्चा प्रेम करना सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु समझी जाती है। उसी दृष्टि से प्रेम–विवाह का प्रयोग किया जाने लगा पर वह अपने प्रयोग मे असफल ही सिद्ध हुआ। युवक किसी सुयोग्य युवति को ढूढने तथा युवतिया प्रेमियो को अपने प्रेमपाश मे बांधने के लिए अपने जीवन का वहुमूल्य अश नष्ट कर देते हैं क्योकि उसमे वैषयिक सुखभोग का दृष्किोण प्रधान रहता है, अत जीवन के उद्देश्य मे सफलता नही मिलती। अपने कर्त्तव्य की ओर किसी का लक्ष्य नही रहता। किसी

भी अवस्था मे इन परिस्थितियो में न विषयसुख प्राप्त हो सकता है और न लक्ष्यप्राप्ति । केवल प्रियतम व्यक्ति के साथ सम्मिलन को ही विवाहित जीवन की सफलता मानना भयकर भूल है। मनुष्य इतना समझने मे क्यो गलती करते हैं कि कुछ समय के लिए वैषयिक सुख देने वाला ही विश्व मे प्रियतम नही हो सकता ? प्रियतम होने के लिए अन्य बहुत वस्तुए शेष रहती हैं । अपनी आत्माओ को एक-दूसरे मे लय कर देना तो बहुत दूर की बात है, दैनिक जीवन तो कम से कम शान्तिपूर्ण तथा सुखपूर्ण होना ही चाहिए ।

६-बाल-विवाह

२५ और १६ वर्ष की अवस्था होने पर ही, पुरुष और स्त्री इस बात के निर्णय पर पहुचते हैं कि हम आयु भर ब्रह्मचर्य पालन कर सकते हैं या नही ? अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार करने की शक्ति हम मे है या नही ? जो लोग ऐसा करने में समर्थ होते हैं, वे तो पूर्ण ब्रह्मचर्य की ही आराधना करते हैं, विवाह के झझटो में नही फसते, जैसे भीष्म पितामह । लेकिन, जो लोग ससार में रहते हुए पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने मे अपने आपको असमर्थ समझते हैं, वे विवाह करते हैं । जैन शास्त्रो में तो पूर्ण ब्रह्मचर्य के लिये ही कहा गया है, विवाह के लिये नही, लेकिन नीतिकारो ने ब्रह्मचर्यव्रत पालन करने में असमर्थ लोगो के लिये विवाह का विधान नियत किया है और विवाह न करके दुराचार में प्रवृत्त होने का तो अत्यन्त निषेध किया है ।

विवाह योग्य अवस्था लडके की २० या २५ वर्ष और लडकी की १६ वर्ष है । लेकिन आधुनिक समय के विवाहो मे, पूर्व-वर्णित इन विवाहों की अवहेलना की जाती है । यद्यपि पुरुष-स्त्री विवाह

बन्धन मे तभी बंध सकते हैं, जब वे आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन की अपनी अशक्तता अनुभव कर लें, लेकिन आज के विवाहो मे ऐसे अनुभव के लिये समय ही नही आने दिया जाता । सिर्फ जैन-समाज मे ही नही, पर भारत की सभी जातियो मे पुरुष और स्त्री युवक-युवती होने से पूर्व ही विवाहित कर दिये जाते हैं । अधिकाश बालक बालिकाओ के माता-पिता अपने बच्चो का विवाह ऐसी अवस्था मे कर देते हैं, जबकि वे बालक विवाह की आवश्यकता, उसकी जवाबदारी और उसका भार समझने के अयोग्य ही नही, परन्तु उससे अनभिज्ञ ही होते हैं । यह अवस्था बालक-बालिकाओ के खेलने-कूदने योग्य है पर माता-पिता बच्चो का खेल देखने के साथ ही विवाह का खेलभी देखने की लालसा से अपने नन्हे बच्चो का भविष्य नष्ट कर देते हैं ।

अभागे भारत मे, ऐसे-ऐसे बालक-बालिकाओ के विवाह सुने जाते हैं, जिनकी अवस्था एक वर्ष से भी कम होती है । अपने बालक या बालिका को दूल्हे या दुलहिन के रूप मे देखने के लिए लालायित मा-बाप अपनी जवाबदारी और सतान की भावी उन्नति, सब को बाल-विवाह की अग्नि मे भस्म कर देते हैं किन्तु यह सर्वथा अनुचित है । ऐसे माता-पिता अपने कर्त्तव्य को भुलाकर बालक और बालिकाओं के प्रति अन्याय करते हैं । अपने क्षणिक सुख के लिये अपने बालको को भोग की धधकती हुई ज्वाला मे भस्म होने के लिये छोड देते हैं और अपनी सतान को उसमे जलते हुए देखकर भी आप खडे-खडे हसते हैं तथा यह अवसर देखने को मिला, इसके लिये अपना अहोभाग्य समझते हैं । किन्तु माता-पिताओ के लिये यह सर्वथा अनुचित है । उनका कर्त्तव्य अपनी सतान को सुख देना है, दुःख देना नही ।

आजकल अधिकाश लोगो को यह भी पता नही है कि हमारा

विवाह कब, किस प्रकार और किस विधि से हुआ था तथा विवाह के समय हमे कौन सी प्रतिज्ञाए करनी पडी थीं ? और पता हो भी कैसे, क्योकि उनका विवाह तो मा की गोद मे बैठे-बैठे हो गया था और विवाह तथा वधू किस चिड़िया का नाम है, वे यह भी नही जानते थे। वर-घोडा निकलने पर घोडे पर और मण्डप के नीचे उन्हें देवमूर्तियो की तरह बैठा दिया गया था और भावरो (फेरो) के वक्त वे आराम से नाई और नायन की गोदी मे सो रहे होगे। और जब फेरे फिराये जाते होगे, तब वे अपने पावों से नही पर नाई और नायन के ही पावो से चलते होगे। ऐसी दशा मे वे विवाह की बातें क्या समझें ?

एक समय की बात है। किसी जगह शादी हो रही थी। कन्या और वर दोनो ही अल्पवयस्क थे। रात के समय, जब कि फेरे फिरने थे, कन्या मण्डप मे ही सो गई थी। मां ने उसे जगाया और कहा—उठ बेटी, तेरी शादी हो रही है। कन्या शादी' का अर्थ जानती ही न थी। मा के जगाने पर उसने कहा—'मा, मुझे तो नीद आती है। तू ही अपनी शादी कर ले न।' ऐसा कहकर वह सो गई और आखिर मे नीद मे उसका विवाह हो गया।

अब बताइये कि जो बालक-बालिका शादी-विवाह का नाम तक नही जानते, वे विवाह-सम्बन्धी नियमो का पालन किस प्रकार कर सकेंगे ? उन्हे जब अपने विवाह का ही पता नही है, तब वे विवाह-विषयक प्रतिज्ञाओ को क्या जानें और कैसे उनका पालन करें ? इस प्रकार ऐसी अबोध अवस्था मे किया गया विवाह अन्याय है।

जमाई-बहू के लालची मा-बाप और माल-ताल के भूखे बराती, बालक और बालिका रूपी छोटे-छोटे बछडो को सांसारिक जीवन

को गाडी में जोत कर आप उस गाड़ी पर सवार हो जाते हैं अर्थात् सांसारिक जीवन का बोझ उन पर डाल देते हैं। अपनी स्वार्थमय-भावना के वशीभूत होकर लोग बाल-विवाह-विरोधी बातों की उपेक्षा करते हैं, उपहास करते हैं। यद्यपि वे बाल-विवाह अपनी प्रसन्नता के लिये व सन्तान को सुखी बनाने के लिए करते हैं लेकिन कभी-कभी उसका परिणाम बहुत बुरा होता है। जिसे वे हर्ष का कारण समझते हैं, वही शोक का कारण और जिसे सन्तान को सुखी बनाने का साधन मानते हैं, वही सन्तान को दुखी बनाने का उपाय भी हो जाता है। कुछ लोग इस बात को समझते जरूर हैं पर सामाजिक जीवन से विवश होकर या देखा-देखी बाल-विवाह के घोर पातकमय कार्य मे प्रवृत्त होते हैं और सामाजिक नियम तथा अनुकरण करने वाली कुबुद्धि से असली बुद्धि को विवाह करने तक के वास्ते दूर खदेड देते हैं।

नाती पोते देखकर अपने जीवन को सुखी मानने वाले लोग अपनी सन्तान का विवाह बाल्यावस्था मे ही करके सतोष नही करते, किन्तु विवाह के समय ही या कुछ ही दिन पश्चात् अबोध पति-पत्नी को, उनका उज्ज्वल और सुखमय भविष्य काला और दुख-मय बनाने के लिये एक कोठरी मे बन्द भी कर देते हैं। प्रारम्भ में ही ऐसे सस्कार डाले जाने के कारण वे बालक-बालिका अपने माता-पिता की पोते-पोती विषयक लालसा पूरी करने के लिए दुर्विषय-भोग के अथाह सागर में, अशक्त होते हुए भी, कूद पडते है।

कुछ लोगों ने बाल-विवाह की पुष्टि के लिए धर्म की भी ओट ले रखी है। बाल-विवाह न करना, धार्मिक दृष्टि से वे अप-राध बतलाते हैं। लेकिन जो लोग बाल-विवाह को धार्मिक रूप देते हैं, उन्हीं के ग्रन्थों में लिखा है :—

अज्ञातपतिमर्यादामज्ञातपतिसेवनाम् ।
नोद्वाहयेत् पिता बालामज्ञातां धर्मशासनम् ॥

—हेमाद्रि

अर्थात् पिता ऐसी कम अवस्था वाली कन्या का विवाह कदापि न करे, जो पति की मर्यादा पति की सेवा और धर्म-शासन को न जानती हो।

बाल-विवाह न करने को धार्मिक अपराध बताने वाले लोग, 'अष्टवर्षा भवेद् गोरी' आदि का जो पाठ प्रमाण-स्वरूप बताते हैं, अनेक शास्त्रो के प्रमाणो से, वह प्रक्षिप्त ठहरता है। जान पडता है यह पाठ उस समय बनाया गया था, जबकि भारत मे मुसलमानो का जोर था और वे लोग स्त्रियो और विशेषत अविवाहित कुमारियो का बलात् अपहरण करते थे। मुसलमानो से स्त्रियों की रक्षा करने के लिये ही सम्भवत' यह पाठ बनाया गया था, क्योकि मुसलमान लोग विवाहित स्त्रियो की अपेक्षा अविवाहित स्त्रियो का अपहरण अधिक करते थे। इसलिये विवाह हो जाने पर स्त्रिया इस भय से बहुत कुछ मुक्त समझी जाती थीं।

यद्यपि, मुसलमानी काल में बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित अवश्य हो गई थी, लेकिन आजकल की तरह, अल्पवयस्क पति-पत्नी का विवाह-समय मे ही सहवास नही कराया जाता था। सहवास का समय विवाह-समय से भिन्न होता था, जिसे गौना कहा करते थे और जिसके न होने तक कन्या को प्राय सुसराल मे नही लाया जाता था। आज मुसलमानी काल की-सी स्थिति न होने पर भी, बाल-विवाह प्रचलित है और सहवास की भी कोई निश्चित व्यवस्था नही है।

तात्पर्य यह है कि बाल–विवाह किसी भी धर्म के शास्त्रो में उचित या आवश्यक नही बताया गया है, किन्तु ऐसे विवाहो का निषेध ही किया गया है।

बाल–विवाह और समय से पूर्व के दाम्पत्य-सहवास से शारीरिक विकास रुक जाता है। सौन्दर्य, उत्साह, प्रसन्नता और अंगो की शक्ति घट जाती है। आयुर्बल भी कम हो जाता है। रोग-शोक घेरे रहते हैं। असमय मे ही दात गिर जाते हैं, बाल–पकने लगते हैं। आखो की ज्योति क्षीण हो जाती है और थोड़े ही दिनो मे पुरुष नपुसक और स्त्री स्त्रीत्व–रहित हो जाती है। इस प्रकार पति–पत्नी का जीवन दुखमय हो जाता है।

आयुर्वेद में बतलाया गया है कि यदि सोलह वर्ष से कम अवस्था वाली स्त्री मे २५ वर्ष से कम अवस्था वाला पुरुष गर्भाधान करे तो वह गर्भ उदर मे ही नष्ट हो जाता है। यदि उस गर्भ से सन्तान उत्पन्न भी हुई तो जीवित नही रहती है और यदि जीवित रही भी तो अत्यन्त दुर्बल अंग वाली होती है। इसलिये कम आयु वाली स्त्री मे कभी गर्भाधान न करना चाहिये।

इस प्रकार सतान के लिये भी बाल–विवाह घातक है। इंगलैंड मे मनुष्य की औसत आयु ५१ वर्ष और बाल–मरण प्रति सहस्र ७५ है, लेकिन भारत मे मनुष्यो की औसत आयु केवल २३ वर्ष और बाल–मरण प्रति सहस्र १९४ है। इस महान् अन्तर का कारण यही है कि इगलैड मे बाल-विवाह की घातक प्रथा नही है। लेकिन भारत मे इस प्रथा ने अधिकाश लोगो के हृदय मे अपना घर बना लिया है। पौत्रादि के इच्छुक लोग, अपने बालक–बालिका का विवाह करते तो हैं पोते–पोती के सुख की अभिलाषा से, लेकिन असमय मे ही उत्पन्न सन्तान मृत्यु के मुख मे जाकर, ऐसे लोगो को विलाप

करने के लिये छोड़ जाती है । वह अपने माता-पिता को अशान्त बना जाती है तथा इस प्रकार से उन्हें अपने दुष्कृत्यों का दण्ड दे जाती है । इसी घातक प्रथा के कारण अनेक स्त्रियां प्रसवकाल में ही परलोक को प्रस्थान कर जाती हैं या सदा के लिए रोगग्रस्त हो जाती हैं । और फिर रोगी सन्तान उत्पन्न करके भावी संतति के लिए काटे बिछा जाती हैं ।

बाल-विवाह के विषय मे गांधीजी लिखते हैं, कि हिन्दुस्तान के अलावा और किसी भी देश मे बचपन से ही विवाह की बातें बालकों को नहीं सुनाई जातीं । यहां तो माता-पिता की एक ही इच्छा रहती है कि लड़के का विवाह कर देना । इससे असमय में ही बुद्धि और शरीर का ह्रास होता है । हम लोगो का जन्म भी प्राय बचपन के व्याहे माता-पिता से हुआ है । हमें ऐसा लोकमत बनाने की जरूरत है कि जिसमे बाल-विवाह असम्भव हो जावे । हमारी अस्थिरता, कठिन और अविरत श्रम से अनिच्छा, शारीरिक अयोग्यता, शान से शुरु किये गए कामो को अधूरा छोड़ देना और मौलिकता, का अभाव इत्यादि इन सबके मूल मे मुख्यतः हमारा अत्यधिक वीर्यनाश ही है ।

गांधीजी आगे और भी लिखते है—'जो मां-बाप अपने बच्चों की सगाई बचपन मे ही कर देते हैं, वे उन बच्चो को बेचकर घातक बनते हैं । अपने बच्चो का लाभ देखने के बदले, वे अपना ही अन्धस्वार्थ देखते हैं । उन्हे तो आप बड़ा बनना है, अपनी जाति बिरादरी में नाम कमाना है, लडके का ब्याह करके तमाशा देखना है । लडके का हित देखें तो उसका पढना-लिखना देखें, उसका जरा जतन करें और उसका शरीर बनावें । घर गृहस्थी की झंझट मे डाल देने से बढकर उसका दूसरा कौनसा अहित

सकता है ?'

यदि यह कहा जाए कि धार्मिकता की दृष्टि से बचपन मे विवाह किया जाता है मगर सहवास नही होता तो यह कथन पहले तो सर्वथा नही तो बहुत अंश मे गलत है क्योकि प्राय विवाह के समय मे ही सहवास होना सुना जाता है । कदाचित् विवाह के समय सहवास न होता हो तो बचपन मे विवाह किस दृष्टि से किया जाता है ? ऐसे विवाह प्रत्यक्ष ही हानिप्रद है । बचपन मे ब्याहे गए पति—पत्नी की अवस्था मे विशेष अन्तर नही होता। जिस समय कन्या युवती मानी जाती है, उस समय उसका पति युवावस्था मे पदार्पण भी नही कर पाता । वहू युवती है, इस लोक-लाज के भय से, माता-पिता की दृष्टि में, अपने अल्पवयस्क पुत्र के लिए स्त्री-सहवास आवश्यक हो जाता है । इस प्रकार उस हानि से बचा नही जा सकता, जो बाल-विवाह से होती है । इसके सिवाय, बचपन मे विवाहे गये पति-पत्नी कैसे स्वभाव के होगे, उनके रूप, गुण, शारीरिक—मानसिक विकास, शक्ति आदि मे कैसी विषमता होगी, इसे कोई नही जान सकता। पति-पत्नी मे विषमता होने से, उनका जीवन भी क्लेशमय हो जाता है ।

बचपन मे विवाह होने से विधवाओ की सख्या भी बढती जाती है। समाज मे चार-चार, छः-छः और आठ-आठ वर्ष की विधवाए दिखाई देना, बाल-विवाह का ही कटुफल है। चेचक आदि की बीमारी से बालक-पति की तो मृत्यु हो जाती है और बालिका पत्नी वैधव्य भोगने के लिये रह जाती है । जिस पति से, उस अबोध बालिका ने कोई सुख नहीं पाया है, हृदय मे जिसकी स्मृति का कोई साधन नहीं है, उस पति के नाम पर, एक बालिका से वैधव्य पालन कराने का कारण बाल—विवाह ही है । ऐसी बाल—विधवा

अपनी वैधव्यावस्था किस सहारे से व्यतीत कर सकेगी, यह देखने की कोई आवश्यकता भी नही समझता ।

तात्पर्य यह है कि सहवास न होने पर भी बाल-विवाह हानिप्रद ही है । विवाह हो जाने पर बालक पति-पत्नी ज्ञान और विद्या से भी बहुत कुछ पिछडे रह जाते हैं तथा एक दूसरे के स्मरण से वीर्य मे दोष पैदा हो जाता है । इसलिए बाल-विवाह त्याज्य है ।

विवाह शक्ति प्राप्त करने के लिए किया जाता है । शक्ति के लिये मङ्गलवाद्य बजवाए जाते हैं । शक्ति के लिये ज्योतिषी से ग्रहादिक का सुयोग पूछा जाता है । शक्ति के लिये सुहागिनों का आशीष लिया जाता है । परन्तु जहा अशक्ति के लिए यह सब काम किए जाते हो, वहा के लोगो को क्या कहा जाय ? जो अशक्ति के स्वागत-सत्कार के लिए यह सब समारोह करता हो, उस मूर्ख को किस पदवी से अलकृत किया जाय ?

बाल-विवाह करना अशक्ति का स्वागत करना है । इससे शक्ति का नाश होता है । अतएव कोई भाई जैन-श्रावक हो, वैष्णव गृहस्थ हो अथवा और कोई हो, सबका कर्त्तव्य है कि अपनी सन्तानो के लिये, सन्तानो की रक्षा करने के लिए, इस घातक प्रथा का त्याग करदें । इसका मूलोच्छेद करके सन्तान का और सन्तान के द्वारा समाज एव राष्ट्र का मगल-साधन करें ।

आप मगल के लिए बाजे बजवाते हैं, मगल के लिये ही सुहागिनें आशीष देती हैं, मगल के लिये ज्योतिर्विद से शुभ मुहूर्त निकलवाते हैं, पर यह स्मरण रखिये कि जब यह सब मगल अमगल के लिए किए जाते हैं, तब ये किसी काम मे नहीं आते । इन सब मंगलो से भी बाल-विवाह से होने वाले अमगल दूर नहीं हो सकते ।

छोटी-कच्ची उम्र मे बालक-बालिका का विवाह करना अमगल है। ऐसा विवाह भविष्य मे हाहाकार मचाने वाला है। ऐसा विवाह त्राहि-त्राहि की आवाज से आकाश का गुञ्जाने वाला है। ऐसा विवाह देश मे दुख का दावानल दहकाने वाला है। इस प्रकार के विवाह से देश की जीवनी-शक्ति का ह्रास हो रहा है। वह शारीरिक शक्ति की न्यूनता उत्पन्न कर रहा है। विविध प्रकार की व्याधियो को जन्म दे रहा है। अतएव अब सावधान हो जाओ। अगर ससार की भलाई करने योग्य उदारता आपके दिल मे नही आई हो तो कम से कम अपनी सतान का तो अनिष्ट मत करो। उसके भविष्य को घोर अन्धकार से आवृत मत करो। जिसे तुमने जीवन दिया है, उसका सर्वनाश मत करो। अपनी सतान की रक्षा करो।

ये बालक दुनिया के रक्षक बनने वाले है। इन पर दाम्पत्य का पहाड मत पटको। बेचारे पिस जाएगे।

बालक निसर्ग का सुन्दरतम उपहार है। इस उपहार को लापरवाही से मत रौंदो।

मित्रो! किसी रथ मे दो छोटे-छोटे बछडो को जोत दिया जाय और उस रथ पर १०-१२ स्थूलकाय आदमी बैठ जाय तो जोतने वाले को आप दयावान् कहेगे या निर्दय?

'निर्दय!'

तब छोटे-छोटे बच्चो को गृहस्थी-रूपी गाडी मे जोतकर उन पर ससार का बोझ लादने वालो को आप निर्दय न कहेगे?

भारतीय शास्त्र छोटी उम्र मे बालको के विवाह करने का निषेध करते हैं। बालक की उम्र २५ वर्ष और बालिका की उम्र

सोलह वर्ष की निर्धारित की गई है। इतने समय तक बालक-बालिका सज्ञा रहती है। अगर आप लोगो को यह बहुत कठिन जान पड़े तो अठारह से पहले बालक और चौदह से पहले बालिका का विवाह कदापि न करें। जिस राज्य में योग्य बालक-बालिका का विवाह होता है, उसी राज्य के राजा और मन्त्री प्रशसा के योग्य हैं। जहाँ प्रजा इसके विपरीत आचरण करती हो, वहा के वीर राजा और प्रजावत्सल मन्त्री को चाहिये कि वे अपने राज्य की जड़ को खोखला बनाने वाले आचरणो पर तीव्र प्रतिबन्ध लगा दें।

बाल-विवाह की भयानक प्रथा का अगर जनता स्वयमेव त्याग नही करती है, तब उसका एक ही उपाय रह जाता है कि वहा का राज्य अपनी सत्ता से कानून का निर्माण करे और दुराग्रहशील व्यक्तियो को दुराग्रह से छुडावे। मनुष्य की आयु का ह्रास करने मे बाल-विवाह भी एक प्रधान कारण है। अमेरिका, जर्मनी और जापान आदि मे १२५ वर्ष की आयु के हट्टे-कट्टे तन्दुरुस्त पुरुष मिल सकते हैं, वहा भारतवर्ष का यह कैसा अभाग्य है ?

१०—बेजोड़—विवाह

बेजोड-विवाह भी पूर्वकाल की विवाह-प्रथा और आज की विवाह-प्रथा की भिन्नता बताता है। यद्यपि विवाह मे वर और कन्या की पूर्व-वर्णित समानता देखना आवश्यक है, लेकिन आज के अधिकाश विवाहो मे इस बात का ध्यान बहुत कम रखा जाता है। आज-के बेजोड-विवाहो को देखकर यदि यह कहा जाये कि वर या कन्या के साथ नही किन्तु धन-वैभव या कुल के साथ विवाह होता है तो अत्युक्ति नही होगी। यद्यपि ससार का प्रत्येक प्राणी अपनी समानता वाले को ही अधिक पसन्द करता है और विवाह के लिए

तो विशेष कर यह बात बहुत ध्यान मे रखने योग्य है लेकिन आज-कल के बहुत से विवाह ऊंट और बैल की जोडी से होते हैं। ऐसे विवाह, विशेषत धन या कुल के कारण ही होते है। अर्थात् या तो धन के लोभ से बेजोड-विवाह किया जाता है या कुल के लोभ से। बेजोड-विवाह में धन का लोभ दो प्रकार का होता। एक तो यह कि लडके या लडकी की ससुराल धनवान होगी, इसलिए बडी अवस्था वाली कन्या के साथ छोटी अवस्था वाले पुरुष का या छोटी अवस्था वाली कन्या के साथ बडी अवस्था वाले पुरुष का विवाह कर दिया जाता है। दूसरे, कन्या या वर के बदले में द्रव्य प्राप्त होगा, इसलिये भी ऐसे विवाह कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार कुल के लिये भी बेजोड-विवाह कर दिये जाते हैं, अर्थात् हमारी लडकी या हमारे लडके की ससुराल इस प्रकार की घरानेदार या कुलवान् होगी, ऐसा सोचकर भी बेजोड-विवाह कर दिये जाते हैं।

कई माता-पिता लोभ के वशीभूत होकर अपनी संतान का हिताहित नहीं देखते और उसका विवाह ऐसे वर या ऐसी कन्या के साथ कर देते हैं जो बे-जोड और एक-दूसरे की अभिरुचि के प्रति-कूल होते हैं। कई माता-पिता, अपनी अबोध कन्या को वृद्ध तक के गले मढ देते हैं।

विशेषत वे धन के लिये ही ऐसा करते हैं यानी कन्या के बदले मे धन लेने के लिये। द्रव्य लालसा के आगे वे इस बात को विचारने की भी आवश्यकता नही समझते कि इन दोनो मे परस्पर मेल रहेगा या नही तथा हमारी कन्या कितने दिन सुहागिन रह सकेगी ? उन्हे तो केवल द्रव्य से काम रहता है, उनकी तरफ से कन्या की चाहे जैसी दुर्दशा क्यो न हो ?

विवाह और पत्नी के इच्छुक वृद्ध भी यह नहीं देखते कि

मैं इस तरुणी के योग्य हू या नही और यह तरुणी मुझे पसन्द करेगी या नही ? विद्वानो का कथन है—

वृद्धस्य तरुणी विषम् ।

वृद्ध के लिए तरुणी विष के समान है। इसी प्रकार तरुणी को वृद्ध. विष के समान बुरा लगता है। जब पति-पत्नी एक दूसरे को विष के समान बुरे लगते हो, तब उनका जीवन सुख-मय कैसे बीत सकता है ? लेकिन इस बात पर न तो धन-लोभी माता-पिता ही विचार करते हैं, न स्त्री-लोभी वृद्ध और न भोजन-लोभी पच ही। केवल धन के बल से एक वृद्ध उस तरुणी पर अधिकार कर लेता है, जिसका अधिकारी एक युवक हो सकता था और इस प्रकार माता-पिता की धनलोलुपता से एक तरुणी को अपना जीवन वृद्ध के हवाले कर देना पडता है, जिस जीवन को वह किसी युवक के साथ बिता देने की अभिलाषा रखती थी। वृद्ध-विवाह के विषय मे गुलिश्ता मे आई हुई एक कहानी इस स्थान पर उपयुक्त होने से दी जाती है।

एक वृद्ध अमीर की स्त्री का देहांत हो गया। अमीर के दोस्तो ने अमीर से दूसरा विवाह करने के लिए कहा। अमीर ने उत्तर दिया कि मैं किसी बुड्ढी के साथ विवाह नहीं कर सकता; मुझे बुड्ढी स्त्री पसन्द नही। दोस्तो ने उत्तर दिया कि आपको बुड्ढी स्त्री के साथ विवाह करने के लिये कौन कहता है ? आप तरुणी के साथ विवाह कीजिये। हम आपके लिये एक तरुणी की तलाश कर देगे। दोस्तो की बात सुनकर अमीर ने कहा-यह आप लोगो की महरबानी है, लेकिन मैं पूछना हू कि जब मुझ बुड्ढे को बुड्ढी स्त्री पसन्द नही है तो क्या वह तरुण स्त्री मुझ बुड्ढे को पसन्द करेगी ? यदि नही, तो फिर जबरदस्ती से क्या लाभ ? अमीर की

तो विशेष कर यह बात बहुत ध्यान मे रखने योग्य है लेकिन आजकल के बहुत से विवाह ऊंट और बैल की जोडी से होते हैं। ऐसे विवाह, विशेषत. धन या कुल के कारण ही होते है। अर्थात् या तो धन के लोभ से वेजोड-विवाह किया जाता है या कुल के लोभ से। वेजोड-विवाह मे धन का लोभ दो प्रकार का होता। एक तो यह कि लडके या लडकी की ससुराल धनवान होगी, इसलिए बडी अवस्था वाली कन्या के साथ छोटी अवस्था वाले पुरुष का या छोटी अवस्था वाली कन्या के साथ बडी अवस्था वाले पुरुष का विवाह कर दिया जाता है। दूसरे, कन्या या वर के बदले मे द्रव्य प्राप्त होगा, इसलिये भी ऐसे विवाह कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार कुल के लिये भी बेजोड़-विवाह कर दिये जाते हैं, अर्थात् हमारी लडकी या हमारे लडके की ससुराल इस प्रकार की घरानेदार या कुलवान् होगी, ऐसा सोचकर भी वेजोड-विवाह कर दिये जाते हैं।

कई माता-पिता लोभ के वशीभूत होकर अपनी संतान का हिताहित नहीं देखते और उसका विवाह ऐसे वर या ऐसी कन्या के साथ कर देते हैं जो वे-जोड और एक-दूसरे की अभिरुचि के प्रतिकूल होते हैं। कई माता-पिता, अपनी अबोध कन्या को वृद्ध तक के गले मढ देते हैं।

विशेषत वे धन के लिये ही ऐसा करते हैं यानी कन्या के बदले मे धन लेने के लिये। द्रव्य लालसा के आगे वे इस बात को विचारने की भी आवश्यकता नही समझते कि इन दोनो मे परस्पर मेल रहेगा या नही तथा हमारी कन्या कितने दिन सुहागिन रह सकेगी ? उन्हे तो केवल द्रव्य से काम रहता है, उनकी तरफ से कन्या की चाहे जैसी दुर्दशा क्यो न हो ?

विवाह और पत्नी के इच्छुक वृद्ध भी यह नहीं देखते कि

मैं इस तरुणी के योग्य हूं या नहीं और यह तरुणी मुझे पसन्द करेगी या नहीं ? विद्वानों का कथन है—

वृद्धस्य तरुणी विषम् ।

वृद्ध के लिए तरुणी विष के समान है। इसी प्रकार तरुणी को वृद्ध विष के समान बुरा लगता है। जब पति-पत्नी एक दूसरे को विष के समान बुरे लगते हों, तब उनका जीवन सुख-मय कैसे बीत सकता है ? लेकिन इस बात पर न तो धन-लोभी माता-पिता ही विचार करते हैं, न स्त्री-लोभी वृद्ध और न भोजन-लोभी पंच ही। केवल धन के बल से एक वृद्ध उस तरुणी पर अधिकार कर लेता है, जिसका अधिकारी एक युवक हो सकता था और इस प्रकार माता-पिता की धनलोलुपता से एक तरुणी को अपना जीवन वृद्ध के हवाले कर देना पडता है, जिस जीवन को वह किसी युवक के साथ बिता देने की अभिलाषा रखती थी। वृद्ध-विवाह के विषय मे गुलिश्तां मे आई हुई एक कहानी इस स्थान पर उपयुक्त होने से दी जाती है।

एक वृद्ध अमीर की स्त्री का देहांत हो गया। अमीर के दोस्तों ने अमीर से दूसरा विवाह करने के लिए कहा। अमीर ने उत्तर दिया कि मैं किसी बुड्ढी के साथ विवाह नहीं कर सकता; मुझे बुड्ढी स्त्री पसन्द नहीं। दोस्तों ने उत्तर दिया कि आपको बुड्ढी स्त्री के साथ विवाह करने के लिये कौन कहता है ? आप तरुणी के साथ विवाह कीजिये। हम आपके लिये एक तरुणी की तलाश कर देंगे। दोस्तों की बात सुनकर अमीर ने कहा—यह आप लोगों की महरबानी है, लेकिन मैं पूछता हूं कि जब मुझ बुड्ढे को बुड्ढी स्त्री पसन्द नहीं है तो क्या वह तरुण स्त्री मुझ बुड्ढे को पसन्द करेगी ? यदि नहीं, तो फिर जबरदस्ती से क्या लाभ ? अमीर की

बात सुनकर दोस्तो को शर्मिन्दा होना पडा और उन्होंने अमीर के विवाह की बात छोड दी।

वृद्ध पुरुष के साथ तरुण स्त्री के विवाह के समान ही, धन या कुल के लोभ से बालक-पुरुष के साथ तरुणी, या तरुण पुरुष के साथ बालिका भी ब्याह दी जाती है। ये समस्त विवाह वेजोड हैं। ऐसे विवाह समाज मे भयकर हानि करने वाले, भावी संतति का जीवन दु खप्रद बनाने वाले और पारलौकिक जीवन को कटकाकीर्ण बनाने वाले हैं।

वेजोड-विवाह से होने वाली समस्त हानियो का वर्णन करना शक्ति से परे की बात है। वेजोड-विवाह से कुल की हानि होती है। विधवाओं की सख्या बढती है, जिससे व्यभिचारवृद्धि के साथ ही आत्महत्या, भ्रूणहत्या आदि होती रहती हैं और अन्त मे अनेक विधवाए वेश्या बनकर अपना जीवन घृणित रीति से बिताने लगती हैं। वेजोड पति-पत्नी से उत्पन्न सन्तान भी अशक्त, अल्पायुषी और दुर्गुणी होती है।

जैन-शास्त्रो मे, ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिलता, जो वे-जोड विवाह का पोषक हो। अन्य ग्रन्थो मे भी वे-जोड विवाह का निषेध किया गया है। जैसे—

कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धनलिप्सया
कुरूपाय कुशीलाय स प्रेतो जायते नरः ॥

—स्कन्द पुराण

'जो पिता अपनी कन्या वृद्ध, नीच, धन के लोभी, कुरूप र कुशील पुरुष को देता है, वह प्रेतयोनि में जन्म लेता है।'

इसी प्रकार कन्याविक्रय के विषय मे कहा है —

अल्पेनापि शुल्केन पिता कन्या ददाति य. ।
रौरवे बहुवर्षाणि पुरीप मूत्रमश्नुते ।।

— आपस्तम्ब स्मृति

'कन्या देकर बदले मे, थोडा भी धन लेने वाला पिता बहुत समय तक रौरव नरक मे निवास करके विष्ठा और मूत्र खाता-पीता रहता है ।'

आधुनिक अनमेल-विवाह प्रथा की और भी बहुत समालोचना की जा सकती है लेकिन विस्तारभय से ऐसा नही किया गया है । यहा तो सक्षेप मे केवल यह बताया गया है कि आजकल की विवाह-प्रथा पहले की विवाह-प्रथा से बिलकुल भिन्न है और इस भिन्नता से अनेक हानिया हैं ।

११-विवाह और अपव्यय

अधिकांश आधुनिक विवाहो मे अपव्यय भी सीमातीत होता है । आतिशबाजी, नाच, मुजरे, बाजे और ज्ञाति-भोजनादि मे इतना अधिक द्रव्य उडाया जाता है कि इतने द्रव्य से सैकडो-हजारों लोग वर्षों तक पल सकते हैं । धनिक लोग अपव्यय द्वारा, गरीबो के जीवन-मार्ग मे काटे बिछा देते हैं । धनिको के आडम्बरपूर्ण विवाह को आदर्श मानकर, अनेक गरीब भी कर्ज लेकर विवाह का आडम्बर करते हैं और धनिको द्वारा स्थापित इस आदर्श की कृपा से अपने जीवन को चिरकाल के लिए दु खी बना लेते हैं । विवाह के अपव्यय में धन की ही हानि नही होती, कि तु कभी-कभी जन की भी हानि हो

जाती है। बहुत से लोग, खाने-पीने की अनियमितता से बीमार होकर मर जाते है। कई युवक विवाह मे आई हुई वेश्याओ के ही शिकार बन जाते हैं। इस प्रकार आजकल की पद्धति द्वारा अपना ही सर्वनाश नही किया जाता किन्तु दूसरो के सर्वनाश का कारण भी उत्पन्न किया जाता है।

आजकल समाज के सम्मुख विधवा-विवाह का जो प्रश्न उपस्थित है, उसके मूल कारण बाल-विवाह, बेजोड-विवाह और विवाह की खर्चीली पद्धति ही है। बाल-विवाह और बेजोड-विवाह के कारण एक ओर तो विधवाओ की सख्या बढ जाती है और दूसरी ओर बहुत से पुरुष अविवाहित रह जाते हैं क्योकि उनके पास वैवाहिक आडम्बर करने को द्रव्य नही होता। यदि बाल-विवाह और बेजोड-विवाह बन्द हो जाएं, विवाहो मे अधिक खर्च न हुआ करे तो विधवाओ और अविवाहित पुरुषो की बढी हुई सख्या न रहने पर सम्भवत विधवा-विवाह का प्रश्न आप ही हल हो जाए। साराश यह है कि पूर्व समय मे, विवाह तब किया जाता था, जब पति-पत्नी, सर्व-विरति-ब्रह्मचर्य पालन मे अपने को असमर्थ मानते थे अर्थात् विवाह कोई आवश्यक कार्य नही माना जाता था। लेकिन आजकल विवाह एक आवश्यक-कार्य माना जाता है। जीवन की सफलता विवाह मे ही समझी जाती है। जब तक लडके-लडकी का विवाह न हो जाए, तब तक वे दुर्भागी समझे जाते हैं। इसी कारण आवश्यकता और अनुभव के बिना ही विवाह कर दिया जाता है और वह भी बेजोड तथा हजारो लाखो रुपये व्यय कर धूमधाम के साथ। पूर्व समय की विवाह-प्रथा समाज मे शाति रखती थी, समाज को दुराचार से बचाती थी और अच्छी सन्तान उत्पन्न करके समाज का हित साधन करती थी। आजकल की विवाह-प्रथा इसके विपरीत कार्य करती है। बाल-विवाह, बेजोड़-विवाह और विवाह की

खर्चीली पद्धति, समाज मे अशांति उत्पन्न करती है, लोगो को दुराचार मे प्रवृत्त करती है और रुग्ण एवं अल्पायुषी सन्तान द्वारा समाज का अहित करती है ।

वैवाहिक विषय के वर्णन पर से कोई यह कह सकता है कि साधुओ को इन सासारिक वातो से क्या ? और वे ऐसी वातो के विषय मे उपदेश क्यो दें ? इसका उत्तर यही है कि यद्यपि इन सासारिक वातो से साधु लोग परे हैं लेकिन साधुओं का धार्मिक जीवन नीति-पूर्ण ससार पर ही अवलम्बित है । यदि ससार मे सर्वत्र अनीति छा जाए तो धार्मिक जीवन के लिए स्थान भी नही रह जाता है । इसी दृष्टिकोण से विवाह की विधि वताने के लिए ही शास्त्रो की कथाओ मे विवाह-बन्धन मे जुडने वाले स्त्री-पुरुष की समानता आदि का वर्णन किया है । यह वात दूसरी है कि उनमे वाल-विवाह, असमय के सहवास आदि का निषेध नहीं है । लेकिन उस समय ये कुप्रथाए थी ही नही, इसलिए इस प्रकार के उपदेश की आवश्यकता न थी अन्यथा पूर्ण ब्रह्मचर्य का ही विधान करने वाले होने पर भी, जैन-शास्त्र ऐसे अपूर्ण नही हैं कि उनमे सासारिक-जीवन की विधि पर कथाओं द्वारा प्रकाश न डाला गया हो । 'सरिसवया' 'सरिस-तया' आदि पाठ इसी बात के द्योतक हैं कि विवाह समान युवावस्था में होता था ।

विवाह मे जहां धन की प्रधानता होगी, वहां अनमेल-विवाह हो, यह स्वाभाविक है । अनमेल-विवाह करके दाम्पत्य जीवन मे सुख-शांति की आशा करना ऐसा ही है जैसे नीम वोकर आम के फल की आशा करना ।

आजकल की इस देश की दुर्दशा मे भी भारत के साठ-साठ

वर्ष के बूढे विवाह करने के लिए तैयार हो जाते हैं। बूढो की इस वासना ने देश को उजाड डाला है। आज विधवाओं की सख्या बढ गई है और कितनी बढती जाती है, यह किसे नही मालूम ? आप थोकडो पर थोकडे गिन लेते हो पर कभी इन विधवाओ की भी गिनती आपने की है ? कभी आपने यह चिन्ता भी की है कि इन विधवा बहिनो का निर्वाह किस प्रकार होता है ?

ऐ भीष्म की सतानो ! भीष्म ने तो आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करके दुनिया के कानो मे ब्रह्मचर्य का पावन मन्त्र फूका था। आज उन्हीं की सन्तान कहलाते हुए उन्ही के मन्त्र को क्यो भूल रहे हो ?

❀ ❀ ❀

लग्न के समय वर-वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। पति के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् सच्ची आर्य महिला अपने प्राणो का उत्सर्ग कर देती है, पर की हुई प्रतिज्ञा से विमुख नही होती।

पुरुष भी पत्नी के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं परन्तु जो कर्त्तव्य स्त्री का माना जाता है, वही क्या पुरुष का भी समझा जाता है ?

जैसे सदाचारिणी स्त्री पर-पुरुष को पिता एव भाई समझती है, उसी प्रकार सदाचारी पुरुष भी वही है, जो पर-स्त्री को माता-बहिन की दृष्टि से देखे। 'पर ती लखि जे धरती निरखें, धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर ते।'

पुरुष का पाणिग्रहण धर्मपालन के लिये किया जाता है उसी प्रकार स्त्री का भी। जो नर या नारी इस उद्देश्य को भूलकर

खान-पान और भोग-विलास मे ही अपने जीवन की इतिश्री समझते हैं, वे धर्म के पति-पत्नी नही, वरन् पाप के पति-पत्नी हैं ।

विवाह होने पर पति-पत्नी प्रेम-बन्धन में जुड़ जाते हैं। मगर उनके प्रेम मे भी भिन्नता देखी जाती है । किसी-किसी मे विवाह करने पर भी स्वार्थपूर्ण प्रेम होता है और किसी-किसी मे निःस्वार्थ प्रेम भी रहता है । जिस दम्पती मे स्वार्थपूर्ण प्रेम होगा उसकी दृष्टि एक-दूसरे की सुन्दरता पर रहेगी और किसी कारण सुन्दरता मे कमी होने पर वह प्रेम दूर हो जायगा । परन्तु जिनमे निःस्वार्थ प्रेम है, उनमे अगर पति रोगी या कुरूप अथवा कोढी होगा तो भी पत्नी का प्रेम कम नही होगा । श्रीपाल को कोढ हो गया था। फिर भी उसकी पत्नी ने पति-प्रेम मे किसी प्रकार की कमी नहीं की। तात्पर्य यह है कि जिस प्रेम मे किसी भी कारण से न्यूनता आ जाय, वह निःस्वार्थ प्रेम नही है, वह स्वार्थपूर्ण और दिखावटी प्रेम है।

卐

दाम्पत्य

जो समाज का उचित निर्माण और उत्थान करने का इच्छुक है, उसे स्त्री-स्वातन्त्र्य, प्रेममय जीवन और मातृत्व का गौरव महिलाओ को प्रदान करने की अत्यन्त आवश्यकता है। समाज अपने इस अभिन्न अ ग की उपेक्षा कर अधिक समय तक उचित रीति से अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता है। स्वय पुरुष एक प्रेममयी नारी के अभाव मे अपूर्ण है। वह अपने व्यक्तित्व का निर्माण भी पूर्ण रूप से नही कर सकता। समस्त जीवन मे उसे एक ऐसा अभाव खटकता-सा रहेगा, जिसकी पूर्ति अन्य किसी वस्तु के द्वारा नहीं की जा सकती। समाज की जागृति के प्रत्येक कदम मे सफलता प्राप्त करने के लिए स्त्रियो को अधिक से अधिक सुविधाए दी जानी चाहिए, जिससे वे एक स्वतन्त्र और सच्चे नारी-जीवन का निर्माण कर सकें।

आज नारी पुरुषो की समता के लिए, अपने अधिकारो को प्राप्त करने के लिए लड रही है। उनकी अज्ञानता ने पुरुषो मे यह भावना उत्पन्न कर दी है कि वे महिलाओं से श्रेष्ठ हैं और उनके

उस प्राचीन गौरव को आख उठाकर देखना भी पसन्द नहीं
।

आज उनकी आखें पूर्ण रूप से पुरुष जाति की ओर लगी
कि वह कौनसा काम कब कर रही है कि हम भी वही करने
ायें ! पुरुष की पूरी नकल करने मे ही वे अपने जीवन की
ता समझने लगी हैं ।

उन्हें ऐसा विश्वास हो गया है कि उन्हे पति के प्रति प्रेम
और इसलिये उनका मन असन्तुष्ट व अतृप्त है। फलस्वरूप
विश वह पति की प्रत्येक गतिविधि पर दृष्टि रखने मे ही सारा
ा बर्बाद करने लगी हैं। पुरुष ने उसका ध्यान पूरी तरह से
ी ओर खीच लिया है। अत वह अपने व्यक्तित्व की ओर लक्ष्य
रखती। निरन्तर पुरुष की प्रत्येक हलचल से उपेक्षा टपकती
-सी समझकर कुढती रहती है। सोचती रहती है कि वे तो
ाम से निर्द्वन्द्व होकर भ्रमण करते रहते हैं, फिर भी मैं दासी
। कब तक उनकी गुलामी किया करू ?

इसके विपरीत जो उच्च विचारो की स्त्रिया हैं, वे पति की
र्मण्यता और पति के पतन से मार्गच्युत न होकर अपने कर्त्तव्य
ध्यान रखती हैं। वे अपने मन मे यह भावना बनाए रखने का
त्न करती हैं कि हमारा धर्म तो सिर्फ अपनी पवित्रता को कायम
ने मे है और हमारा कार्य पति के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन
रना है। इससे नारी की आत्मा का विकास होता है और वह
पने जीवन को सुखी करने की चेष्टा मे सफल होती है। और वे
त्याग, सेवा और कर्तव्य-पालन के द्वारा पतन की ओर अग्रसर
ते हुए पति को भी कभी पश्चात्ताप करने को बाध्य कर देती हैं।

साथ ही संसार के सुखो के साधनो को जुटाना है, एकत्र रहकर ही सृष्टि करनी है, विकास करना है। दोनो के हृदयो मे अधिकार की हाय-हाय की अपेक्षा एक-दूसरे के प्रति आत्मसमर्पण की भावना हो। परस्पर प्रेम, सहानुभूति और कर्त्तव्य का भाव प्रधान हो। विश्व मे मानव की सृष्टि ही तो इसी आधार पर हुई है। इसमे वाधाए उपस्थित करने से हरेक घर मे अशाति पैदा हो जाती है। इसी प्रकार स्त्री का जीवन तभी सुखी और सन्तोषमय रह सकता है, जब कि वह आत्मसमर्पण में ही जीवन के सुख को खोजे, उसी से पूर्ण आनन्द का अनुभव करे। पुरुष के लिए भी यही बात है। नारी का तो सारा जीवन ही त्यागमय है। समर्पण करने में ही उसे सुख है। इसी मे तो उसके मातृत्व का, पुरुष की जननी होने का अधिकार, गौरव है। यहीं तो उसकी उन्नति की परम सीमा है। इसी जगह तो नारी वह है कि जिसकी बराबरी पुरुष भी नही कर सका और न कर सकेगा।

इसीलिये आजकल जो प्रतिद्वन्द्विता एवं मुकाबिले का भाव समाज मे स्त्री-पुरुषो के बीच चल रहा है, वह समाज को भारी हानि पहुचा रहा है और वह भी विशेषकर स्त्रियों को। वह यह कि कोई भी काम, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, परन्तु पुरुष करता है तो स्त्रिया भी क्यो न करें? नारियो के मन मे आजकल कुछ ऐसी भावना घर कर गई है कि पुरुष जाति स्वार्थमय हो गई है, हमारे साथ वेवफाई कर रही है। और हमने तो सदा त्याग किया है, ममतावश होकर सदा पुरुष की हम गुलामी करती रही हैं पर उसका पुरस्कार आज यह है कि हम दुतकारी जा रही हैं। अतः अब क्यो इनकी परवाह करें? कब तक सेवा करती रहें? और फिर किस लिए? इस त्याग को छोडकर क्यो न उनकी ही कोटि मे आ जायें? इसी भावना का फल है कि आजकल की अधिकारप्रिय-स्त्रियां

अपने उस प्राचीन गौरव को आख उठाकर देखना भी पसन्द नहीं करती ।

आज उनकी आखें पूर्ण रूप से पुरुष जाति की ओर लगी हुई हैं कि वह कौनसा काम कब कर रही है कि हम भी वही करने लग जायें ! पुरुष की पूरी नकल करने मे ही वे अपने जीवन की सार्थकता समझने लगी है ।

उन्हे ऐसा विश्वास हो गया है कि उन्हे पति के प्रति प्रेम नही और इसलिये उनका मन असन्तुष्ट व अतृप्त है। फलस्वरूप ईर्ष्यावश वह पति की प्रत्येक गतिविधि पर दृष्टि रखने मे ही सारा समय बर्बाद करने लगी हैं। पुरुष ने उसका ध्यान पूरी तरह से अपनी ओर खीच लिया है। अत वह अपने व्यक्तित्व की ओर लक्ष्य नही रखती। निरन्तर पुरुष की प्रत्येक हलचल से उपेक्षा टपकती हुई-सी समझकर कुढती रहती है । सोचती रहती है कि वे तो आराम से निर्द्वन्द्व होकर भ्रमण करते रहते हैं, फिर भी मैं दासी बनी कब तक उनकी गुलामी किया करू ?

इसके विपरीत जो उच्च विचारो की स्त्रिया हैं, वे पति की अकर्मण्यता और पति के पतन से मार्गच्युत न होकर अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखती हैं । वे अपने मन में यह भावना बनाए रखने का प्रयत्न करती हैं कि हमारा धर्म तो सिर्फ अपनी पवित्रता को कायम रखने मे है और हमारा कार्य पति के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना है । इससे नारी की आत्मा का विकास होता है और वह अपने जीवन को सुखी करने की चेष्टा मे सफल होती है। और वे इस त्याग, सेवा और कर्तव्य-पालन के द्वारा पतन की ओर अग्रसर होते हुए पति को भी कभी पश्चात्ताप करने को बाध्य कर देती हैं।

इस प्रकार अपनी वफादारी और कर्त्तव्यशीलता के द्वारा आनन्द-रहित गृह को भी आनन्द और उल्लास की तरगो में प्रवाहित कर देती हैं। वे पति को और उसके साथ-साथ अपने को भी ऊंचा उठाती हैं। वे गृह-जीवन मे सुख व शाति बढ़ाती हुई पति-पत्नी के टूटते हुए सम्बन्ध को जोड लेती हैं।

दूसरी ओर समाज मे बढती हुई खीचातानी का शिकार होकर स्त्रिया अत्यन्त दुखी और अतृप्त रहती है। उनका हृदय दुःख से भरा रहता है और आत्मा तडपती रहती है, क्योंकि आजकल स्त्रियो की माग एव उनके अधिकारो के नाम पर समाज मे जो जहर फैलाया जा रहा है, उसने पुरुष एव स्त्री के सम्बन्ध को मधुर एव दृढ बनाने की अपेक्षा और भी स्नेह-हीन, नीरस, और निकम्मा बना दिया है। एक-दूसरे के मतभेद को मिटाने की जगह आपस के मनोमालिन्य की खाई को और भी गहरा कर दिया है। नारियो की उठती हुई आत्मा को गिरा दिया है। उनका विकास रोक दिया है।

आजकल की सभ्यता हमे अधिकार प्राप्त करने का पाठ तो पढ़ाती रहती हैं पर उस अधिकार के साथ जो महान् जिम्मे-दारियो का बोझा बन्धा हुआ है, उसे सहन करने का सबक नही सिखाती। और जिस प्रकार आग और पानी का मेल नही हो सकता, उसी तरह स्त्रियो के अधिकार और शक्ति चाहने पर यह नहीं हो सकता कि उसके लिये होने वाली कठिनाइया न सहे और त्याग करने को तैयार न रहे। प्राचीन भारतीय नारियो को गृह मे जो अखण्ड अधिकार मिला था, वह कष्टसहन एव कठिनाइयो और बाधाओ के बीच मे भी सुख और शाति का अनुभव करते हुए पूर्ण सन्तुष्ट रहने पर ही मिला था।

१–नारी का कार्य क्षेत्र

नारी का कार्यक्षेत्र गृह मे ही है। उनके गृह–जीवन मे ही ससार के महापुरुषो का जीवन छिपा हुआ है। गृहो मे प्राप्त होने वाली शिक्षा एव सस्कार ही महान् पुरुषो का जीवन निर्माण करते हैं, पर आज की इस घरेलू चख–चख ने गृह-जीवन की नीव को ही कमजोर बना दिया है। अतएव उसमे से जीवन प्राप्त करने वाला नवयुवक कमजोर, रूखे स्वभाववाला और कठिनाइयो मे शीघ्र ही निराश हो जाने वाला हो गया है। वह बातें अधिक करता है पर कार्य कम करता है। हर एक से लेने की इच्छा अधिक करता है पर देना किसी को भी नही चाहता। पर यह उसका दोष नहीं है। उसका दुर्भाग्य है कि जिस माता–पिता का दूध पीकर वह शक्ति प्राप्त करता था, जिस माता–पिता के आदर्श चरित्र का अव-लोकन कर वह एक महापुरुष बनता था, आज उस माता का उस पर से हाथ हटता जा रहा है। वह उसी मां का ओज था। बल्कि आज भी भारतीय गृहो मे जो थोडा बहुत सौन्दर्य या सुघडता है वह उन बहनो–बेटियो व माताओ का प्रताप है कि जिनका चरित्र, जिनका सेवाभाव, सभाओ–सोसाइटियो मे नही जाहिर होता बल्कि सतति का जीवन बनकर सामने आता है।

नारियो का सच्चा स्थान गृह ही है। उन्हीं के प्रयत्न से टूटते हुए गृह व दाम्पत्य–जीवन का उद्धार सम्भव है। समाज के निर्माण मे उत्तम गृहो का होना मुख्य है।

२–आदर्श–दम्पती

उच्च दाम्पत्य जीवन का बहुत श्रेष्ठ आदर्श प्राचीनकाल मे

राम और सीता ने उपस्थित किया था जो हिन्दू समाज के लिये सदैव अनुकरणीय रहा और है ।

सच्चा पति वही है, जो पत्नी को पवित्र बनाता है और सच्ची पत्नी वही है, जो पति को पवित्र बनाती है । सक्षेप मे जो अपने दाम्पत्य जीवन को पवित्र बनाते हैं, वही सच्चे पति-पत्नी हैं ।

जो पुरुष पर-धन और पर-स्त्री से सदैव बचता रहता है उसका कोई कुछ नही बिगाड सकता । स्त्रियो के लिये पतिव्रत धर्म है तो पुरुषो के लिये पत्नीव्रत धर्म है ।

जो पुरुष पत्नी को गुलाम बनाता है वह स्वय गुलाम बन जाता है और जो पुरुष पत्नी को देवी बनाता है, वह स्वय देव बन जाता है ।

पुरुप चाहते हैं कि स्त्रिया पतिव्रत धर्म का पालन करें परन्तु उन्हे क्या पत्नीव्रत धर्म का पालन नही करना चाहिए ? पतिव्रत पत्नी के लिये और पत्नीव्रत पति के लिये कल्याणकारी है । पतिव्रत का माहात्म्य कितना और कैसा है, यह बतलाने के लिये अनेक उदाहरण मौजूद हैं । पतिव्रत के प्रभाव से सीता के लिये अग्नि भी ठण्डी हो गई थी । सीता ने पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिये कितने अधिक कष्ट सहन किये थे ? वह चाहती तो राम और कौशल्या का आग्रह मानकर घर मे आराम से बैठी रह सकती थी और कष्टो से बच सकती थी मगर पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिये उसने कष्ट सहना ही स्वीकार किया ।

सीता के चरित्र को किस प्रकार देखना चाहिए, यह बात ने बतलाई है । वह कहता है—'पति ही व्रत-नियम है' ऐसा

व्रत वही स्त्री लेती है, जिसके अन्तःकरण मे पति के प्रति पूर्ण प्रेम होता है । कोई भी काम तभी होता है जब उसके प्रति प्रेम हो। धर्म का आचरण भी प्रेम से किया जाता है । आपका प्रेम कच्चा है या सच्चा, यह परीक्षा करनी हो तो पतिव्रता के प्रेम के साथ अपने प्रेम की तुलना करके देखो। भक्ति के विषय मे पतिव्रता का उदाहरण भी दिया जाता है । पतिव्रताओ मे भी सीता सरीखी पतिव्रता दूसरी शायद ही हुई हो। सीता ने उच्च आचरण करके सतीशिरोमणि की पदवी पाई है । सीता सरीखी दो चार सतिया अगर ससार में हो तो ससार का उद्धार हो जाय । कहावत है— 'एक सती और नगर सारा'। सुभद्रा अकेली थी पर उसने क्या कर दिखाया था ? उसने सारे नगर का दुःख दूर कर दिया था।

सब स्त्रियां सीता नहीं बन सकतीं । इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि जब सीता सरीखी बनना कठिन है तो फिर उस ओर प्रयत्न ही क्यो किया जाय ? जहा पहुच ही नहीं सकते, वहां पहुचने का प्रयत्न क्यो किया जाय ? जहा पहुच ही नही सकते वहा पहुचने के लिए दो-चार कदम बढाने की भी क्या आवश्यकता है ? ऐसा विचार करने से लाभ के बदले हानि ही होगी । आप खाते हैं, पीते हैं, पहनते हैं, ओढते हैं । मगर आप से अच्छा खाने-पीने पहनने-ओढने वाले भी हैं या नही ? फिर आप क्या यह सब करना छोड देते हैं ? अक्षर मोती जैसे लिखने चाहिए, मगर वैसा न लिख सकने वाला क्या अक्षर लिखना छोड देता है ? इसी तरह सीता-सी सती बनना अगर कठिन है तो क्या सतीत्व ही छोड देना उचित है ? सीता की समता न करने पर भी सती बनने का उद्योग छोडना नहीं चाहिये । निरन्तर अभ्यास करने व सीता का आदर्श सामने रखने से कभी सीता के समान हो जाना सम्भव है।

सती, तो स्त्रियों मे ऊची होती ही है, लेकिन नीच स्त्री कैसी

होती है, यह भी कवि ने बताया है। कवि कहता है— खाने-पीने और पहनने-ओढने के समय 'प्राणनाथ' 'प्राणनाथ' करने वाली और समय पड़ने पर विपरीत आचरण करने वाली स्त्री नीच कहलाती है। ऊपर से पतिव्रता का दिखावा करना और भीतर कुछ और रखना नीचता है। इस प्रकार की नीचता का कभी न कभी भण्डाफोड हो ही जाता है। कदाचित् न भी हो तो उसे उसके कर्म अपना फल देने से कभी नही चूकते। नीच स्त्रियां भीतर-बाहर कितनी भिन्नता रखती हैं, यह बात एक कहानी द्वारा समझाई जाती है:—

३—मायाविनी पत्नी

एक ठाकुर था। वह अपनी स्त्री की अपने मित्रों के सामने बहुत प्रशंसा किया करता था। वह कहा करता था—संसार मे सती स्त्रिया तो और भी मिल सकती हैं पर मेरी स्त्री जैसी सती स्त्री दूसरी नही है? कभी-कभी वह सीता, अंजना आदि से अपनी स्त्री की तुलना किया करता और उसे उनसे भी श्रेष्ठ बतलाता। उसके मित्रो मे कोई सच्चे समालोचक भी थे।

एक वार एक समालोचक ने कहा—ठाकुर साहब! आप भोले हैं और स्त्री के चरित्र को जानते नही हैं। इसी से ऐसा कहते हैं। त्रिया-चरित्र को समझ लेना साधारण बात नही है।

ठाकुर ने अपना भोलापन नहीं समझा। वह अपनी पत्नी का बखान करता ही रहा। तब उस समालोचक ने कहा—कभी आपने परीक्षा की है या नही?

ठाकुर—परीक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं है। मेरी स्त्री

मुझसे इतना प्रेम करती है, जितना मछली पानी से प्रेम करती है। जैसे मछली पानी के बिना जीवित नहीं रह सकती, उसी प्रकार मेरी स्त्री मेरे बिना जीवित नही रह सकती।

समालोचक—आपकी बातो से जाहिर होता है कि आप बहुत भोले हैं। आप जब परीक्षा करके देखेंगे, तब सच्चाई मालूम होगी।

ठाकुर—अच्छी बात है, कहो किस तरह परीक्षा की जाय ?

समालोचक – आप अपनी स्त्री से कहिये कि मुझे पाच-सात दिन के लिये राजकीय काम से बाहर जाना है। यह कह कर आप बाहर चले जाना और फिर छिप कर घर मे बैठे रहना। उस समय मालूम होगा कि आपकी स्त्री का आप पर कैसा प्रेम है ? आप अपने पीछे ही अपनी स्त्री की परीक्षा कर सकते हैं, मौजूदगी मे नही।

ठाकुर ने अपने मित्र की बात मान ली। वह अपनी स्त्री के पास गया। स्त्री से उसने कहा—तुम्हें छोडने को जी नहीं चाहता मगर लाचारी है। कुछ दिनो के लिए तुम्हे छोडकर बाहर जाना पडेगा। राजा का हुक्म माने बिना छुटकारा नही।

ठकुरानी ने बहुत चिन्ता और आश्चर्यपूर्वक कहा—क्या हुक्म हुआ है ? कौनसा हुक्म मानना पडेगा ?

ठाकुर—मुझे ५-७ दिनो के लिए बाहर जाना पडेगा ?

ठकुरानी – पांच-सात दिन, बाप रे ! इतने दिन तुम्हारे बिना कैसे निकलेंगे। मुझे तो भोजन भी नही रुचेगा।

ठकुर—कुछ भी हो, जाना तो पड़ेगा ही ।

ठकुरानी—इतने दिनो मे तो मैं छटपटा कर मर ही जाऊंगी। आप राजा से कहकर किसी दूसरे को अपने बदले नहीं भेज सकते?

ठाकुर—लेकिन ऐसा करना ठीक नही होगा । लोग कहेंगे, स्त्री के कहने मे लगा है । मैं यह कहूंगा कि मुझसे स्त्री का प्रेम नहीं छूटता ? ऐसा कहना तो बहुत बुरा होगा ।

ठकुरानी—हां, ऐसा कहना तो ठीक नहीं होगा । खैर, जो कुछ होगा देखा जायगा ।

इतना कहकर ठकुरानी आसू बहाने लगी । उसने अपनी दासी से कहा—दासी जा । कुछ खाने-पीने को बनादे, जो साथ मे ले जाया जा सके ।

ठकुरानी की मोह पैदा करने वाली बातें सुनकर ठाकुर सोचने लगा—मेरे ऊपर इसका कितना प्रेम है।

ठाकुर घोडी पर सवार होकर कोस दो कोस गया। घोडी ठिकाने बाधकर वह लौट आया और छिपकर घर मे बैठ गया।

दिन व्यतीत हो गया । रात हो गई । ठकुरानी ने दासी से कहा—ठाकुर तो गांव चला गया, अब मेरे को धान नही भाता है। अत तू जा पास के अपने खेत से दस-पाच साठे ले आ, जिससे रात व्यतीत हो । दासी ने सोचा ठीक है, मुझे भी हिस्सा मिलेगा। वह गई और गन्ने तोड लाई । ठकुरानी गन्ने चूसने लगी ।

ठाकुर छिपा-छिपा देख रहा था । उसने सोचा—मेरे वियोग

के कारण इसे अन्न नहीं भाता ! मुझ पर इसका कितना गाढा प्रेम है !

ठकुरानी पहर रात तक गन्ना चूसती रही। गन्ना समाप्त हो जाने पर वह दासी से बोली—अभी रात बहुत है। गन्ना चूसने से भूख लग आई है। थोड़े नरम-नरम बाफले तो बना डाल, देख जरा घी अच्छा लगाना हो।

दासी ने सोचा—चलो ठीक है, मुझे भी मिलेंगे। दासी ने बाफले बनाए और खूब घी मिलाया।

ठकुरानी ने खूब मजे से बाफले खाए। खाने के थोड़ी देर बाद वह कहने लगी—दासी, तूने बाफले बनाए तो ठीक, पर मुझे कुछ अच्छे नही लगे। यह खाना कुछ भारी भी है। थोडी नरम-नरम खिचडी बना डाल।

दासी ने वही किया। खिचडी खाकर ठकुरानी बोली—तीन पहर रात तो बीत गई, अब एक पहर बाकी है। थोडी लाई (धानी) सेक ला। उसे चबाते-चबाते रात बिताए। दासी लाई भी सेक लाई। ठकुरानी खाने लगी।

ठाकुर बैठा-बैठा सब देख सुन रहा था। वह सोचने लगा-पहली रात मे यह हाल है तो आगे क्या-क्या नही होगा। अब इससे आगे परीक्षा न करना ही अच्छा है। यह सोचकर वह घोडे के पास लौट आया। घोडे पर सवार होकर वह घर जा पहुंचा।

दासी ने ठकुरानी को समाचार दिया—ठाकुर साहब आ गए हैं। ठकुरानी ने कहा—ठाकुर आ गए, अच्छा हुआ।

वह ठाकुर से बोली—अच्छा हुआ, आप पधार गए। मेरी तकदीर अच्छी है। आखिर सच्चा प्रेम अपना प्रभाव दिखलाता ही है।

ठाकुर—तुम्हारी तकदीर अच्छी थी, इसी से मैं आज बच गया। बडे सकट में पड गया था।

ठकुरानी—ऐ, क्या सकट आ पडा था ?

ठाकुर—घोडे के सामने एक भयङ्कर साप आ गया था। मैं आगे वढता तो साप मुझे काट खाता। मैं पीछे की ओर भाग गया। इसी से बच गया।

ठकुरानी—आह ! साप कितना बडा था ?

ठाकुर—अपने पास के खेत के गन्ने जितना बडा था और भयानक था।

ठकुरानी—वह फन तो नही फैलाता था ?

ठाकुर—फन का क्या पूछना है ! उसका फन तो वाफले जितना बडा था।

ठकुरानी—वह दौडता भी था ?

ठाकुर—हा, वह दौडता क्यों नही था, वह तो ऐसा दौडता था, जैसे खिचडी मे घी।

ठकुरानी—वह फुकार भी मारता होगा ?

ठाकुर—हां, ऐसे जोर से फुकार मारता था, जैसे कडेले मे पडी हुई धानी सेकने के समय फूटती है।

ठाकुर की बातें सुनकर ठकुरानी सोचने लगी–ये तो सारी बातें मुझ पर ही घटित होती हैं। फिर भी उसने कहा–चलो, मेरे भाग्य अच्छे थे, जो आप उस नाग से बचकर आगए।

ठाकुर—ठकुरानी! समझो। मैं उस नाग से बच निकला पर तुम सरीखो नागिन से बच निकलना बहुत कठिन है।

ठकुरानी—क्या मैं नागिन हू? अरे बाप रे! मैं नागिन हो गई? भगवान् जानता है। सब देव जानते हैं। मैंने क्या किया जो मुझे नागिन बनाते हैं।

ठाकुर—मैं नही बनाता, तुम स्वय बन रही हो! मैं अपने मित्रो के सामने तुम्हारी तारीफ बघारता था, लेकिन सब व्यर्थ हुआ।

ठकुरानी—तो बताते क्यो नही, मैंने ऐसा क्या किया है? मैं आपके बिना जी नही सकती और आप मुझे लाछन लगा रहे हैं।

ठाकुर—बस रहने दो। मैं अब वह नही, जो तुम्हारी मीठी-मीठी बातो मे आ जाऊ। तुम मुझ मे कहा करती थी–तुम्हारे वियोग मे मुझे खाना नही भाता और रात भर खाने का कचूमर निकाल दिया!

ठकुरानी की पोल खुल गई। साराश यह कि ससार मे इस ठकुरानी के समान पति से कपट करने वाली स्त्रिया भी हैं और पतिव्रताए भी हैं। पति के प्रति निष्कपट भाव से अनन्य प्रेम रखने वाली स्त्रियां भी मिल सकती हैं और मायाविनी भी मिल सकती हैं। ससार मे अच्छाई भी है और बुराई भी है। प्रश्न यह है कि स्त्री को क्या ग्रहण करना चाहिये? किसको अपनाने से नारी-जीवन उन्नत और पवित्र बन सकता है?

आज अगर कोई स्त्री सीता नही वन सकती तो भी लक्ष्य तो वही रखना चाहिये। अगर कोई अच्छे अक्षर नही लिख सकता तो साधारण ही लिखे मगर लिखना छोडने से तो काम नही चल सकता। यही बात पुरुषो के लिये भी है। पुरुषो के सामने महान्-आत्मा राम का आदर्श है। उन्हे राम के समान उदार, गम्भीर, मातृ-पितृ सेवक, बन्धु-प्रेमी और धार्मिक बनना चाहिये।

सीता मे कैसा पति-प्रेम था. वह बात इसी से प्रकट हो जाती है कि क्या जैन और क्या अजैन, सभी ने अपनी शक्ति भर सीता की गुण-गाथा गाई है। मेहदी का रंग चमडी पर चढ जाता है और कुछ दिनो तक चमडी पर से उतारे नही उतरता। मगर सीता का पति-प्रेम इससे भी गहरा था। सीता का प्रेम इतना अन्तरग था कि वह चमडी उतारने पर भी नही उतर सकता था। वह आजीवन के लिये था, थोडे दिनो के लिये नही।

कवियो ने कहा है कि सीता, राम के रग मे रग गई थी। पर राम मे वन जाते समय कौनसा नवीन रंग आया था कि जिसमें सीता रंगी ?

जिस समय सीता के स्वयवर-मडप मे सब राजाओ का पराक्रम हार गया था, सब राजा निस्तेज हो गए थे और जब राम ने सब राजाओ के सामने अपना पराक्रम दिखाया था, उस समय राम के रस मे सीता का रचना ठीक था। पर उस समय के रग में स्वार्थ था। इसलिये उस समय के लिये कवि ने यह नही कहा कि सीता राम के रग मे रग गई। मगर जब कि राम ने सब वस्त्र उतार दिये हैं, वल्कल वस्त्र धारण किये हैं, फिर सीता राम के रग मे क्यो रगी ? अपने पति के असाधारण त्याग को देख

कर और संसार के कल्याण के लिये उन्हें वनवास करने को उद्यत देखकर सीता के प्रेम में वृद्धि ही हुई। वह राम के लोकोत्तर गुणों पर मुग्ध हो गई। इसी से कवि ने कहा है कि सीता राम के रग मे रग गई।

उस समय सीता की एकमात्र चिन्ता यही थी कि जैसे प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है, वैसे मुझे मिल सकेगी या नहीं ?

वास्तव मे वही स्त्री पति-प्रेम मे अनुरक्त कहलाती है, जो पति के धर्म-कार्य आदि सभी मे सहायक होती है। गहने-कपडे पाने के लिये तो सभी स्त्रिया प्रीति प्रदर्शित करती हैं, मगर सकट के समय, पति के कन्धे से कन्धा भिडा कर चलने वाली स्त्रिया सरा-हनीय हैं। गिरते हुए पति को उठाने वाली और उठें हुए पति को आगे बढाने वाली स्त्री ही पतिपरायण कहलाती है।

रामचन्द्र जी माता कौशल्या से वन जाने के लिये अनुमति मागने गए तो कौशल्या अधीर हो उठी। उन्होंने पहले वन के भयानक स्वरूप का स्मरण किया। फिर राम की सुकुमारता का विचार किया। राम की उम्र उस समय सत्ताईस वर्ष की थी। कौशल्या ने सोचा—क्या यह उम्र वन जाने योग्य है ? राजमहल मे सुमन-सेज पर सोने वाला सुकुमार राम वन की ककरीली, पथ-रीली और कटकमयी भूमि पर कैसे सोएगा ? कहां यहा के षट्रस भोजन और कहा वन के फूल ! वन मे इसका निर्वाह कैसे होगा ? किस प्रकार सर्दी, गर्मी, और वर्षा का कष्ट सहा जायगा ?

राम ने बडी सरलता और मिठास से माता को समझाया-

माता ! जो पुत्र माता—पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता, वह पुत्र नहीं है। और फिर मैं कैकेयी माता को एक बार महाराज के युद्ध मे प्राण बचाने के महान् कार्य का पुरस्कार देने जा रहा हू। अतएव आप अपनी आखो के आसू पोछ डालो और मुझे विदा दो। हर्ष के समय विषाद मत करो। ससार का ऐसा ही स्वरूप है। सयोग वियोग के अवसर आते ही रहते हैं। इन प्रसगो के आने पर हर्ष–विषाद न करने मे ही भलाई है।

राम के ये वचन कौशल्या के मोह को बाण की तरह लगे। उन्होने सोचा—राम ठीक तो कहता है। जब पुत्र पिता की आज्ञा और धर्म का पालन करने के लिए उद्यत हो रहा हो, तब माता के शोक का क्या कारण है ? ऐसा करना माता के लिए दूषण है। स्त्री-धर्म के अनुसार पति ने जो वचन दिया है, वह पत्नी ने भी दिया है। फिर मुझे शोक क्यो करना चाहिए ?

इस प्रकार विचार कर कौशल्या ने कहा—वत्स ! मैं तुम्हारा कहना समझ गई। मैं आज्ञा देती हू। वन तुम्हारे लिए मंगल-मय हो। तुम्हारा मनोरथ पूरा हो।

पुत्र ! अभी तू नाम से राम है। अब सच्चा राम बन। अब तेरा नाम सार्थक होगा। तू जगत् के कल्याण मे अपना कल्याण और जगत् की उन्नति मे अपनी उन्नति मानना। तेरा पक्ष सिद्ध हो। तू विघ्न आने पर भी धैर्य से विचलित न होना। प्रसन्न होकर तू वन जा। मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है। इस विशाल विश्व का प्रत्येक प्राणी तेरा हो, तू सबको अपना आत्मीय समझे, तभी तू मेरा होगा। लेकिन आजकल क्या होता है,—

मात कहे मेरा पूत सपूता, बहिन कहे मेरा भैया ।
घर की पत्नी यों कहे, सब से बड़ा रुपैया ।।

बेटा चाहे अनीति करे, अधर्म करे, झूठ-कपट का सेवन करे, अगर वह रुपये ले आता है तो अच्छा है, नही तो नहीं। ऐसा मानने वाले लोग वास्तव मे मा-बाप नही किन्तु अपनी सतान के शत्रु हैं । ससार मे जहा पुत्र को पाप करते देखकर प्रसन्न होने वाले मा-बाप मौजूद हैं, वहां ऐसे मा-बाप भी मिल सकते हैं, जो पुत्र की धार्मिकता की बात सुनकर प्रसन्न होते हैं। पुत्र जब कहता है-आज मेरे ऊपर ऐसा सकट आ गया था । मैं अपने शत्रु से इस प्रकार बदला ले सकता था पर मैंने फिर भी धर्म नही छोडा । मैंने अपने शत्रु की इस प्रकार की सहायता की । ऐसी वातें सुनकर प्रसन्न होने वाली कितनी माताए हैं ?

राम और कौशल्या की वात सीता भी सुन रही थी। वह नीची दृष्टि किये सलज्ज भाव से वही खडी थी । माता और पुत्र का वार्तालाप सुनकर उसके हृदय में न जाने कैसा तूफान आया होगा ! सीता की सास उसके पति को वन जाने के लिये आशीर्वाद दे रही है, यह देखकर सीता को प्रसन्न होना चाहिये या दुःखी ? अगर आज ऐसी वात हो तो वह कहेगी—यह कैसी अभागिनी सास है, जो अपने बेटे को ही वन मे भेजने को तैयार हो गई है ! मैं यह समझती थी कि यह वन जाने से रोकेगी पर यह तो उल्टा आशी-र्वाद दे रही है। मगर सीता ने ऐसा नही सोचा । सीता मे कुछ विशेपताएं थीं और उन्ही विशेषताओ के कारण राम मे भी पहले उसका नाम लिया जाता है । पर आज सीता के आदर्श को हृदय मे उतारने वली स्त्रिया मिलेंगी ? फिर भी भारतवर्ष का सौभाग्य है कि यहां के लोग सीता के चरित्र को बुरा नहीं समझते । बुरे से

बुरा आचरण करने वाली नारी भी सीता के चरित्र को अच्छा समझती है ।

सीता मन ही मन कहती है—आज प्राणनाथ वन को जा रहे हैं । क्या मेरा भी इतना पुण्य है कि मैं भी उनके चरणों मे आश्रय पा सकू ?

पति को प्राणनाथ कहने वाली स्त्रिया तो बहुत मिल सकती हैं मगर इसका मर्म सीता जैसी विरली ही जानती है। पति का वन जाना सीता के लिये सुख की बात थी या दुख की ? यों तो पत्नी को छोडकर पति का जाना पत्नी के लिये दुख की बात ही है, पर सीता को दुख का अनुभव नहीं हो रहा है। उसकी एक मात्र चिन्ता यह है कि क्या मेरा इतना पुण्य है कि मैं भी पतिदेव की सेवा मे रह सकू ? सीता के पास विचार की ऐसी सुन्दर सम्पत्ति थी। यह सम्पत्ति सभी को सुलभ है। जो चाहे, उसे अपना सकता है। जो ऐसा करेगा वही सुकृतशाली होगा ।

सीता सोचती है—मेरे पतिदेव तो राज्य त्याग कर वन जा रहे हैं। वे अपनी माता की इच्छा और पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने वन जाते हैं, लेकिन हे सीता ! तेरा भी कुछ सुकृत है या नहीं ? क्या तेरा इतना सुकृत है कि तेरा और प्राणनाथ का साथ हो सके ? तूने प्राणनाथ के गले मे वरमाला डाली है, पति के साथ विवाह किया है, उनके चरणो मे अपने को अर्पित कर दिया है, इतने दिन उनके साथ ससार का सुख भोगा है तो क्या तेरा ऐसा भाग्य नही कि वन मे जाकर तू उनका साथ दे सके ?

सीता सोचती है—मैं राम के साथ भोग-विलास करने के लिये नहीं व्याही गई हूं । मेरा विवाह राम के धर्म के साथ हुआ

है । ऐसी दशा मे क्या राम अकेले ही वन जाकर धर्म करेंगे ? क्या मैं उस धर्म का सहयोग देने से वचित रहूगी ? अगर मैं शरीर सहित प्राणनाथ के साथ न रह सकी तो मेरे प्राण अवश्य ही उनके साथ रहेंगे। मुझमे इतना साहस है कि अपने प्राणो को शरीर से अलग कर सकती हू । अगर राजमहल के कारागार मे मुझे कैद किया गया तो निश्चित रूप से मेरा निर्जीव शरीर ही कैद रहेगा। प्राण तो प्राणनाथ के पास उडकर पहुचे बिना नही रहेगे ।

प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है और मुझे अभी प्राप्त करनी होगी। सासजी की अनुमति लिये बिना मेरा जाना उचित नही है । सासजी से अनुमति लूंगी। जब उन्होने पुत्र को आज्ञा दी है तो पुत्रवधू को भी देंगी ही ।

सीता सोचती है—प्राणनाथ का वन जाना मेरे लिये गौरव की बात है। उनके विचार इतने ऊचे और उनकी भावना इतनी पवित्र है, इससे प्रगट है कि उनमे परमात्मिक गुण प्रगट हो रहे हैं। मैंने विवाह के समय इन्हे दूसरे रूप मे देखा था। आज दूसरे ही रूप मे देख रही हू ।

रामचन्द्र जी ने कौशल्या को प्रणाम किया और विदा लेने लगे । तब पास ही मे खडी सीता भी कौशल्या के पैरो पर गिर पडी।। सीता को पैरो के पास गिरी देखकर कौशल्या समझ गई कि सीता भी इस पिजरे से बाहर जाना चाहती है, जिसे राम ने तोडा है ।

फिर कौशल्या ने सीता से कहा—वहू तुम चचल क्यो हो ?

सीता—माता ! ऐसे समय चचल होना स्वाभाविक ही है। आपके चरणों की सेवा करने की मेरी बडी साध थी। वह मन

की मन मे ही रह गई । कौन जाने अब कब आपके दर्शन होंगे ?

कौशल्या—क्या तुम भी वन जाने का मनोरथ कर रही हो?

सीता—हा मा ! यही निश्चय है । जिसके पीछे यहा आई हू, जब वही वन जा रहे हैं तो मैं किस प्रकार यहा रहूगी ? जब पति वन मे हो तो पत्नी राजमहल मे रहकर अर्धाङ्गिनी कैसे कहला सकती है ?

सीता की बात से कौशल्या की आखें भर आई । राम तो ठीक, पर यह राजकुमारी सीता वन मे कैसे रहेगी ? फिर सीता सरीखी गुणवती वधू के वियोग से सास को शोक होना स्वाभाविक ही था। कौशल्या ने सीता का हाथ पकड़कर अपनी ओर खीच कर उसे बालक की तरह अपनी गोद मे ले लिया। अपनी आखो से वह सीता पर इस तरह अश्रुपात करने लगी, जैसे उसका अभिषेक कर रही हो । थोडी देर बाद कौशल्या ने कहा—पुत्री, क्या तू भी मुझे छोड जायगी ? तू भी मुझे अपना वियोग देगी ? राम को तो अपना धर्म पालन करना है, उन्हे अपने पिता के वचन की रक्षा करनी है, इसलिए वन को जाते हैं पर तुम क्यो जाती हो ? तुम पर क्या ऋण है ?

सीता इस प्रश्न का क्या उत्तर देती ? वह यही उत्तर दे सकती थी कि मैं राम के रग मे रगी हू । पति जिस ऋण को चुकाने के लिए वन जाते हैं, क्या वह अकेले उन्ही पर है ? नही, वह मुझ पर भी है। जब मैं उनकी अर्धाङ्गिनी हू तो पति पर चढा ऋण पत्नी पर भी है। पर सीता ने कोई उत्तर नही दिया । वह मौन रही ।

कौशल्या समझा–बुझाकर सीता का राम–रग उतारना चाहती

है पर वह सीता जो ठहरी । रग उतर जाता तो सीता ही नहीं रहती । दूसरी कोई स्त्री होती तो इस अवसर से लाभ उठाती । वह कहती-मैं क्या करू ? मैं तो जाने को तैयार थी मगर सासजी नही जाने देती। सास की बात मानना भी तो वहू का धर्म है ! पर सीता ऐसी स्त्रियो मे नहीं थी ।

कौशल्या ने सीता से कहा—बहू, विदेश प्रिय नही है। प्रवास अत्यन्त कष्टकर होता है । फिर वन का प्रवास तो और भी कष्ट-कर है । तू किसी दिन पैदल नही चली । अब काटो से परिपूर्ण पथ पर तू कैसे चल सकेगी ? तेरे सुकुमार पैर ककरो और कांटो का आघात कैसे सह सकेंगे ?

आप सीता को कोई गुडिया न समझे, जो चार-कदम भी पैदल नही चल सकती । उसके चरित पर विचार करने से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वह सुख के समय पति से पीछे और दुख में पति से आगे रही थी। अतएव उसे कायर नही समझना चाहिये।

सब ही बाजे लश्करी
सब ही लश्कर जाय ।
सेल धमाका जो सहै,
सो जागीरो खाय ।।
गलियारा फिरता फिरे,
बांध ढाल तलवार
शूरा तब ही जानिये ।
रण बाजे झंकार ।।

स्त्रिया कहती हैं—हमें कायर तभी समझना जब हम दुख-

सुख मे आगे न रहे । पति के आगे रहने वाली स्त्रिया भारत मे कम नहीं हुई हैं । सलूम्बर की रानी ने तो पति से पहिले ही अपना सिर दे दिया था । उसने कहा था—आपको मेरे शरीर पर मोह है तो पहले मेरा ही सिर ले लो । जो वीरागना हसती-हसती पति के लिये अपना सिर दे सकती है उसे कौन कायर कह सकता है ? वीरागना कहती है—हम सुख के समय ही कायर और सुकुमार हैं । सुख के समय ही हम सवारी पर बैठकर चलती हैं । लेकिन दुख के समय हम पति से आगे रहती हैं । पति जो कष्ट उठाता है, उससे अधिक कष्ट उठाने के लिये तैयार रहती हैं ।

कौशल्या सीता को कोमलागी समझकर वन जाने से रोकना चाहती हैं । वह कहती हैं—हे राम, मैं तुमसे और सीता से कहती हू कि सीता वन जाने योग्य नहीं है । मैंने सीता को अमृत की जडी की तरह पाला है । वह वन रूपी विषकटक मे जाने योग्य नही है । यह राजा जनक के घर पलकर मेरे घर मे आई है । जिसने जमीन पर पैर तक नही रखा, वह वन मे पैदल कैसे चलेगी ? यह किरात-किशोरी अर्थात्-भील की लडकी नही है और न तापस-नारी है, जो वन मे रह सके । दाख का कीडा पत्थर मे नहीं रह सकता । यह मेरी नयन-पुतली है, जो तनिक भी आघात नही सह सकती ।

कौशल्या का कथन चाहे ममता के स्रोत से निकला हो मगर सीता के लिए वह परीक्षा है । अब सीता के राम-रस की परीक्षा हो रही है ।

कौशल्या कहती हैं—जगल बडा दुर्गम प्रदेश है । यहा थोडी दूर जाने पर भी जल को झारी वाली दासी साथ रहती है पर

वहा दासी कहां ? वहां तो प्यास लगने पर पानी भी मिलना कठिन है। जब गरम हवा चलेगी तब मुह सूख जायगा। ऊपर से धूप भी तेज लगेगी, उस समय पानी कहा सुलभ होगा ? जगल में पडाव नही है कि पानी मिल सके। इस प्रकार तू प्यास के मारे मरेगी और राम की परेशानी बढ जाएगी। यहा तुझे मेवा मिष्ठान मिलता है, वहा कडुवे-खट्टे फल भी सुलभ नही होगे। सीता, तू भूख-प्यास आदि का यह भयकर कष्ट सहन कर सकेगी ?

वहा न महल है, न गरम कपडे हैं और न सिगडी का ताप है। चलते-चलते जहा रात हो गई वही बसेरा करना पडता है। यही नही, जंगल मे बाघ, चीता, रीछ, सिंह आदि हिंसक जानवर भी होते हैं। तू उनके भयकर शब्दो को कैसे सुन सकेगी ? तूने कभी कठोर शब्द तो सुना ही नहीं है।

सीता सास की वातें सुनकर तनिक भी विचलित नहीं हुई। उसने सोचा—यह तो मेरे राम-रस की परीक्षा हो रही है। अगर इसमे मैं उत्तीर्ण हो गई तो मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा।

सीता के शरीर पर हाथ फेरते हुए कौशल्या कहने लगी—देखती नही, तेरा शरीर कितना कोमल है। तू बचपन से कोमल शय्या पर सोई है। लेकिन वन मे शय्या कहा ? धरती पर सोने मे तुझे कितना कष्ट होगा ? उस समय राम के लिए तू भार हो जाएगी। प्रदेश मे स्त्रिया पुरुष के लिए भार रूप हो जाती हैं। फिर यह तो वन का प्रवास है। स्त्रिया घर मे ही शोभा देती हैं। जगल मे भटकना उनके बूते का नही है।

माता कौशल्या की वात का राम ने भी समर्थन किया। वह सुनकर मुस्कराते हुए बोले—माता, आप ठीक कहती हैं। वास्तव

किया। लेकिन मैं हठ के कारण वन नही जा रही हू । आप विश्वास कीजिये कि मैं वन के कष्टो से भयभीत नही होती। बल्कि यह सुनकर तो वन के प्रति मेरी उत्सुकता और बढती जा रही है। मुझे अपने साहस और धैर्य की परीक्षा देनी है और मैं उस परीक्षा मे अवश्य सफल होऊ गी।

मैं सुख मे तो आपके साथ रही हूं तो क्या दुख के समय किनारा काट जाऊ ? सुख के साथी को दुख मे भी साथी होना चाहिये । जो ऐसा नही करता वह सच्चा साथी नहीं, स्वार्थी है। पत्नी पति के सुख-दुःख की संगिनी है । आप मुझे वन के कष्ट वताकर वन जाने से रोक रहे हैं, मगर क्या मैं आपके सुख की ही साथिन हू ? क्या मुझे स्वार्थपरायण वनना चाहिये ? नही, मैं दुख मे आपसे आगे रहने वाली हू ।

राम का ऐसा पक्का रग सीता पर चढा था कि स्वय राम के छुटाए भी न छूटा। राम सीता को वन जाने से रोकना चाहते थे, पर सीता नही रुकी । वास्तव मे राम-रग वह है, जो राम के धोने से भी नही धुलता ।

सीता कहती है—प्राणनाथ ! जान पडता है, आज आप मेरी ममता मे पड गए हैं । मेरे मोह मे पडकर आपने जो कहा है उसका मतलब यह है कि मैं अपने धर्म का और अपनी विशेषता का परित्याग कर दू । यद्यपि आपके वचन शीतल और मधुर हैं लेकिन चकोरी के लिये चन्द्रमा की किरणें भी दाह उत्पन्न करती हैं । वह तो जल से ही प्रसन्न रहती है। स्त्री का सर्वस्व पति है। पति ही स्त्री की गति है। सुख-दुख में समान भाव से पति का अनुसरण करना ही पतिव्रता का कर्त्तव्य है। मैं इसी कर्त्तव्य का

पालन करना चाहती हूं। अगर मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गई तो घृणा के साथ लोग मुझे स्मरण करेंगे। इसमे मेरा गौरव नष्ट हो जायेगा। इसके अतिरिक्त आप जिस गौरव-पूर्ण काम को लेकर और जिस महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिये वन-गमन कर रहे है क्या उसमे मुझे शरीक नही करेंगे ? आप अकेले ही रहेगे। ऐसा मत कीजिये। मुझे भी उसका थोडा-सा भाग दीजिये। अगर मुझे शामिल नही करते तो मुझे अर्धाङ्गिनी कहने का क्या अर्थ है ? हा, अगर वन जाना अपमान की बात हो तो भले ही मुझे मत ले चलिए। अगर गौरव की बात है तो मुझे घर ही मे रहने की सलाह क्यो देते हैं ? आपका आधा अ ग घर मे ही रह जायगा तो आप विजय कैसे पा सकेंगे ? आधे अ ग से किसी को विजय नही मिलती।

आप वन मे मुझे भय ही भय बतलाते हैं मगर आपके साथ तो मुझे वन मे जय ही जय दिखलाई देती है। कदाचित् भय भी वहां होगा मगर भय पर विजय प्राप्त कर लेना कोई कठिन बात नहीं और ऐसी विजय मे ही सुख का वास है।

कदाचित् आप सोचते होगे कि सीता मे आत्मबल नही है, इस कारण वन उसके लिये कष्टकर होगा। कदाचित् भय वहा होगा मगर अवसर मिलने पर मैं अपना बल दिखलाऊ गी। स्त्री के लिये जितने भी व्रत-नियम हैं और धर्म हैं उनमे से किसी मे भी चूक जाऊ तो मैं जनक की पुत्री नही। अधिक क्या कहू, बस इतना ही निवेदन करना चाहती हू कि मैं आपकी अर्धाङ्गिनी हू, सुख-दु ख की साथिन हू। मुझे अलग मत कीजिये। वन के जो कष्ट आप सहेंगे, मैं भी सह लू गी। कोमलता कठोरता के सहारे और कठोरता कोमलता के सहारे रहती है। डाली के बिना पत्ती और पत्ती के बिना डाली नहीं रह सकती। दोनों का अस्तित्व सापेक्ष है। मैं

माता जी से भी यही प्रार्थना करती हू कि वे मुझे निस्संकोच आज्ञा दें। स्त्री के हृदय को स्त्री जल्दी और खूब समझ सकती है। इससे ज्यादा निवेदन करने की आवश्यकता ही नही है।

सीता सोचती है—जहा पति हैं, वहा सभी सुख है। जहा पति नही; वहा दुःख ही दुःख है। पति स्वय सुखमय है। उनके वियोग मे सुख कहा ?

सीता फिर बोली—आप वन मे सताप कहते हैं पर वहा पाप तो नही है ? जहा पाप न हो, वह सताप-सताप ही नही है, वह तो आत्मशुद्धि करने वाला तप है। आप भूख-प्यास का कष्ट बतलाते है लेकिन स्त्रिया इन कष्टो को कष्ट नही गिनती। अगर हम भूख-प्यास से डरती तो पुरुषो से अधिक उपवास न करती। भूख सहने मे स्त्रिया पक्की होती हैं।

सीता की बाते सुनकर कौशल्या सोचने लगी—सीता साधारण स्त्री नही है। इसका तेज निराला है। यह साक्षात् शक्ति है। राम और सीता मिलकर जगत् का कल्याण करेंगे। जगत् मे नया आदर्श रखने के लिए इनका जन्म हुआ है। अतएव सीता को राम के साथ जाने की अनुमति देना ही ठीक है।

सीता की बातो से प्रभावित होकर कौशल्या ने सीता को आशीर्वाद दिया—बेटी, जब तक गगा और यमुना की धारा बहती है तब तक तेरा सौभाग्य अखण्ड रहे। मैंने समझ लिया कि तू मेरी ही नही पर सारे ससार की है। तेरा चरित्र देखकर ससार की स्त्रिया सती बनेंगी और इस प्रकार तेरा सौभाग्य अखण्ड रहेगा। सीते ! तेरे लिये राजभवन और गहन वन समान हो। तू वन मे भी मगल से पूरित हो।

सीता सास का आशीर्वाद पाकर कितनी प्रसन्न हुई, यह कहना कठिन है। आशीर्वाद देते समय कौशल्या के मन की क्या अवस्था हुई होगी, यह तो कौशल्या ही जानती है या सर्वज्ञ भगवान् जानते हैं। राम और सीता कौशल्या के पैरो पर गिरे। कौशल्या ने अपने हृदय के अनमोल मोती उन पर बिखेर दिये और विदा दी।

सीता की भावना कितनी पवित्र और उच्च श्रेणी की थी! सीता सच्ची पतिव्रता थी। वह पति की प्रतिज्ञा को अपनी ही प्रतिज्ञा समझती थी। उसने अपने व्यक्तित्व को राम के साथ मिला दिया। सीता का गुण थोडे अ शो मे भी जो स्त्री ग्रहण करेगी उसे किसी चीज के न मिलने का या मिली हुई चीज के चले जाने का कभी भी दु ख नहीं होगा।

स्त्रियों को अगर सीता का चरित्र प्रिय लगेगा तो वे पहिले पतिप्रेम के जल में स्नान करेंगी। पतिप्रेम के जल मे किस प्रकार स्नान किया जाता है, यह बात सीता के चरित्र से समझ मे आ सकती है। राम से पहिले सीता का नाम लिया जाता है। सीता ने यदि पतिप्रेम-जल मे स्नान न किया होता और राजभवन मे रह जाती तो उसका नाम आदर से कौन लेता ?

सीता ने अपने असाधारण त्यागमय चरित्र के द्वारा स्त्री-समाज के सामने ऐसा उज्ज्वलता का आदर्श उपस्थित कर दिया, जो युग-युग में नारी का पथ प्रदर्शन करेगा। पथ-भ्रष्ट स्त्रियों के लिये यह महान् उत्सर्ग वडे काम का सिद्ध होगा।

एक आजकल की स्त्रिया हैं कि जिन्हे वन का नाम लेते ही बुखार चढ आता है। सीता ने वन जाकर स्त्रियो को अबला कहने वाले पुरुषो को एक प्रकार से चुनौती दी थी। उसने सिद्ध किया

है कि स्त्रियां शक्ति हैं। सीता के द्वारा प्रदर्शित पथ पर स्त्रियो को चलना चाहिये ।

सीता का पथ कौन-सा है ? कैसा है ? इसका उत्तर देना कठिन है । पूरी तरह उस पथ का वर्णन नही किया जा सकता । एक कवि ने कहा है—

बेना आपणो बनाव,
घणा मोल को करां ।
पैली आपणी सत्यां रा,
पग लागणो करां ।। बेना० ।।
पति-प्रेम रा पवित्र,
नीर मांय सांपड्यां,
पीर-सासरा रा बखाण रा
सुवेष पैरलां ।
मेहदी राचणी विचार
घरे काम आदरां ।। बेना० ।।

सीता के रोम-रोम मे पुनीत पतिभक्ति भरी हुई थी । पतिव्रता स्त्री के नेत्रो मे वह शक्ति होती है कि अगर वह किसी को पुत्र की तरह प्रेम की दृष्टि से देख ले तो उसका शरीर वज्रमय हो जाय और यदि क्रोध की दृष्टि से देख ले तो वह भस्म हो जाय।

जो स्त्री अपने सतीत्व को हीरे से बढकर समझती है, उसकी आंखो मे तेज का ऐसा प्रकृष्ट पुञ्ज विद्यमान रहता है कि सामना होते ही पापी की निर्बल आत्मा कापने लगती है ।

पति-पत्नी का मन अगर निष्कपट हो तो एक को दूसरे के मन की बात जान लेना भी कठिन नही है ।

सीता की भाति क्या आज की बहिनें सम्पूर्ण विश्व को अपना समझती हैं ? राज्य तो बडी चीज है पर आजकल तो क्या तुच्छ से तुच्छ वस्तुओं को लेकर ही देवरानी जेठानी मे महाभारत नहीं मच जाता ? भाई-भाई के बीच कलह की बेल नही बो देती ? क्या जमाना था वह कि जब सीता इस देश मे उत्पन्न हुई थी। सीता जैसी विचारशील सती के प्रताप से यह देश धन्य हो गया ।

कुलीन स्त्रियां, जहा तक सम्भव होता है, भाई-भाई मे विरोध उत्पन्न नहीं होने देती । यही नहीं वरन् किसी अन्य कारण से उत्पन्न हुए विरोध को भी शात करने का प्रयत्न करती हैं । पतिव्रता नारी अपने पति को शरीर से भी अधिक मानती है । पति के प्रेम से प्रेरित होकर तो वह अपने शरीर की हड्डी—चमडी भी खो देती है लेकिन पति का प्रेम नहीं खोती ।

कोई महिला कुचाल चलते हुए भी पतिव्रता बनने का ढोग कर सकती है और अपने पति को आखो मे धूल झोक सकती है पर यह चालाकी ईश्वर के सामने नही चल सकती । पति हृदय की बात नही जानता मगर ईश्वर मनुष्य के हृदय को भी जानता है । वह सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है । जो उसको धोखा देने की कोशिश करेगी वह स्वय धोखे की शिकार होगी ।

परम पिता के पास अच्छी या बुरी नारियो का इतिहास जैसा का तैसा पहुच जाता है । सती स्त्रियों के हृदयोद्गार कितनी शीघ्रता से ईश्वर के पास पहुचे हैं, इसके उदाहरण भी कम नहीं ।

सीताहरण से रावण के वश का नाश हो गया । चित्तौड़

की राजपूत–सतियों की हृदयाग्नि ने मुगल वंश का इस तरह नाश किया कि आज उनके नाम पर रोने वाला भी नही है।

द्रौपदी चीर–हरण के कारण ही कौरव वंश का नाश हुआ। द्रौपदी का चरित्र जिसे विस्तार से देखना हो, उसे महाभारत मे देखना चाहिए। सीता का पतिव्रत कुछ कम नही। उसका सतीत्व वडा ही जाज्वल्यमान है, पर द्रौपदी भी कुछ कम नहीं थी। वह एक प्रखर नारी थी। सीता सौम्यमूर्ति थी। द्रौपदी शाति का अवतार थी पर भीष्म पितामह आदि महापुरुषो के सामने भी भाषण देने वाली थी। वह वीरागना का काम पडने पर युद्ध–शिक्षा देने से भी नही चूकती थी।

चदनवाला को ही देखिये। राजकुमारी होकर विक जाना, अपने ऊपर आरोप लगने देना, सिर मुंडवाना, प्रहार सहन करना, क्या साधारण बात है? तिस पर उसे हथकडी–वेडी डाली गई और वह भौंरये मे वन्द कर दी गई। फिर भी धन्य है चन्दनवाला महासती को, जो मुस्कराती ही रही और अपना मन मैला न होने दिया।

सचमुच स्त्रिया वह देवी हैं, जिनके सामने सव लोग सिर नमाते हैं और आज ऐसी ही देवियो, वीर माताओं, वीर पत्नियो और वीर वहिनो की आवश्यकता है। लेकिन यह भी दृढ सत्य है कि स्त्रियो का निरादर करके ऐसी माताए और वहिनें नही वना सकते वल्कि उनका आदर करके ही वना सकते हैं।

पति और पत्नी का दर्जा वरावर है। तथापि दोनो मे जो अधिक वुद्धिमान् हो, उसकी आज्ञा कम वुद्धिमान् को माननी चाहिये। ऐसा करने से ही गृहस्थी मे सुख–शाति रह सकती है क्योकि

पति अगर स्वामी है तो स्त्री क्या स्वामिनी नही ? पति अगर मालिक कहलाता है तो पत्नी क्या मालकिन नही कहलाती ?

इसी तरह स्त्रियो के लिये अगर पतिव्रत धर्म है तो पुरुषों के लिये पत्नीव्रत धर्म क्यो नही ? धनवान् लोग अपने जीवन का उद्देश्य भोगविलास करना समझते हैं। स्त्री मर जाए तो भले मर जाए, पैसे के बल पर वे दूसरी शादी कर लेंगे। इस प्रकार एक पत्नीव्रत की भावना न होने से अनेक स्त्रिया पुरुषों की लोलुपता की शिकार होती है ।

आज के पति धर्म-पत्नी को भूल रहे हैं। इसी कारण ससार में दाम्पत्य जीवन दु खपूर्ण दिखाई देता है । आज साधारण तौर पर यह रिवाज चल पडा है कि पति एक पत्नी के मर जाने पर दूसरी और दूसरी के मर जाने पर तीसरी ब्याह लाता है। मगर यह अन्याय है । पुरुष अपनी स्त्री को तो पतिव्रता देखना चाहते हैं पर स्वय पत्नीव्रतधारी नहीं बनना चाहते । पुरुषो ने अपनी सुख-सुविधा के अनुकूल नियम घड लिये हैं। परन्तु शास्त्रकार स्त्री और पुरुष के बीच किसी प्रकार का अनुचित भेद न करते हुए, समान रूप से पुरुष को पत्नीव्रत और स्त्री को पतिव्रत पालने का आदेश देते हैं। शास्त्रकार उत्सर्ग मार्ग के रूप में ब्रह्मचर्य पालने का आदेश देते हैं । अगर पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति न हो तो पुरुष को पत्नीव्रत और पत्नी को पतिव्रत पालने को कहते हैं । लेकिन पुरुष अपने आपको स्वपत्नी सन्तोषव्रत से मुक्त समझते हैं और सिर्फ पत्नी से स्वपति-सतोपव्रत का पालन कराना चाहते हैं। वे यह नहीं सोचते कि जब हम अपने व्रत का पालन नहीं करते तो स्त्री से यह आशा कैसे रख सकते हैं कि वह अपने व्रत का पालन करे ही ! अतएव पुरुषो और स्त्रियो के लिये उचित मार्ग यही है कि दोनो

अपने-अपने व्रत का पालन करें। जो व्रत का भली-भांति पालन करता है, उसका कल्याण अवश्य होता है।

वे मनुष्य वास्तव मे धन्य हैं, जो सौन्दर्यमूर्ति, नवयौवना स्त्री को देखकर भी विचलित नही होते किन्तु अपने निज स्वरूप मे स्थिर रहते है। उनको कवि ने तो भगवान् की उपमा दे दी ही है किन्तु विचार करते हुए यह उपमा अतिशयोक्ति नही है। क्योंकि इन्द्र, चन्द्र, नागेन्द्र और नरेन्द्र भी जिसकी आख के इशारे पर नाचते रहते हैं, उस मनोहरा स्त्री को देखकर जो क्षुब्ध नही होते, वे मनुष्य तो क्या देवो के भी पूज्य हैं और ससार मे ऐसे महापुरुष तो बहुत ही कम हैं। जघन्य पुरुष पत्नी होते हुए भी किसी रूपवती को देखकर और उसे अधीन करने के लिए आकाश-पाताल एक कर डालते हैं और उचित अनुचित सभी उपाय काम मे लेते है। न बोलने जैसे वचन बोलते हैं और स्त्री के दास होकर रहना भी स्वीकार करते हुए नही सकुचाते। कामान्ध मनुष्य यह नही सोचता कि मैं कौन हू ? किस कुल मे उत्पन्न हुआ हू ? मेरी व मेरे खानदान की प्रतिष्ठा कैसी है ? और मैं यह क्या कर रहा हूं ? मैंने जब विवाह किया था, तब अपनी पत्नी को मैंने क्या-क्या अधिकार दिये थे ? उसे क्या-क्या विश्वास दिया था और अब उसका हक, उसका अधिकार दूसरी को देने का मुझे क्या हक है ?

वह उचित और अनुचित रीति से उसे लालच और विश्वास देकर अपनी तरफ रुजू करने की चेष्टा करता है। इस तरह लाचारी-आजीजी भी करता है परन्तु जो चतुर स्त्री होती है, वह उसके दम्भ मे नहीं आती और अपने शील-धर्म एव पतिव्रत धर्म को ही आदर्श मानकर उन लालच-भरे वचनो को भी ठुकरा देती हैं। किन्तु जो मूर्ख स्त्रिया होती हैं, वे झासे मे आकर भ्रष्ट हो जाती हैं। वे न

घर की रहती हैं, न घाट की।

४–पतिव्रता का आदर्श

गुर्जर सम्राट् महाराजा सिद्धराज ने भी एक मजदूरनी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर क्या–क्या चेष्टाए कीं, सो तो 'सती जसमा' पढ़ने से ही मालूम होगा। उसके चरित्र की कथाए आज भी गाने बन–बन कर गुजरात भर मे घर–घर गाई जा रही हैं।

गुजरात के पाटन नगर के महाराज सिद्धराज सोलकी ने एक तालाव खुदवाना आरम्भ किया था। उसकी खुदाई के लिये जो मजदूर आए थे, वे जाति के 'ओड' थे। उन्ही मे एक मजदूर टीकम नाम का था, जिसकी पत्नी जसमा थी।

जसमा युवती थी और साथ–साथ अत्यन्त सौन्दर्यमयी भी थी। तालाब के बाध पर बार–बार मिट्टी ले जाकर डालती हुई जसमा पर एक दिन महाराज सिद्धराज की नजर पड गई और उसे देखते ही प्राणपण से चेष्टा करके वे उसे अपनाने की कोशिश करने लगे।

तालाव का काम चालू हुए करीब पन्द्रह दिन हो चुके थे। महाराज को जब भी जसमा याद आती, वे तालाब पर पहुच जाते। इन पन्द्रह दिनो मे एक दिन भी ऐसा नहीं गया कि जिस दिन महाराज तालाब पर न पहुचे हो।

एक दिन महाराज कुछ और जल्दी आ गए। यद्यपि मध्याह्न बीत चुका था परन्तु समय बहुत था। धूप भी कडाके की पड रही थी। ओड लोग खुदाई कर रहे थे और उनकी स्त्रिया टोकरियो

मे मिट्टी भरकर फैंक रही थी । महाराज को ऐसी धूप मे आया देख सभी को आश्चर्य हुआ । कुछ देर तक महाराज इधर-उधर घूमते रहे । आग बरस ही रही थी । महाराज ने मौका पाकर जसमा से पानी मागा ।

जसमा महाराज को इन्कार तो कैसे कर सकती थी ? वह शरमाती हुई पानी का प्याला महाराज के पास लाई ।

महाराज ने पानी पीते-पीते ही कहा—तुम्हारा ही नाम जसमा है ? अचानक महाराज के मुंह से अपना नाम सुनकर जसमा शरमा गई । लज्जा की रेखा उसके मुंह पर आई और आते ही उसका सौन्दर्य और अधिक खिल उठा । जसमा ने महाराज को तीन-चार बार इस झाड के नीचे देखा था । उसने सक्षेप मे ही उत्तर दिया—'जी' । राजा पानी पी गया और फिर दूसरी बार पानी मागा और साथ ही दूसरा प्रश्न भी किया ।

महाराज—जसमा ! तू ऐसी कडी धूप कैसे सहती होगी ?

जसमा—क्या करें महाराज ! हम क्या राजा हैं ? मजदूरी करते है और गुजारा चलाते हैं । जसमा ने पानी का पात्र दूसरी बार देते हुए नजर दूसरी तरफ रखकर जवाब दिया ।

महाराज—परन्तु ऐसी धूप मे ?

जसमा—नहीं तो पूरा कैसे पडे ? बोलते-बोलते अधिक देरी हो जाने के डर से जसमा ने खुदती हुई जमीन पर दृष्टि डाली और अपने पति को काम करता हुआ देखकर झोली मे सोते हुए वालक को झूला देती हुई चली गई । महाराज देखते रह गए । पर महाराज की इच्छा उसे प्राप्त करने के लिए बलवती हो उठी ।

जिस मनुष्य के हृदय मे किसी को देखकर विकार उत्पन्न हो जाता है, उसे वही धुन लग जाती है कि इसे मैं कैसे प्राप्त करू और अपनी प्रेयसी वनाऊ ? उस लालसा के वेग मे वह अपना आपा भी भूल जाता है। अपनी एव पूर्वजो की इज्जत का जरा भी ख्याल नही रखता हुआ ऐसे प्रपच रचता है, जिन्हे समझना वडी ही कठिन वात है। इस फदे मे फसा हुआ मनुष्य सभी कुकृत्य कर अपना इहलोक और परलोक दोनो ही बिगाड़ लेता है।

जिस दिन महाराज ने जसमा के हाथ से पानी पीया था उस दिन के बाद से तो बराबर तालाब पर जाना और प्रसग पाकर उससे बातचीत कर उसे अपनाना, महाराज का ध्येय बन चुका था। एक दिन इसी प्रकार वे पेड के नीचे खडे थे। जसमा ने आकर बच्चे को झुलाया और चलने लगी कि पीछे से धीमी आवाज आई—जसमा !' जसमा ने पीछे फिर कर देखा तो महाराज थे। वह चुपचाप खडी रह गई।

महाराज—जसमा ! ऐसी मेहनत करने के लिये तू बनी है, यह मैं नही मानता। फिर क्यो इस तरह तू जीवन बरबाद कर रही है ?

जसमा—क्या करें महाराज ! हमारा धन्धा ही ऐसा है, जसमा सकुचाते हुए बोली।

महाराज—मैं तुम्हारे लिए यह सुविधा किये देता हू कि तुम आज से तालाव के किनारे पर बैठी हुई अपने बच्चे का पालन किया करो। मिट्टी मत उठाया करो। मिट्टी उठाने वाली तो बहुत हैं।

जसमा—आप मालिक हैं, इसलिये ऐसी कृपा दिखाते हैं

परन्तु मैं विना मेहनत किये हराम का खाना नही चाहती। मेहनत करना मैं अच्छा समझती हू ।

महाराज—जसमा ! तेरा शरीर अत्यन्त सुकुमार है, मिट्टी ढोने लायक नही । इसकी कदर तो कद्रदान ही कर सकता है। तू मिट्टी ढोकर इसका सत्यानाश मत कर ।

जसमा—महाराज ! विना मेहनत किये बैठे-बैठे खाने से कई प्रकार के रोग हो जाते हैं । मुझे भी कोई रोग हो जाए और वैद्य लोग फीस मागे तो हम मजदूर कहा से लाएं ? हम मजदूरो के पास धन कहा है ?

हिस्टीरिया का रोग, जिसे सयानी औरतें भेडा-चेडा कहती हैं और जिसके हो जाने पर अक्सर देवी-देवताओ और पीरो के स्थान पर ले जाना पडता है, वह प्राय परिश्रम न करते हुए बैठे-बैठे खाने से ही होता है। यह रोग जितना गरीब स्त्रियो को नही होता उतना धनवान् स्त्रियो को होता है। जहा परिश्रम नही किया जाता वहा यह रोग जल्दी लागू होता है। फिर वैद्यो की हाजरी और देवी-देवताओ की मिन्नतें करनी पडती हैं । महाराज, मैं ऐसा नहीं करना चाहती । मेरा काम अच्छी तरह चल रहा है। परिश्रम करने से मेरा शरीर स्वस्थ रहता है। आप फिक्र न करें ।

महाराज—जसमा ! मैं फिर कहता हू कि तू जगल मे बसने योग्य नही है । देख तो, यह तेरा कोमल शरीर क्या जगल मे भटकने योग्य है ? तू मेरे शहर मे चल ! 'पाटन' इस समय स्वर्ग बन रहा है और मैं तुझे रहने के लिए अत्यन्त सुन्दर जगह दिलाऊगा ।

जसमा समझ गई कि राजा ने पहला दाव न चलने से

दूसरा पासा फेंका है और मुझे लोभ दिया जा रहा है।

जसमा—महाराज, कहां तो यह आनन्ददायक जगल और कहां गन्दा नगर ? जिस प्रकार गर्मी के मारे कीडे-मकोडे भूमि मे से निकल कर रेंगते हैं, उसी प्रकार शहरो के तग मार्ग मे मनुष्य फिरते हैं। वहां अच्छी तरह चलने के लिए मार्ग भी तो पूरा नहीं मिलता। जगल मे तो सदा ही मंगल है। ऐसी शुद्ध और स्वच्छ वायु और विस्तृत स्थान शहरो मे कहां है ?

महाराज—जसमा! तेरी बुद्धि बिगडी हुई है। गंवारो को गवारपना ही अच्छा लगता है। इसी से तू ऐसी बातें कर रही है। जगल की रहने वाली तू शहर का मजा क्या समझे! चल, मैं तुझे बडे आराम से महल मे रखूंगा। महाराज ने डाट-डपट कर फिर लालच दिखाया।

जसमा—चाहे आप मेरी ढिठाई समझें या गवारपन, सच्ची बात तो यह है कि जैसा आपको नगर प्रिय है, वैसा ही मुझे जगल प्रिय है। शहर के आदमी जैसे मन के मैले होते हैं वैसे जगल के नही। वडे-वडे शहर आज पाप के किले बने हैं। चोर जुआरी, व्यभिचारी, नशेबाज आदि-आदि सभी तरह के मनुष्य शहरों मे होते हैं। देहातो मे ये बातें अधिकाश नहीं होती हैं। यहा किसी का सोने-चांदी का जेवर भी पडा रह जाय तो देहाती लोग उसके मालिक को ढूढकर उसे पहुचाने की चेष्टा करेंगे। यह बात शहरो मे नही है। शहरों के लोग तो छोटी से छोटी वस्तु के लिये भी परस्पर हत्या करने से नही चूकते हैं।

महाराज—तेरा पति कहा है, जिस पर तू इतना गर्व कर रही है ? जरा मैं भी तो देखूं, वह कैसा है ?

सिद्धराज ने हुक्म दिया और सैनिको ने शस्त्र गिरा दिये। रक्त-रजित भूमि पर जसमा निर्भीक खडी थी। महाराज घोडे से उतर कर जसमा के पास पहुच गए और बोले—जसमा !

जसमा—महाराज, यह आशा छोड ही दीजिये। आपकी इच्छा पूरी होने वाली नही है।

राजा—जसमा, तू देख तो सही, मेरा दरबार कितना सुन्दर है। ये महल कैसे बने हुए हैं। कितने अच्छे बाग-बगीचे हैं। तू इन सब की स्वामिनी होगी। महाराज ने लालच दिखाया।

जसमा—महाराज, जगल के प्राकृतिक दृश्य के सामने आपके ये बाग-बगीचे सब धूल हैं। जिस तरह सूर्य के सामने तारे कान्ति हीन हो जाते हैं, उसी तरह प्राकृतिक जगल के सामने आपके बगीचे कुछ नही। जो जगल मे नही रह सकता, वह भले ही बाग में रहे। मुझे तो इन बागो और महलो की जरूरत नही है।

महाराज—जसमा! तुझ मे सोचने, विचारने व अपना लाभालाभ देखने की शक्ति नही है। इन महलो मे तुझे मृदग के

आपके महल मे रानियो की क्या कमी है ?

महाराज—पर जसमा ! एक बार तू महल देख तो आ।

जसमा—महाराज, पाटन के महल मे रहने की अपेक्षा मैं अपने झोपड़े को किसी तरह कम नही समझती । राजा की रानी होने की अपेक्षा मैं एक ओड की स्त्री कहलाना अधिक पसन्द करती हू । आप सरीखे का क्या भरोसा ? आज आपने मेरे साथ ऐसी बात की। कल आपकी नजर दूसरी तरफ झुकेगी। यही गति रही तो पाटन के नरेश पर कौन विश्वास करेगा ? इसलिये आप यहां से पधारिये और महलो में रहकर अपनी रानियों को ही अपने महल के सुख और वैभव दीजिये । गुजरात के अन्दर ऐसे भी राजा होते हैं, यह आज मालूम हुआ । और जसमा तेजी से चल दी।

महाराज क्रोधोन्मत्त हो उठे। इसके बाद की कथा तो बहुत लम्बी है । राजा ने ओड लोगो पर अनेकों अत्याचार किये । जसमा को कैद किया । फिर अनेको कष्ट सहन करने के बाद एक दिन मौका-पाकर ओड लोगो का सरदार और उसकी पत्नी जसमा कुछ लोगो को साथ लेकर भाग निकले। भागने की रातो-रात कोशिश की मगर अनिष्ट तो सिर पर मडरा ही रहा था । अत विपत्ति ने पीछा नही छोडा । राजा को पता लग गया और वह कुछ सशस्त्र सैनिको को साथ लेकर इन लोगो के पीछे भागा । कुछ ही दूर जाने पर ये लोग पकड लिये गए ।

वीर ओडो ने व्यूह रच लिया । बीच मे जसमा थी । राजा के सैनिक शस्त्रों से सुसज्जित थे। ओडो के पास भी शस्त्र थे पर नाम मात्र के । एक आर्य महिला की प्रतिष्ठा के खातिर उन्हो अपने मरने का भय और जीवन की आशा छोड़ दी थी।

जसमा—वह जो कमर कस कर काम कर रहा है और जिसके सिर पर फूल का गुच्छा है ।

महाराज—क्या तालाब मे ही है ?

'हा' कहकर जसमा झूले की तरफ गई और बच्चे को झूला देकर अपने काम मे लगने के लिए चली । मगर पीछे से महाराज ने आचल पकड़ रखा था, जिसे देखकर जसमा बोली—महाराज, यह क्या ?

महाराज—क्या वही तेरा पति है ? कहा तू और कहा वह ? 'कौए के गले मे रत्नो की माला ?' उस मिट्टी खोदने वाले के पीछे तू इतनी इतरा रही है और मेरा निरादर कर रही है। हसनी कौए के पास नही सोती । इसलिये हसनी को कौए के पास छोडना ठीक नही । तू महल मे चल । महल में ही तू शोभा देगी । देख ! तेरे पति को तेरे ऊपर विश्वास नही है । वह तेरी तरफ टेढा-टेढा देख रहा है । उसका देखने का ढग ही बतला रहा है कि तुझ पर न तो उसका विश्वास ही है और न प्रेम ही । ऐसा आदमी तेरी कदर क्या जाने ? ऐसे अविश्वासी पति के पास रहना क्या तुझे उचित है ?

जसमा—महाराज ! सच्चे को ससार मे जरा भी भय नही है । मेरे पति का मेरे प्रति पूर्ण विश्वास है । मैं अपने पति के सिवाय अन्यान्य पुरुषो को भाई मानती हू । यह अविश्वास तो आप लोगो मे होता है। मेरे मन मे यदि पति के प्रति अविश्वास हो तो पति को मेरे प्रति अविश्वास हो । मेरा पति मुझे नही देख रहा है पर आपकी बिगडी हुई दृष्टि को देख रहा है । महाराज, हम तो मजदूर हैं । मिट्टी उठाये बिना काम कैसे चलेगा ? पर

आपके महल मे रानियो की क्या कमी है ?

महाराज—पर जसमा ! एक बार तू महल देख तो आ ।

जसमा—महाराज, पाटन के महल मे रहने की अपेक्षा मैं अपने झोपड़े को किसी तरह कम नहीं समझती । राजा की रानी होने की अपेक्षा मैं एक ओड की स्त्री कहलाना अधिक पसन्द करती हू । आप सरीखे का क्या भरोसा ? आज आपने मेरे साथ ऐसी बात की। कल आपकी नजर दूसरी तरफ झुकेगी । यही गति रही तो पाटन के नरेश पर कौन विश्वास करेगा ? इसलिये आप यहां से पधारिये और महलो मे रहकर अपनी रानियों को ही अपने महल के सुख और वैभव दीजिये । गुजरात के अन्दर ऐसे भी राजा होते हैं, यह आज मालूम हुआ । और जसमा तेजी से चल दी ।

महाराज क्रोधोन्मत्त हो उठे। इसके बाद की कथा तो बहुत लम्बी है । राजा ने ओड लोगों पर अनेकों अत्याचार किये । जसमा को कैद किया । फिर अनेकों कष्ट सहन करने के बाद एक दिन मौका-पाकर ओड लोगो का सरदार और उसकी पत्नी जसमा कुछ लोगो को साथ लेकर भाग निकले। भागने की रातो-रात कोशिश की मगर अनिष्ट तो सिर पर मडरा ही रहा था । अत. विपत्ति ने पीछा नही छोडा । राजा को पता लग गया और वह कुछ सशस्त्र सैनिको को साथ लेकर इन लोगो के पीछे भागा । कुछ ही दूर जाने पर ये लोग पकड लिये गए ।

वीर ओडो ने व्यूह रच लिया । बीच मे जसमा थी । राजा के सैनिक शस्त्रों से सुसज्जित थे। ओडो के पास भी शस्त्र थे पर नाम मात्र के । एक आर्य महिला की प्रतिष्ठा के खातिर उन्होने अपने मरने का भय और जीवन की आशा छोड़ दी थी ।

महाराज सिद्धराज ने नजदीक जाकर कहा—तुम लोग मरने को तैयार तो हुए हो पर जीना चाहते हो तो जसमा को मुझे सौंप दो और सब चले जाओ। किसी का बाल भी बांका नहीं होगा। पर सब ओडो ने महाराज का तिरस्कार किया।

सिद्धराज आग-बबूला हो गए और आक्रमण करने का हुक्म दिया। टपाटप नि शस्त्र ओड लोग धरती चाटने लगे। कितने ही मरे और कुछ भाग निकले और अन्त मे ओडों का नायक टीकम, जसमा का प्रिय पति भी मारा गया। जीवित रही केवल जसमा।

सिद्धराज ने हुक्म दिया और सैनिको ने शस्त्र गिरा दिये। रक्त-रंजित भूमि पर जसमा निर्भीक खडी थी। महाराज घोडे से उतर कर जसमा के पास पहुच गए और बोले—जसमा!

जसमा—महाराज, यह आशा छोड ही दीजिये। आपकी इच्छा पूरी होने वाली नहीं है।

राजा—जसमा, तू देख तो सही, मेरा दरबार कितना भव्य है! ये महल कैसे बने हुए हैं! कितने अच्छे बाग-बगीचे हैं! तू इन सब की स्वामिनी होगी। महाराज ने लालच दिखाया।

जसमा—महाराज, जगल के प्राकृतिक दृश्य के सामने आपके ये बाग-बगीचे सब धूल हैं। जिस तरह सूर्य के सामने तारे कांति-हीन हो जाते हैं, उसी तरह प्राकृतिक जगल के सामने आपके बगीचे कुछ नहीं। जो जगल मे नही रह सकता, वह भले ही बाग मे रहे। मुझे तो इन बागो और महलो की जरूरत नही है।

महाराज—जसमा! तुझ मे सोचने, विचारने व अपना लाभ लाभ देखने की शक्ति नही है। इन महलो मे तुझे मृदग के

मीठे सुरीले स्वर और गायन की मधुर तान सुनने को मिलेगी।

जसमा—महाराज! आपके गायन और बाजो में विष भरा है। मुझे ऐसा स्वर अच्छा नही लगता। मेरा मन तो जगल मे रहने वाले मोर, पपीहे और कोयल की आवाजो से ही प्रसन्न रहता है। मेरे कान तो इन्हीं की टेर सुनने को व्याकुल रहते हैं।

महाराज—जसमा, यहा तू रूखी-सूखी रोटी खाकर शरीर का सत्यानाश करती रही है। मेरे महलों मे चलकर देख, वहा तेरे लिये अनेक तरह के मेवा-मिष्टान्न तैयार हैं, जिनसे तेरा शरीर चमक उठेगा।

जसमा—महाराज! आपके महल का आराम तो आपकी रानियों को ही मुबारिक हो। मैंने तो घाट खा रखी है। मेरे पेट मे तो पकवान पच नही सकते। मेरे लिये तो राब व दलिया ही अच्छे हैं। महाराज! आप तो पिता तुल्य हैं, प्रजा के रक्षक हैं। गुर्जर सम्राट् को ऐसा करना शोभा देता है?

महाराज—जसमा, यह सुनने का मुझे अवकाश नही। यह तो मैंने बहुत सुन रखा है। यदि तू हा कहती है तो मैं आनन्द से तुझे महल मे रखने को तैयार हू, और अगर इन्कार करेगी तो मैं वापिस लौटने वाला नहीं हू, तुझे जबर्दस्ती चलना पडेगा।

जसमा—अपना बल आजमा लीजिये। मैं भी देखती हू कि आप किस तरह जबर्दस्ती ले चलते है। जसमा जोशपूर्वक बोली—महाराज! कही जाकर पाटन की पटरानी तो दूसरी ढूंढो।

महाराज—जसमा, तुझे खबर है कि तू नि:शस्त्र है।

जसमा—कोई परवाह नही।

सिद्धराज चिढ गए और सैनिकों की तरफ मुंह कर बोले-तुम लोग दूर चले जाओ। सैनिकों ने आज्ञा का पालन किया। सिद्धराज बिलकुल जसमा के पास आए और बोले, क्यों अभी और चमत्कार देखना है ?

जसमा—महाराज, दूर रहना।

महाराज—क्यो ?

जसमा—मैं पाटन चलने को तैयार हू। जसमा ने युक्ति का प्रयोग किया।

सिद्धराज आश्चर्य-मुग्ध हो गया और कहने लगा—पहले क्यो नही समझी ?

जसमा अनसुनी करती हुई बोली—परन्तु मुझे पाटन मे ले जाकर करोगे क्या ?

सिद्धराज - गुर्जर देश की महारानी बनाऊ गा।

जसमा—महारानी ? महारानी तो बनाना अपनी रानी को, मैं महारानी बनकर क्या करूगी ? जसमा ने अपनी आंखो को स्थिर करते हुए कहा और साथ ही महाराज को असावधान देखकर छलाग मार कर महाराजा के हाथ से कटार छुडाने के लिये हाथ मारा। महाराज जसमा का हाथ अलग करते हैं तब तक तो कटार जसमा के हाथ मे पहुच चुकी थी। वह गरजकर बोली—महाराज ! चौकना मत, मैं अभी तुम्हारे सैनिकों के देखते-देखते तुम्हारा खून पी सकती हू और तुम्हारे किये का बदला ले सकती हू परन्तु मैं ऐसा करना नही चाहती। मैं भले ही विधवा हुई पर गुर्जरभूमि को विधवा नही बनाना चाहती। यह कहने के साथ

ही जसमा कटार उठाती हुई बोली—लो ! जिस रूप के कारण तुमने मेरा परिवार नष्ट किया है, उसका खोखा सम्हालो और जसमा ने कटार हृदय में भोक ली ।

वीरागना सती जसमा ने और कोई उपाय न देखकर वीरता का परिचय देते हुए अपना बलिदान देकर ससार के सामने स्त्रीधर्म का उच्च आदर्श स्थापित किया है ।

जसमा का जीवन तो पवित्र था ही परन्तु उसमे इन्द्रिय-सयम और मनोबल भी उच्च कोटि का था। महाराज ने उसे लुभाने के लिए अनेको प्रयत्न किये। खान-पान, वस्त्राभूषण गान-तान, मङ्गलादि के अनेकों प्रलोभन दिये परन्तु पतिव्रता इन सब चीजो को अपने जीवन को पवित्र बनाए रखने मे विघ्न-स्वरूप समझती है, यह जसमा ने अच्छी तरह बता दिया ।

इसके विपरीत आज की अनेक नारिया उत्तम-उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्राभूषण, उत्तम रहन-सहन के पीछे बावली होकर मौज-शोक, ऐश-आराम को ही सब कुछ समझकर अपने धर्म-कर्म को भूल जाती हैं और अपनी जाति, समाज व देश को कलकित करने की कोशिश करती हैं। उनके लिए जसमा का चरित्र एक पाठ है, एक उज्ज्वल उदाहरण है । जसमा ने बता दिया है कि छोटी से छोटी जाति मे भी नारी सती, पतिव्रता और वीरागना हो सकती है और जब कि छोटी-छोटी जाति मे भी ऐसे नारीरत्न होते हैं तो बडे-बडे घराने अत्यन्त ऊंचे कहलाने वाले कुल—खानदान हैं, उनमे प्रत्येक नारी को कैसा होना चाहिए, यह स्पष्ट है ।

परन्तु पहले के समय की अपेक्षा भी हमारा आज का जीवन अत्यन्त दूषित हो गया है। उस पर भी शहरो का वातावरण तो

गन्दा है ही पर गावो मे भी इसका असर होना शुरु हो गया है। पहले जहा किसी गाव के एक घर की लडकी को समस्त गांव वाले अपनी बेटी मानते थे और बहू को अपनी बहू,- वहा आज एक ही घर मे भी एक-दूसरे के सम्बन्ध को पवित्र बनाए रखना कठिन हो गया है। फिर भी आज भी सीता, अंजना, सावित्री-सरीखी नारियां मिल सकती हैं पर राम, पवन व सत्यवान् जैसो का तो कही दर्शन भी नही हो सकता।

पुरुष जाति मे स्वार्थ की भावना पूर्ण रूप से घर कर गई है। आज का प्रत्येक पुरुष तो अपनी पत्नी को पूर्ण पतिव्रता देखना चाहता है पर अपने लिए पत्नीव्रत का नाम आते ही नाक भौ चढाता है। पत्नी को श्मशान मे फूक कर आ भी नही पाते और दूसरी शादी करने के लिए उतावले हो उठते हैं। यह स्वार्थ-वृत्ति नही तो और क्या है? प्राचीन समय मे रामचन्द्र जी ने सीता के अभाव मे किसी तरह भी दूसरी पत्नी न लाकर अश्वमेध यज्ञ मे सीता की स्वर्णमूर्ति बनवा कर ही सीता की पूर्ति की थी, क्योकि रामचन्द्रजी एक पत्नीव्रत के व्रती थे। उसी प्रकार यदि आज भी पतिव्रत की ही तरह पत्नीव्रत को भी उच्च स्थान नही दिया जाता तो स्त्री-पुरुषो का जीवन बहुत आदर्शमय नही हो सकता।

आजकल तो स्त्रियो की समस्या को लेकर भारी आदोलन खडा हो रहा है। स्त्री-सुधार के लिये गर्मागर्म व्याख्यान दिये जा रहे हैं। बडे-बडे अखबारो और पुस्तको मे बहस छिड रही है। स्त्रियों को बराबरी के अधिकार दिलाने को उतावले हो रहे हैं। पर पुरुप यह नहीं देखते कि हम भावनाओ के वेग मे बहकर गलत रास्ते पर जा रहे हैं। स्त्रिया अपने उद्धार-आदोलन से फायदा उठाकर पुरुपों के जुल्मों और अत्याचारो को गिन-गिन कर नारी

और पुरुष के बीच के अन्तर को और बढ़ाए चली जा रही हैं।

यह अनुचित है। स्त्रियों को गलत-मार्ग पर चलाने की अपेक्षा उचित यही है कि पुरुष अपने सच्चे कर्त्तव्य और आदर्श को ख्याल मे रखकर राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि को अपने जीवन मे पथप्रदर्शक समझें और स्त्रियां सीता, सावित्री, अंजना, दम-यन्ती, मीरां आदि को आदर्श बनावें तथा दोनों एक-दूसरे के प्रति मधुरता, सरलता, सहानुभूति भरा व्यवहार रखकर एक-दूसरे के जीवन को ऊंचा उठाए तथा एक-दूसरे के दोषों को निकाल कर गिनाने की अपेक्षा एक-दूसरे की कठिनाइयों, व एक-दूसरे के सुख-दुःख को समझने की चेष्टा करें।

आजकल का समय कुछ विचित्र-सा ही है। अपने कौटुम्बिक जीवन को मधुर बनाने की तरफ तो किसी का ध्यान नहीं है पर जाति, समाज और देश के उत्थान के लिये सभी प्रयत्न कर रहे हैं। यह तो वही हुआ जैसे जड़ को न सींचकर पत्तियों मे पानी देना। इसका नाम उन्नति नही है। समाज का उत्थान इस प्रकार नहीं हो सकता। कारण कि जिस नींव पर हम समाजोद्धार के भव्य महल का सुनहरा स्वप्न देख रहे हैं, वह नींव खराब है। समाज की नींव कुटुम्ब है। अनेकों समाज-सेवकों, नेताओं के घरेलू जीवन अत्यन्त दुःख-पूर्ण होते हैं। पति-पत्नी में जैसा परस्पर सम्बन्ध होना चाहिए वैसा कभी नही रहता और यही वजह है कि स्त्री का सहधर्मिणी नाम बिलकुल उल्टा बनता जा रहा है। पुरुष जमाने भर के कामों मे इस प्रकार डूबे रहते हैं कि जरा भी वे घर का ख्याल नही रखते और स्त्रियां पति का प्रेम न पाकर, बल्कि समानता का खिताब पाकर, पुरुषों के विरुद्ध शिकायतें दर्ज किया करती हैं।

समाज की उन्नति की जड सुखमय, शान्त और संतोषयुक्त गृह ही है और यह तभी हो सकता है जब कि पति-पत्नी एक-दूसरे के अन्दर खो जाने की कोशिश करें। और एक ही नही हर घर मे इसी प्रकार सुखमय दाम्पत्य जीवन बिताने की कोशिश की जाय। एक के ही किये यह नही हो सकता। कहते हैं—

एक बार अकबर ने बावडी खुदवाई। पानी उसमे बिलकुल नहीं था। बीरबल ने उसे सलाह दी कि शहर भर से कह दिया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति रात को इस बावडी मे एक-एक घड़ा दूध डाल जाय। ऐसा ही किया गया। शहर भर मे मुनादी करवा दी गई कि रात को हर एक को इसमे एक घडा दूध छोड देना पडेगा। रात होने पर प्रत्येक ने सोचा कि सब तो दूध डालेंगे ही, यदि मैं चुपके से एक घडा पानी डाल आऊ तो उतने सारे दूध मे क्या मालूम पडेगा ? सब ने इसी प्रकार किया। सुबह देखा गया तो बावड़ा पानी से भरी थी। दूध का तो नाम भी नही था।

इसी प्रकार पति और पत्नी दोनो के सहयोग से घर का सुधार और सभी घरा से समाज का और समाज से देश का सुधार होना निश्चित है। पर समाज के सुधार से यह तात्पर्य हरगिज नहीं है कि स्त्रिया पढ लिखकर एकदम ही अप-टूडेट हो जावें, पुरुषो की गलतिया ढूढ-ढूढ कर अपनी गलतियो को सुधारने की अपेक्षा बदला लेने की भावना लिये हुए बराबरी का दावा करती जाए। नारी घर की देवी है। पुराणादि मे पति को देवता बताया गया है, पर इसका यह मतलब नही कि पत्नी देवी नहीं है। हमारे गृहों मे तो हर बात मे पत्नी का महत्त्व और जिम्मेवारी पति से भी अधिक है क्योंकि स्त्री ने ही पुरुष को जन्म दिया है। अत यह विचार करना कि पुरुप जैसा करते हैं, हम भी वही क्यों न

करें, अनुचित है। यह कोई वजह नहीं कि पुरुष गिर गए हैं तो नारियो को भी गिरते ही जाना चाहिये। नही, बल्कि यह सोचना चाहिए कि स्त्री ही समाज का निर्माण करने वाली है क्योकि वह पुरुष का निर्माण करती है। अत. एक पुरुष के ऊंचे उठने अथवा गिरने से समाज मे जितनी खराबी नहीं आती, उतनी एक स्त्री के गिरने पर आती है। इसलिए आज, जबकि पुरुषों ने अपना पुरातन तेज, गौरव खो दिया है, तब तो नारी का अनिवार्य फर्ज है कि वह अपने जीवन को पवित्र रखते हुए अपने त्याग, सेवा कष्टसहिष्णुता आदि से सच्चे नारीत्व का, सच्चे दाम्पत्य का आदर्श उपस्थित कर अपना, अपने पति का, व आगे चलकर अपनी सन्तान का जीवन उज्ज्वल बनाए।

हिन्दू नारी का सारा जीवन ही कष्टसहिष्णुता से भरा हुआ, त्यागमय और सेवामय होता है। दाम्पत्य जीवन से सेवा बड़ी ऊंची और कल्याणकारी वस्तु है। इससे चाहे दूसरो को पूर्ण खुशी न भी हो पर अपना मन स्वय ही बडा पवित्र और निर्मल हो जाता है। दाम्पत्य जीवन को मधुर और सुखी बनाने के लिये अथक परिश्रम और सेवा की जरूरत पडती है। उसके विना नारी का काम नही चल सकता। और वह भी सिर्फ पति की ही नही अपितु अपने कुटुम्ब की सेवा का भी जबर्दस्त बोझ अकेली नारी के कन्धो पर रहता है। पति के सारे कुटुम्ब से कटी-कटी रहने वाली पत्नी भले वही पति की प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करती रहे लेकिन उसका वह परिश्रम पति के आनन्द को बढ़ा नहीं सकता। धीरे-धीरे वह पत्नी के प्रति उदासीन होता जायगा और सुखमय दाम्पत्य मे भी कलह का अंकुर अपनी जड जमाने मे समर्थ हो जायगा।

अनेको स्त्रियां आजकल इतनी ईर्ष्यालु होती हैं कि अगर घर मे उनका पति कमाऊ होता है तो सास-ससुर देवर-जेठ आदि सभी को दिन-रात व्यग-बाणों से छेदा करती हैं, जिसका फल कभी-कभी तो अत्यन्त ही दु:खदायी हो जाता है और दाम्पत्य सुख को एकदम नष्ट कर देता है। इसलिये जरूरी है कि हर पत्नी को सदा यह ध्यान मे रखना चाहिये कि सास ने मेरे पति के लिये अनेको कष्ट सहे हैं, उसे जन्म दिया है। अतः पति जैसा भी है, जो कुछ भी कमाता है, उसमे सास का सर्व-प्रथम और बडा भारी हिस्सा है। क्योकि पति को अच्छा या बुरा बनाने का श्रेय भी तो सास को ही है, इसलिये प्रत्येक पत्नी को पति के साथ ही सास ससुर एव समस्त कुटुम्बी-जनो को सुख पहुंचाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये, भले ही इसमे स्वय को कुछ कष्ट हो पर उसे अपने कष्ट की परवाह न करके भी और सबको ज्यादा से ज्यादा सुख मिले, मन मे यही भावना हमेशा रखना व इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। दाम्पत्य सुख की यह सबसे बडी और मजबूत कुंजी है।

दाम्पत्य सुख मे सबसे मुख्य बात यही है कि पति का पत्नी मे गहरा स्नेह व पत्नी की पति मे अत्यन्त गहरी श्रद्धा हो। ऐसा अगर नही होगा तो दम्पती को गृहस्थी मे कभी पूर्ण सुख का अनुभव नही हो सकता क्योकि स्त्री के मन के भाव ही उसे सुखमय या दु:खमय बना सकते हैं। नारी जाति अत्यन्त कोमल और भोली होती है। पति का थोडा-सा प्रेम पाने पर ही बहुत अधिक सुख का अनुभव करती है एव थोडा-सा रूखापन पाने पर बहुत अधिक दु:ख का। हालाकि वह यह कहती किसी से नही, मूक रहकर ही सब कुछ सहन करती है, पर फिर भी मन पर तो सब भावनाओ का असर होता है। इसलिये यह जरूरी है कि प्रत्येक बहिन को इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि मन के बांधे हुए हवाई

किले सभी नहीं बने रहते । अत मन मे कल्पना किये हुए पति, घरद्वार सभी कुछ वैसे ही न मिलने पर भी कभी उद्विग्न और निराश न हो ।

दुःख को बहुत कुछ घटाना–बढ़ाना तो मनोभाव पर भी निर्भर है । अत जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मनोनुकूल वातावरण न मिलने पर भी जो कुछ मिले, उसी के सहारे जीवन निर्माण करने की कोशिश करनी चाहिये । सुख की सबसे बडी कुंजी सतोष है । सतोष का फल सदा मीठा होता है यह सत्य है कि अधिक सुख प्राप्त करने का यत्न सभी स्त्रिया करती हैं पर अधिक सुख न मिलने पर भी जो कुछ मिला है, उस पर सतोष करने वाली स्त्री ही सुखी हो सकती है । किसी भी हालत मे हो पर पति के सुख मे सुख मानने वाली व हर अवस्था मे पति का कल्याण चाहने वाली स्त्री ही सच्चे दाम्पत्य सुख का अनुभव कर सकती है व करा सकती है ।

प्राचीन काल का दाम्पत्य सम्बन्ध कैसा आदर्श था ! पत्नी अपने आपको पति में विलीन कर देती थी और पति उसे अपनी अर्धांगना, अपनी शक्ति, अपनी सखी और अपनी हृदय–स्वामिनी समझता था ! एक पति था, दूसरी पत्नी थी, पुरुष स्वामी और स्त्री स्वामिनी थी । एक का दूसरे के प्रति समर्पण का भाव था । वहा अधिकारो की माग नहीं थी, सिर्फ समर्पण था । जहा दो हृदय मिलकर एक हो जाते हैं, वहा एक को हक मागने का और दूसरे को हक देने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। ऐसा आदर्श दाम्पत्य सम्बन्ध किसी समय भारतवर्ष में था । आज विदेशों के अनु–करण पर जहा दाम्पत्य सम्बन्ध नाम मात्र का है—भारत मे भी विकृति आ गई है । नतीजा यह हुआ कि पति–पत्नी का अद्वैत–

भाव नष्ट होता जा रहा है और राजकीय कानूनो के सहारे समा-नाधिकार की स्थापना की जा रही है। आज की पढ़ी-लिखी स्त्री कहती है—

मै अगरेजी पढ़ गई सैया ।
रोटी नहीं पकाऊंगी ।।

शिक्षा का परिणाम यह निकला है। पहले की स्त्रियां प्राय: सब काम अपने हाथो से करती थीं। आजकल सभी काम नौकरो द्वारा कराये जाते हैं। परिणाम यह हुआ कि डाक्टरो की बाढ आ गई और स्त्रियों को डाकिन-भूत लगने लगे। स्त्रियो के निकम्मे रहने के कारण हिस्टीरिया आदि रोग होते हैं और डाकिन भूत के नाम पर लोग ठगाई करते हैं। अगर स्त्री को सही मार्ग पर चलना है तो इन सब बुराइयो को छोडना पडेगा।

कई एक भोली बहिनें हाथ से पीसने मे पाप लगना समझती हैं और दूसरे से पिसवा लेने मे पाप से बच जाने की कल्पना करती है। पीसने मे आरम्भ तो होता ही है लेकिन अपने हाथ से यतना और विवेक से काम किया जाय तो बहुत से निरर्थक पापो से बचाव भी हो सकता है। शक्ति होते हुए दूसरे से काम कराना, एक प्रकार को कायरता है और कहना चाहिए कि अपनी शक्ति का विनाश करना है। इस प्रकार का परावलम्बी जीवन बिताना अपनी शक्ति की घोर अवहेलना करना है —

पग धरिता संतोष ने बरया ने कडा ।
हिया कंठ में खरा हार नोसर्या धरा ।।
लोक दोई ने सुधार वारा चूड़ला करा ।

मान राखणो बड़ा रो सिर बोर गूंथ ला ।।बेना०।।

बुद्धिमती स्त्रिया कहती हैं—जिस प्रकार सीता ने पैर के आभूषण उतार दिये हैं, उसी प्रकार अगर हम भी दिखावे के लिये पैर के गहने उतार दें तो इससे कोई लाभ नही होगा। पैर के आभूषण पैर मे भले ही पडे रहे, मगर एक शिक्षा याद रखनी चाहिए। अगर सीता मे धैर्य और सतोष न होता तो वह वन मे जाने को तैयार न होती। सीता मे कितना धैर्य और कितना सतोष है कि वह वन की विपदाओं की अवगणना करके और राजकीय वैभव को ठुकरा करके पति के पीछे-पीछे चली जा रही है। हमे सीता के चरित्र से इस धैर्य और सतोष की शिक्षा लेनी है। ये गुण न हुए तो आभूषणो को धिक्कार है।

जहां ज्यादा गहने हैं, वहा धैर्य की और सतोष की उतनी ही कमी है। वन-वासिनी भीलनी पीतल के गहने पहनती है और रूखा-सूखा भोजन करती है, फिर भी उसके चेहरे पर जैसी प्रसन्नता और स्वस्थता दिखाई देगी, वडे घर की महिलाओ मे वह शायद ही कही दृष्टिगोचर हो। भीलनी जिस दिन वालक को जन्म देती है, उसी दिन उसे झोंपडी मे रखकर लकडी वेचने चल देती है। यह सब किसका प्रताप है? सतोष और धैर्य की जिन्दगी साक्षात् वरदान है। इसी से दाम्पत्य-सम्बन्ध मधुर वनता है।

❀ ❀ ❀

आपने पत्नी का पाणिग्रहण धर्मपालन के लिए किया है। इसी प्रकार स्त्री ने भी किया है। जो नर या नारी इसी उद्देश्य को भूलकर खान-पान और भोग विलास मे ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं, वे धर्म के पति-पत्नी नहीं वरन् पाप के पति-पत्नी हैं।

आज राग के वश होकर पति-पत्नी न जाने कैसी-कैसी अनीति का पोषण कर रहे हैं ! पर प्राचीन साहित्य देखने से स्पष्ट विदित होता है कि उस समय पति-पत्नी अलग-अलग कमरो मे सोते थे—एक ही जगह नहीं सोते थे । पर आज की स्थिति कितनी दयनीय है! आज अलग-अलग कमरों मे सोना तो दूर रहा अलग-अलग विस्तर पर भी बहुत कम पति-पत्नी सोते हैं । इस कारण विषय-वासना को कितना वेग मिलता है, यह सक्षेप मे नहीं बताया जा सकता । अग्नि पर घी डालने से वह बिना पिघले नही रहता, एक ही शय्या पर शयन करने से अनेक प्रकार की बुराइया उत्पन्न होती हैं । वह बुराइयां इतनी घातक होती हैं कि उनसे न केवल धार्मिक जीवन बिगडता है वरन् व्यावहारिक जीवन भी निकम्मा बन जाता है ।

☸ ☸

लग्न के समय वर-वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं । पति के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् एक सच्ची आर्य महिला अपने प्राणो का उत्सर्ग कर देती है परन्तु की हुई प्रतिज्ञा से विमुख नहीं होती ।

पुरुष भी पत्नी के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं परन्तु जो कर्त्तव्य स्त्री का माना जाता है, वही क्या पुरुष का भी समझा जाता है ?

जैसे सदाचारिणी स्त्री पर-पुरुष को पिता एव भाई के समान मानती है, उसी प्रकार सदाचारशील पुरुष वे ही हैं जो पर-स्त्री को माता-बहिन की दृष्टि से देखते है । 'पर-ती लखि जे धरती निरखें, धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर ते ।'

पति–पत्नी सम्बन्ध की विडम्बना देखकर किसका हृदय आहत नहीं होगा ? जिन्होंने पति और पत्नी बनने का उत्तरदायित्व स्वेच्छा से अपने सिर लिया है, वह भी पति–पत्नी के कर्त्तव्य को न समझें, यह कितने खेद की बात है। पति का कर्त्तव्य पत्नी को स्वादिष्ट भोजन देना, रग–बिरगे कपड़े देकर तितली के समान बना देना या मूल्यवान् आभूषणों से गुडिया के समान सजा देना नहीं है। इसी प्रकार पत्नी का कर्त्तव्य पति को सुस्वादु भोजन बनाकर परोस देने मे समाप्त नहीं होता। वासना की पूर्ति का साधन बनना भी स्त्री का कर्त्तव्य नही है। ऐसे कार्यों के लिए ही दाम्पत्य सम्बन्ध नहीं है। दम्पती का सम्बन्ध एक–दूसरे को सहायता देकर आत्म–कल्याण की साधना मे समर्थ बनने के लिए है। जहा इस उद्देश्य की पूर्ति होती है, वही सात्विक दाम्पत्य समझा जा सकता है।

६

मातृत्व

१–माता की महिमा

किसी मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण जितनी आसानी से तथा सफलतापूर्वक माता कर सकती है, उतना और कोई नही कर सकता। बच्चे के लिये माता की वात्सल्यमयी गोद ही सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षिका है। इसी पवित्र स्नेहधारा से मनुष्य प्रेम तथा मानवता का पहला सबक ग्रहण करता है। कौटुम्बिक वातावरण मे बच्चा प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से अनेक गुण–दोष ग्रहण करता है, जो उसके व्यक्तित्व के निर्माण मे बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। पुराणादि मे बताया गया है कि बच्चा गर्भावस्था से ही माता के रहन-सहन, आचार–विचार, गुण–दोष, खान–पान आदि के प्रभाव को अपनाया करता है और वही आगे जाकर उसके जीवन मे समय–समय पर प्रगट होता है। महाभारत मे अभिमन्यु के लिये बताया गया है कि उसने मा के पेट में रहते हुए ही किसी दिन पिता के द्वारा मा को बताए जाने पर चक्रव्यूह तोड़ने का ज्ञान सीख लिया

था। इससे सिद्ध होता है कि अप्रत्यक्ष रूप से भी माता-पिता के मनोभावो से ही बच्चे के मनोभावो का निर्माण और विकास होता है।

हमारे इतिहास में ऐसे सैकडों उदाहरण अंकित हैं, जिनमें यह बताया है कि अनेक महान् पुरुषो का जीवन-निर्माण उनकी माताओ के द्वारा ही किया गया है। रानी कौशल्या के हृदय की उदारता, वत्सलता, दयालुता रामचन्द्र जी के जीवन में भरी गई। जीजाबाई, जो हिन्दू जाति के गौरव व प्रतिष्ठा के लिये मर-मिटने को निरन्तर तत्पर रहती थी, अपने बेटे शिवाजी के जीवननिर्माण मे साधन हुई। उन्होने बचपन से ही शिवाजी को रामायण महाभारत आदि की कथाएं सुना सुना कर उनके शिशु-हृदय मे ओज और वीरत्व का बिगुल फूंकना शुरु कर दिया था तथा देश और जाति की रक्षा प्राण देकर भी करने की भावना कूट-कूट कर भर दी थी। उसी वीर मा की शिक्षा का फल था कि उसके वीर बेटे शिवा ने हिन्दू साम्राज्य की नींव रखकर हिन्दू जाति का उद्धार किया।

वीर और स्वाभिमानिनी शकुन्तला का पुत्र भरत अपनी मा के हाथो शिक्षा पाकर निशक शेर के मुंह के दात गिनने का शौक करने लगा।

इसी प्रकार महात्मा बुद्ध की भी कथा है। जब वे अपनी मा के गर्भ मे थे, उस समय उनकी मा को बहुत ही वैराग्य उत्पन्न हुआ। ससार के दुःख, दारिद्र्य, रोगादि को देखकर उनके मन मे निरन्तर यह भावना रही कि मेरा पुत्र बडा होकर इस जगत् का दुःख अवश्य दूर करे। इन्हीं भावनाओ मे बुद्ध का जीवननिर्माण हुआ और वे लोक भर में कल्याणकारी सिद्ध हुए।

इसी प्रकार हमारे देश मे ही नहीं, पाश्चात्य देशों में भी अनेक महापुरुषो ने माताओं से ही सबक सीखा है। ईसाई धर्म के प्रणेता ईसा को लीजिये । उनके पूज्य बनने का श्रेय उनकी माता मरियम को ही पूर्ण रूप से है। वह निरन्तर बालक ईसा को धार्मिक शिक्षा दिया करती थी और धार्मिक पुस्तकें पढ-पढ कर उनकी प्रतिभा का विकास किया करती थी । इन बातों से ही उनके चरित्र मे महानता आई और उनकी आत्मा का पौरुष सतत बढ़ता ही गया ।

नैपोलियन बोनापार्ट ने भी अपनी माता के अत्यन्त कठोर शासन मे रहकर अपने जीवन का निर्माण किया । अपनी मा के लिये वे स्वय ही कह गए हैं कि —"मेरी मां एक साथ ही कोमल और कठोर थीं । सभी सतानें उनके लिये समान थीं । कोई बुरा काम करके हम बाद मे कभी उनसे क्षमा नही पा सकते थे । हमारे ऊपर मा की तीक्ष्ण दृष्टि रहा करती थी । नीचता की वे अत्यन्त अवज्ञा करती थी । उनका मन उदार और चरित्र उन्नत था । मिथ्या से उन्हे आन्तरिक घृणा थी । औद्धत्य देखकर उनके नेत्र कठोर हो जाते थे । हमारा एक भी दोष उनकी दृष्टि से छिपना सम्भव नही था ।" इस प्रकार उनकी मा ने अपने पुत्र का चरित्र निर्माण किया और सघर्षों मे कष्ट सहन करने की शक्ति दी।

जार्ज वाशिंगटन ने कहा है—'मेरी विद्या, बुद्धि, धन, वैभव, पद एव सम्मान इन सब का मूल कारण मेरी आदरणीया जननी ही है ।'

मुसोलिनी लिखते हैं —सब सतानों में माता का मुझ पर अधिक स्नेह था । वह जितनी शांत थीं, उतनी ही कोमल और तेजस्विनी थी । वह केवल मेरी मां ही न थी, अध्यापिका भी थी।

मुझे सदा भय रहा करता था कि मेरी मा मुझसे अप्रसन्न न हो। वे मुझसे बडी आशा रखती थीं। वे कहा करती थीं कि 'यह भविष्य मे कोई महान् व्यक्ति होगा। उन्होंने सदा इसका ध्यान रखा कि उनकी सतान निर्भीक, साहसी, दृढ और निश्चयशील वने'। इसी से यह साबित हुआ है कि मुसोलिनी का अपरिमित तेजभरा पौरुष उनकी माता की ही देन थी।

२–माता का दायित्व

आजकल की स्त्रियां इस बात को भूल चली हैं। अपने बच्चे के जीवन-निर्माण में, चरित्र विकास मे, उनका हाथ कितना महत्त्वपूर्ण है, यह वे समझने की कोशिश नही करती हैं। जन्म से ही वे बच्चे को लाड-प्यार करके बिगाड देती हैं और इस प्रकार वे बच्चो के उज्ज्वल जीवन को अन्धकारमय पथ की ओर अग्रसर करने मे सहायक होती हैं। जिन गुणो को मा शुरु से बच्चे के जीवन मे उतारना चाहती है, मां स्वय उन सबका आचरण करे, क्योकि झूठ बोलकर मां बच्चे को सत्यवादिता का पाठ नही पढा सकती। स्वय क्रोध करके बच्चे को शांत रहने की सीख नही दी जा सकती। तात्पर्य यह है कि उज्ज्वल चरित्र वाली माता ही बच्चे को महापुरुष बनाने में समर्थ हो सकती है।

बच्चो के बचपन मे ही सस्कार सुधारने चाहिये। बडे होने पर तो वे अपने आप सब बातें समझने लगेंगे, मगर उनका झुकाव और उनकी प्रवृत्ति बचपन मे पडे हुए सस्कारो के ही अनुसार होगी। बचपन मे जिन बच्चो के सस्कार माता-पिता, विशेष कर माता के द्वारा नहीं सुधरे, उनकी दशा यह है कि वे कोई भी अच्छी बात इस कान से सुनते और उस कान से निकाल देते हैं।

इसके विपरीत, सुसंस्कारी पुरुष जो अच्छी और उपयोगी बात पाते हैं, उसे ग्रहण कर लेते हैं। यह बचपन की शिक्षा का महत्त्व है।

बाल-जीवन को शिक्षित और सुसंस्कृत बनाने के लिये घर ही उपयुक्त शाला है। माता-पिता ही बच्चे के सच्चे शिक्षक हैं। परन्तु माता और पिता सुशिक्षित और सुसस्कृत हों, तभी उनकी प्रजा वैसी बन सकती है। अतएव माता या पिता का पद प्राप्त करने के लिये माता-पिता को शिक्षित और सस्कारी बनना आवश्यक है।

बालक का जीवन अनुकरण से प्रारम्भ होता है। वह बोलते-चालते, खाते-पीते और कोई भी काम करते घर का और विशेषतया माता का ही अनुकरण करता है। क्या बोल-चाल, क्या व्यवहार, क्या मनोवृत्तिया और क्या अन्य प्रवृत्तिया, सब मा की ही नकल होते हैं, जिसके प्रति उसके हृदय मे स्नेह का भाव सहज उपज आता है। अतएव प्रत्येक माता को सोचना चाहिये कि अगर हम बालको को सुसस्कृत, सदाचारी, विनीत और धार्मिक बनाना चाहती हैं तो हमारे घर का वातावरण किस प्रकार होना चाहिये?

जहां माता क्षण-क्षण मे गालिया बड-बडाती हो, पिता माता पर चिढता रहता हो और उद्धततापूर्ण व्यवहार करता हो, वहां बालक से क्या आशा की जा सकती है? हजार यत्न करो, बालक को डराओ, धमकाओ, मारो-पीटो, फिर भी वह सुसस्कारी या विनयी नहीं बन सकता। 'मां सौ शिक्षको का काम देती है' यह कथन जितना सत्य है उतना ही आदरणीय और आचरणीय है।

बालक को डरा धमका-कर या मार-पीटकर अथवा ऐसे

ही किसी हिंसात्मक उपाय का अवलम्बन लेकर नहीं सुधारा जा सकता ।

३–सन्तति-सुधार का उपाय

प्राय देखा जाता है कि जब बालक मचलता है या कहा नही मानता तो सर्वप्रथम मा को उसके प्रति आवेश आ जाता है और आवेश आते ही मुख से गालियो की वर्षा आरम्भ हो जाती है, लात-घूंसे आदि से उस अनजान बालक पर मा हमले किया करती है । कभी-कभी तो इसका परिणाम इतना भयकर होता है कि आजीवन माता-पिता को पछताना पडता है । वास्तव मे यह प्रणाली बच्चो के लिये लाभ के बदले हानि उत्पन्न करती है । इससे बालक गालिया देना सीखता है, और सदा के लिये ढीठ बन जाता है । इस ढिठाई मे से और भी अनेको दुर्गुण फूट पडते हैं । इस प्रकार बालक का सारा जीवन बर्बाद हो जाता है ।

विवेकशील माता भय को प्रणाली का उपयोग नही करती । वह आवेश पर अकुश रखती है । बालक की परिस्थिति को समझने का यत्न करती है तथा उसे सुधारने के लिये घर का वातावरण सुन्दर बनाने की कोशिश करती है । ऐसा करने से माता के जीवन का विकास होता है और बालक के जीवन का भी । वह यह भली-भांति जानती है कि बालक अगर रोता है तो उसका इलाज डराना नही है, रोने के कारण को खोजकर दूर करना है । इसी प्रकार अगर बालक मे कोई दुर्गुण उत्पन्न हो गया है तो उसे वह अपनी किसी कमजोरी का फल समझती है और समझना ही चाहिये कि माता को किसी दुर्बलता के बिना बालक मे कोई भी दुर्गुण क्यो पैदा हो ? इस अवस्था मे माता के लिए उसका वास्तविक कारण

खोज निकालना और दूर करना ही इलाज है। समझदार मा ऐसे अवसर पर धैर्य से काम लेती है।

भय, डराने वाले और डरने वाले के अन्तरंग या बहिरंग पर अनेक प्रकार से आघात करता है। अत यह भय हिंसा का भी रूप है। आत्मा के गुणो का घात करने वाली प्रवृत्ति करना हिंसा है। जो ऐसी प्रवृत्ति करता है वह हिंसक है, यह जैनागम का विधान है।

आजकल हर माता को सद्धर्म की उन्नत भावना की तालीम लेने की आवश्यकता है क्योकि सामाजिक जीवन मे देखा जाता है कि आज के माता-पिताओ के मन काम-वासना से ग्रसित हैं। दोनों के मन क्लेश के रग मे रंगे हुए हैं और बात-बात मे वे अश्लील वाक्प्रहार और समय मिले तो ताड़न-प्रहार करते भी सकोच नही करते। जहा यह स्थिति है वहा भला शिक्षा और सस्कृति का सरक्षण किस प्रकार हो सकता है ?

माता का जीवन जब तक शिक्षित, सस्कृत और आदर्श न बने, तब तक सतान मे सुसस्कारो का सिंचन नही हो सकता। अतएव अपनी सतान की भलाई के लिये माता को अपना जीवन सस्कारमय अवश्य बनाना चाहिये। प्रत्येक मा को यह न भूल जाना चाहिये कि आज का मेरा पुत्र ही भविष्य का भाग्य-विधाता है।

माता, बच्चे या बच्ची का गुड्डे-गुडिया की तरह शृंगार कर और अच्छा भोजन देकर छुट्टी नही पा सकती। उसे यह अच्छी तरह समझना चाहिये कि मैंने जिसे जीवन दिया है, उसके जीवन का निर्माण भी मुझे ही करना है। जीवन-निर्माण का अर्थ

है—संस्कार सम्पन्न वनाना और बालक की विविध शक्तियों का विकास करना। शक्तियो का विकास हो जाने पर वह सन्मार्ग मे लगे, सत्कार्य मे उसका प्रयोग हो, दुरुपयोग न हो, यह सावधानी रखना माता का पूर्ण कर्त्तव्य है।

स्त्रिया जग–जननी की अवतार हैं। स्त्रियों की कूंख से ही महावीर वुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं। पुरुष समाज पर स्त्री–समाज का बड़ा भारी उपकार है। उस उपकार को भूल जाना और उसके प्रति अत्याचार करने मे लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है। समाज का एक अ ग स्त्री और दूसरा अ ग पुरुष है। शरीर का एक हिस्सा भी खराव होने से शरीर दुर्लव हो जाता है, उसी प्रकार समाज भी किसी हिस्से के विकारयुक्त होने से दूषित होने लग जाता है। क्या यह सम्भव है कि किसी का आधा अ ग बलिष्ठ और अ धा निर्वल हो ? जिसका आधा अ ग निर्वल होगा, उसका पूरा अ ग निर्वल होगा।

शरीर मे मस्तिष्क का जो स्थान है, समाज मे शिक्षक का भी वही स्थान है। पर इनमें सवसे ऊचा स्थान वच्चे के जीवन–निर्माण मे माता का है। वच्चे के प्रति मां का जो आकर्षण ममत्व है, वही वच्चे को उचित रूप से जीवन–पथ मे अग्रसर होने का प्रयत्न किया करता है।

४–मातृ–स्नेह की महिमा

माता का हृदय बच्चे से कभी तृप्त नही होता। माता के हृदय मे वहने वाला वात्सल्य का अखण्ड झरना कभी सूख नहीं सकता। वह निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। माता का प्रेम

सदैव अतृप्त रहने के लिये है और उसकी अतृप्ति मे ही शायद जगत् की स्थिति है । जिस दिन मातृ–हृदय सन्तान–प्रेम से तृप्त हो जायगा, उस दिन जगत् मे प्रलय हो जायगा ।

वच्चे के प्रति मा के हृदय मे इतना उत्कट प्रेम होता है कि मनुष्य तो खैर समझदार होता ही है, पर पशु–पक्षी का भी अपने वच्चे के प्रति ममत्व देखकर दग रह जाना पडता है ।

सुवुक्तगीन वादशाह का वृत्तान्त इतिहास मे आया है । वह अफगानिस्तान का वादशाह था । वह एक गुलाम खानदान मे पैदा हुआ था । एक बार वह ईरान से अफगानिस्तान की ओर घोडे पर सवार होकर आ रहा था । मार्ग की थकावट से या किसी अन्य कारण से उसका घोडा मर गया । जो सामान उससे उठ सका, वह तो उसने उठा लिया और वाकी का वहीं छोड दिया । मगर उसे भूख इतनी तेज लगी कि वह अत्यन्त व्याकुल हो गया । इसी समय एक तरफ से हरिनो का एक झुड आ निकला और उसने दौडकर उसमे से एक वच्चे की टाग पकड ली । झुड के और हरिन–हरिनिया तो भाग गए पर उस वच्चे की माता वही ठिठक गई और अपने वच्चे को दूसरे के हाथ मे पकडा देखकर आंसू वहाने लगी । अपने वालक के लिये उसका दिल कटने लगा ।

वच्चे को लेकर सुवुक्तगीन एक पेड के नीचे पहुचा और उसे भून कर खाने का विचार करने लगा । उसने रूमाल से वच्चे की टागें वाघ दी ताकि वह भाग न जाए । उसके वाद वह कुछ दूर जाकर एक पत्थर से अपनी छुरी पैनी करने लगा । इतने मे मृगी वच्चे के पास जा पहुची और वात्सल्यवश वच्चे को चाटने लगी, रोने लगी और अपना स्तन वच्चे की ओर करने लगी । वच्चा

बेचारा बंधा हुआ तडफ रहा था। वह अपनी माता से मिलने और उसका दूध पीने के लिये कितना विकल था, यह कौन जान सकता है ? मगर वह विवश था। टांगें बंधी होने के कारण वह खडा भी नही हो सकता था। अपने बच्चे की यह हालत देखकर मृगी की क्या हालत हुई होगी, यह कल्पना करना भी कठिन है। माता का भावुक हृदय ही मृगी की अवस्था का अनुमान कर सकता है। मगर वह लाचार थी। वह आंसू बहा रही थी और इधर-उधर देखती जाती थी कि कोई किसी ओर से आकर मेरे बच्चे को बचा ले।

इतने मे ही छुरी पैनी करके सुबुक्तगीन लौट आया। बच्चे की मा हरिनी यहा भी इसके पास आ पहुची है। यह देखकर उसको आश्चर्य हुआ। उसने हरिनी के चेहरे पर गहरे विषाद की परछाई देखी और नेत्रो मे बहते हुए आसू देखे। यह देखकर उसका हृदय भी भर आया। वह व्याकुल होकर सोचने लगा कि मेरे लिए तो यह बच्चा दाल-रोटी के बराबर है, पर इस मा के हृदय मे इसके प्रति कितना गहरा प्रेम है! इसका हृदय इस समय कितना तडफ रहा होगा ? अपना खाना-पीना छोडकर अपने प्राणो की भी परवाह न करके हरिणी यहा तक भाग आई है। धिक्कार है, मेरे ऐसे खाने को, जिससे दूसरे को घोर व्यथा पहुच रही है। अब मैं चाहे भूख का मारा मर ही जाऊ पर अपनी मा के इस दुलारे को हर्गिज नही खाऊंगा।

आखिर उसने बच्चे को छोड दिया। बच्चा अपनी मा से और माता अपने बच्चे से मिलकर उछलने लगे। यह स्वर्गीय दृश्य देखकर सुबुक्तगीन की प्रसन्नता का पार न रहा। इस प्रसन्नता मे वह खाना-पीना भी भूल गया। आज उसकी समझ मे आया और

उसे विश्वास हो गया कि मां के प्रेम से बढ़कर विश्व में कोई दूसरी चीज नही।

मातृ-प्रेम के समान ससार मे और कोई प्रेम नही। मातृ-प्रेम संसार की सर्वोत्तम विभूति है, संसार का अमृत है, अतएव जब तक पुत्र गृहस्थ-जीवन से पृथक् होकर साधु नही बना है, माता तब तक उसके लिए देवता है।

मातृ-हृदय की दुनिया में सभी ने प्रशंसा की है। आज के वैज्ञानिको का भी यही कहना है कि माता मे हृदय का बल होता है। इसी वल के कारण वह सन्तान का पालन करती है और सतान के लिए कष्ट उठाती है। यदि माता मे हृदय-बल न होता तो वह स्वय कष्ट सह करके सन्तान का पालन क्यो करती ? कहा जा सकता है कि माता भविष्य सम्बन्धी आशाओ से प्रेरित होकर सन्तान का पालन करती है। इसके उत्तर मे यही कहा जायगा कि पशु-पक्षियो को अपनी सन्तान से क्या आशा रहती है ? पक्षी के बच्चे बडे होकर उड जाते हैं। वे न पिता को पहचानते हैं और न माता को ही। फिर पक्षी अपनी सन्तान का पालन क्यों करते हैं ? उन्हे किसी प्रकार की आशा नही रहती फिर भी वे अपनी सन्तान का उसी प्रेम के साथ पालन करते हैं। इसका एक मात्र कारण हृदयवल ही है। इस प्रकार मातृ-हृदय ससार की अनूठी सम्पदा है, अनमोल निधि है। यही कारण है, दुनिया में मातृ-हृदय की सभी ने प्रशसा की है।

इस प्रकार माता अपने उत्कट हृदय-वल से संतान का पालन करती है, लेकिन आजकल के लोग उस हृदय-वल को भूल कर मस्तिष्क के विचारो से अधीन हो जाते हैं और पत्नी के गुलाम वन कर माता की उपेक्षा करते हैं। यह कृतघ्नता नहीं तो क्या है ?

ससार में प्रत्येक प्राणी को सोचना चाहिए कि मेरी माता ने मुझे हृदय-बल से ही पाला है। माता मे हृदय-बल न होता, करुणा न होती तो वह मेरा पालन क्यो करती ? हृदय-बल के प्रताप से ही वह मेरा रोना सुनकर पालने के पास दौडी आती थी और सब काम छोडकर पहले मेरी फरियाद सुनती थी।

माता अपने पुत्र को कभी थप्पड भी मार देती है पर उसका हृदय तो पुत्र के कल्याण की कामना से सदैव परिपूर्ण ही रहता है और इसी से फिर वह उसे पुचकार भी लेती है। माता को थप्पड भी मारनी पडती है और पुचकारना भी पडता है, लेकिन जो भी वह करती है हृदय की प्रेरणा से। उसके हृदय मे बालक की एकान्त कल्याण-कामना निरन्तर वतमान रहती है।

५-मातृ-भक्ति

हृदय-बल न होने अथवा हृदय-बल पर मस्तिष्क-बल की विजय होने पर ही माता का अपमान किया जाता है और पत्नी की अधीनता स्वीकार की जाती है। यद्यपि ससार मे ऐसे-ऐसे नर-वीर भी हुए हैं, जिन्होने माता के लिये सब कुछ, यहा तक कि पत्नी को भी त्याग दिया है। लेकिन ऐसे लोग भी कम नहीं हैं, जो स्त्री को प्रसन्न करने के लिये माता का अपमान करने से नही चूकते।

हृदय-बल के बिना जगत् का काम क्षण भर भी नहीं चलता। माता मे हृदय-बल न होता तो मस्तिष्क-बल वाले व्यक्ति का जन्म ही कैसे होता ? उसका पालन-पोषण कौन करता ? अत-एव स्पष्ट है कि मस्तिष्क-बल की अपेक्षा हृदय-बल की ही अधिक

उसे विश्वास हो गया कि मां के प्रेम से बढ़कर विश्व मे कोई दूसरी चीज नही ।

मातृ-प्रेम के समान ससार मे और कोई प्रेम नही । मातृ-प्रेम ससार की सर्वोत्तम विभूति है, संसार का अमृत है, अतएव जब तक पुत्र गृहस्थ-जीवन से पृथक् होकर साधु नही बना है, माता तव तक उसके लिए देवता है ।

मातृ-हृदय की दुनिया में सभी ने प्रशंसा की है। आज के वैज्ञानिको का भी यही कहना है कि माता मे हृदय का बल होता है । इसी बल के कारण वह सन्तान का पालन करती है और सतान के लिए कष्ट उठाती है । यदि माता मे हृदय-बल न होता तो वह स्वय कष्ट सह करके सन्तान का पालन क्यो करती ? कहा जा सकता है कि माता भविष्य सम्बन्धी आशाओ से प्रेरित होकर सन्तान का पालन करती है । इसके उत्तर मे यही कहा जायगा कि पशु-पक्षियो को अपनी सन्तान से क्या आशा रहती है ? पक्षी के वच्चे वडे होकर उड जाते हैं। वे न पिता को पहचानते हैं और न माता को ही । फिर पक्षी अपनी सन्तान का पालन क्यों करते हैं ? उन्हें किसी प्रकार की आशा नही रहती फिर भी वे अपनी सन्तान का उसी प्रेम के साथ पालन करते हैं । इसका एक मात्र कारण हृदयवल ही है । इस प्रकार मातृ-हृदय ससार की अनूठी सम्पदा है, अनमोल निधि है। यही कारण है, दुनिया मे मातृ-हृदय की सभी ने प्रशसा की है ।

इस प्रकार माता अपने उत्कट हृदय-वल से संतान का पालन करती है, लेकिन आजकल के लोग उस हृदय-वल को भूल कर मस्तिष्क के विचारो के अधीन हो जाते हैं और पत्नी के गुलाम वन कर माता की उपेक्षा करते हैं । यह कृतघ्नता नहीं तो क्या है ?

ससार में प्रत्येक प्राणी को सोचना चाहिए कि मेरी माता ने मुझे हृदय-बल से ही पाला है। माता मे हृदय-बल न होता, करुणा न होती तो वह मेरा पालन क्यो करती ? हृदय-बल के प्रताप से ही वह मेरा रोना सुनकर पालने के पास दौडी आती थी और सब काम छोडकर पहले मेरी फरियाद सुनती थी।

माता अपने पुत्र को कभी थप्पड भी मार देती है पर उसका हृदय तो पुत्र के कल्याण की कामना से सदैव परिपूर्ण ही रहता है और इसी से फिर वह उसे पुचकार भी लेती है। माता को थप्पड भी मारनी पडती है और पुचकारना भी पडता है, लेकिन जो भी वह करती है हृदय की प्रेरणा से। उसके हृदय मे बालक की एकान्त कल्याण-कामना निरन्तर वर्तमान रहती है।

५-मातृ-भक्ति

हृदय-बल न होने अथवा हृदय-बल पर मस्तिष्क-बल की विजय होने पर ही माता का अपमान किया जाता है और पत्नी की अधीनता स्वीकार की जाती है। यद्यपि ससार मे ऐसे-ऐसे नर-वीर भी हुए हैं, जिन्होने माता के लिये सब कुछ, यहा तक कि पत्नी को भी त्याग दिया है। लेकिन ऐसे लोग भी कम नहीं हैं, जो स्त्री को प्रसन्न करने के लिये माता का अपमान करने से नहीं चूकते।

हृदय-बल के बिना जगत् का काम क्षण भर भी नहीं चलता। माता मे हृदय-बल न होता तो मस्तिष्क-बल वाले व्यक्ति का जन्म ही कैसे होता ? उसका पालन-पोषण कौन करता ? अतएव स्पष्ट है कि मस्तिष्क-बल की अपेक्षा हृदय-बल की ही अधिक

आवश्यकता है । और आवश्यकता ही नही, पर यह कहना भी अनुचित नही कि मस्तिष्क के बल को हृदय-बल के अधीन ही रहना चाहिये । जैसे माता अपने पुत्र को अपने अधीन रखकर उसकी उन्नति करती है, उसी प्रकार मस्तिष्क-बल को हृदय-बल के अधीन रखकर विकसित करना चाहिये । माता यह कदापि नही चाहती कि मेरे पुत्र की उन्नति न हो । वह उन्नति चाहती है और इसीलिये शिक्षा दिलवाती है मगर रखना चाहती है अपनी अधीनता मे । वह अपने बालक का निरकुश होना पसद नही करती । यह बात अलग है कि आज की शिक्षा का ढग बदला हुआ है और माताए भी इसी ढग से प्रभावित होकर ऐसी ही शिक्षा दिलवाती है । लेकिन जो कुछ भी वे करती हैं, पुत्र की हितकामना से प्रेरित होकर ही ।

पर आज का ससार मस्तिष्क-बल से हृदय-बल को दबाता चला जा रहा है । यह अनुचित है । जैसे अपनी माता को अपनी पत्नी के पैरो पर गिरने को बाध्य करना उचित नही है, उसी प्रकार जिस हृदय-बल से आपका जन्म हुआ, उस हृदय-बल को कुचलना नीचता है ।

अपनी माता को भूलकर पत्नी का गुलाम बन जाना, ज्ञान की निशानी नही है । जिस माता ने पुत्र का पालन-पोषण किया है, उसी की उपेक्षा करना क्या पुत्र को उचित है ?

कल्पना करो कि एक आदमी किसी श्रीमत की लडकी को ब्याह कर लाया, लडकी छबिली है, बनी-ठनी है और आजकल की फैशन के अनुसार रहती है । दूसरी ओर उस पुरुष की माता है, जो पुराने विचारों की है । अब वह पुरुष किसके अधीन होकर रहना चाहेगा ? वास्तव मे उसे माता के अधीन रहना चाहिये ।

उचित तो यही है पर देखा जाता है कि इसके विपरीत पुरुष पत्नी के अधीन हो जाता है। वह यह नहीं सोचता कि ससुर ने मेरी श्रीमताई देखकर अपनी लडकी दी है पर माता ने क्या देखकर मेरा पालन-पोषण किया है ? माता ने केवल हृदय की प्रेरणा से ही तो मेरा पालन किया है ? उसने और कुछ नही देखा। हार्दिक विचारो से प्रेरित होकर ही माता ने मेरे लिये कष्ट उठाये हैं और उस हृदय को भूल जाना या उपेक्षा करना कृतघ्नता है। मगर ऐसा विचार कितनो का होता है ? ससार मे आज पत्नी के अधीन होकर माता की उपेक्षा करने वाले ही अधिक होगे।

माता का स्थान अनोखा होता है। माता पुत्र को जन्म देती है। माता से ही पुत्र को शरीर मिलता है। सतान पर माता का असीम ऋण है। उस ऋण को चुकाना अत्यन्त कठिन है। मगर क्या आजकल सतान यह समझती है ? आज तो कोई-कोई सपूत ऐसे होते हैं कि नीति की सीख देने के कारण भी अपनी माता का सिर फोडने को तैयार हो जाते हैं। औरतो की बातो मे आकर पत्नी का अपमान कर बैठते हैं। पर पुराना आदर्श क्या ऐसा था? राम का आदर्श भारत को क्या शिक्षा देता है ? राम सोचा करते थे कि मा अगर आशीर्वाद दे देगी कि जाओ, जगल मे रहो तो मैं जगल मे भी आनन्द से रहूगा। ऐसा अद्‌भुत और आदर्श चरित्र भारत को छोडकर कहा मिल सकता है ? नैपोलियन के लिये कहा जाता है कि वह माता का बडा भक्त था। वह कहा करता था— तराजू के एक पलडे में सारे ससार का प्रेम रखू और दूसरे पलडे मे मातृ-प्रेम रखू तो मेरा मातृ-प्रेम ही भारी ठहरेगा।

मातृ-भक्ति का अनुपम उदाहरण मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र ने उपस्थित किया था। कैकेयी ने राजा दशरथ से अपने दो

वरदानों से रामचन्द्र के लिए चौदह वर्ष का वनवास और अपने पुत्र भरत के लिये राज्य-सिहासन की माग की । यद्यपि राम को वनवास देना अनुचित एवं अन्यायपूर्ण था, फिर भी वनवास के कठोर दुखो और यातनाओ की चिन्ता न करते हुए रामचन्द्र माता की आज्ञा शिरोधार्य कर वन जाने को उद्यत हो गए। उनकी माता कौशल्या के दुख की सीमा न रही । उन्हे स्वप्न मे भी यह आशा न थी कि कैकेयी वरदान मे इस प्रकार की याचना कर बैठेगी । वे मातृ-स्नेहवश विकल हो उठी और मूर्च्छित होकर गिर पडी । अत्यन्त स्नेह से इतने वर्षों तक पालन-पोषण करने वाली माता को यकायक इतना बडा वियोग बिलकुल असह्य-सा प्रतीत हुआ । वे अपने पुत्र को क्षण मात्र के लिए भी आखो से ओझल नहीं देखना चाहती थी । वे सर्वदा उसे अपने नयनो मे रखकर अपने हृदय को शीतल एव आह्लादमय बनाना चाहती थी । प्रतिक्षण उनके मन मे रामचन्द्र की सुन्दर व सजीव मूर्ति व्याप्त रहती थी। क्षण भर भी उन्हे देखकर वे स्वर्गीय सुख का अनुभव करती थी । पुत्र के बिना उनके लिए कुवेर की समस्त धन-सम्पत्ति भी तुच्छ थी। मातृत्व स्नेह को ऐश्वर्य के पलडे मे तो किसी भी तरह नही तोला जा सकता ।

कौशल्या यह सोच-सोच कर अत्यन्त विकल हो रही थी कि मैं इसका वियोग कैसे सह सकूंगी ? प्राण (राम) चले जाने पर यह निष्प्राण शरीर कैसे रहेगा ?

इस प्रकार के विचारो से व्यथित कौशल्या मूर्च्छित हो गई । राम आदि ने शीतोपचार करके उन्हे सचेष्ट किया। सचेष्ट होकर आसू बहाती हुई कौशल्या फिर प्रलाप करने लगी—हाय, मैं जीवित क्यो रही ? पुत्र-वियोग का यह दारुण दुख सहने की

अपेक्षा मर जाना ही मेरे लिए अच्छा था। मर जाती तो वियोग की ज्वालाओ से तिल-तिल करके जलने से तो बच जाती ! मेरा हृदय कैसा वज्र-कठोर है कि पुत्र वन को जा रहा है और मैं जी रही हू ।

कौशल्या की मार्मिक व्यथा का प्रभाव राम पर पडे बिना न रहा । वे स्वय व्यथित हो उठे और सोचने लगे-अयोध्या की महा-रानी, प्रतापी दशरथ की पत्नी और राम की माता होकर भी इन्हें कितनी वेदना है ! मेरी माता इतनी शोकातुरा ! मगर इनमे इतना मोह क्यो है ? वे माता का मोह और सताप मिटाने के लिए वचन-रूपी शीतल जल छिडकने लगे । कहने लगे माता, अभी आप धर्म की बात कहती थीं और पिताजी के वरदान को उचित बतलाती थी और अभी-अभी आपकी यह दशा ! बुद्धिमती और ज्ञानशीला नारी की यह दशा नही होनी चाहिए । यह कायर स्त्रियो को शोभा देता है-राम की माता को नहीं । इतनी कायरता देखकर मेरा भी चित्त विह्वल हो रहा है । जिस माता से मेरा जन्म हुआ, उसे इस तरह की कायरता शोभा नही देती । आप मेरे लिये दुःख मना रही हैं और मैं स्वेच्छापूर्वक वन जा रहा हू ! आपको इतना शोक क्यो है ?

सिहनी एक ही पुत्र जनती है मगर ऐसा जनती है कि उसे किसी भी समय उसके लिये चिन्ता नहीं करनी पडती । सिहनी गुफा मे रहती है और उसका बच्चा जगल मे फिरता रहता है । क्या वह उसके लिये चिन्ता करती है ? वह जानती है कि उसका बच्चा अपनी रक्षा अपने आप कर लेगा । माता ! जब सिहनी अपने बच्चे की चिन्ता नही करती तो आप मेरी चिन्ता क्यो करती हैं ? आपकी चिन्ता से तो यह आशय निकलता है कि राम कायर

है और आप कायर की जननी हैं। आप मेरे वन जाने से घबराती हैं पर वन मे जाने से ही मेरी महिमा बढ सकती है । फिर मैं सदा के लिये नही जा रहा हू, कभी न कभी लौट कर आपके दर्शन करूंगा ही । आप मुझे जगत् का कल्याणकारी समझती हैं, मगर आपकी कायरता से तो उलटी ही बात सिद्ध होती है। इस प्रकार अनेको तरह से मातृ-भक्त रामचन्द्र जी ने माता को समझाया कि कहीं दु ख से अत्यधिक विकल होकर माता वचन–भग न करे और मैं माता की आज्ञा न मानने वाला कलंकी सिद्ध होऊं ।

इसी प्रकार जब लक्ष्मण भी रामचन्द्र जी के साथ वन जाने को तैयार हो गए, तब उनकी माता सुमित्रा पुत्र-प्रेम के वशीभूत होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठी। जैसे कुल्हाडी से काटने पर कल्प-लता गिर जाती है, उसी प्रकार वह भी मूर्छित होकर गिर पडी । लक्ष्मण यह देख बड़ी चिन्ता मे पड गए। वे सोचने लगे, कहीं स्नेह के वश होकर माता मुझे मनाई न करदे ! लेकिन होश मे आकर सुमित्रा सोचने लगी–हाय, मेरी बहिन कैकेयी ने भी यह कैसा वर मागा कि राम जैसे आदर्श पुत्र को वन जाना पड रहा है। उसने सब किये–कराए पर पानी फेर दिया । समस्त अवधवासियो की आशा मिट्टी मे मिल गई। हाय राम ! तुम क्यो सकट मे पड गए ! मगर नही, यह मेरी परीक्षा का अवसर है, पुत्र को कर्त्तव्यपथ से च्युत करने वाली मां कैसी ? मा का मातृत्व इसी मे है कि वह पुत्र को निरन्तर उचित मार्ग की ओर अग्रसर करे। स्नेह से विह्वल होकर उचित मार्ग पर जाते हुए पुत्र को लौटा कर कर्त्तव्य–भ्रष्ट करना मातृत्व को लज्जित करना है । मैं गौरवमयी मा हू। सारा विश्व मेरे पुत्र की जगह है। मैं जग–जननी हूं ।

मातृत्व के गौरव की आभा से दीप्त सुमित्रा ने अपना

जाती हू । मैं उसी स्त्री को पुत्रवती समझती हूं, जिसका पुत्र सेवा-भावी, त्यागी, परोपकारी, न्याय-धर्म से युक्त और सदाचारी हो। जिसके पुत्र मे ये गुण नही, उस स्त्री का पुत्र को जन्म देना ही वृथा है ।

पुत्र सभी स्त्रिया चाहती हैं, पर पुत्र कैसा होना चाहिये, यह बात कोई बिरली ही समझती है । कहावत है—

जननी जने तो ऐसा जन, कै दाता कै सूर ।
नीतर रहजे बांझड़ी, मती गमाजे नूर ।।

अर्थात्—मां, अगर पुत्र पैदा करना है तो ऐसा करना कि या तो वह दानी हो और या शूरवीर हो । नही तो बांझ भले ही रहना पर अपनी शक्ति को कलकित नही करना ।

बहिनें पुत्र तो चाहती हैं पर यह जानना नहीं चाहती कि पुत्र कैसा होना चाहिए ? पुत्र उत्पन्न हो जाने पर उसे सुसस्कारी बनाने की कितनी जिम्मेवारी आ जाती है, इस बात पर ध्यान न देने से उनका पुत्र उत्पन्न करना व्यर्थ हो जाता है ।

सुमित्रा फिर कहती है—लक्ष्मण ! तेरा भाग्योदय करने के लिये ही राम वन मे जा रहे हैं। वह अयोध्या मे रहते तो उनकी सेवा करने वालो की कमी नही रहती । वन मे की जाने वाली सेवा, तेरी सेवा—मूल्यवान् सिद्ध होगी । सेवक की परीक्षा सकट के समय पर ही होती है । राम वन न जाते तो तुम्हारी परीक्षा कैसे होती ?

धन्य है सुमित्रा ! उसके हृदय मे पुत्र-वियोग की व्यथा

कितनी गहरी होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन है। लेकिन उसने धैर्य नही छोडा। वह लक्ष्मण से कहने लगी—वत्स! राग, द्वेष और मोह त्याग करके वन मे राम और सीता की सेवा करना। राम के साथ रहकर सब विकार तज देना। जब राम और सीता तेरे साथ हैं तो वन तुझे कष्टदायक नही हो सकता। हे वत्स! मेरा आशीर्वाद है कि तुम दोनो भाई सूर्य और चन्द्र की भाति जगत् का अन्धकार मिटाओ, प्रकाश फैलाओ, तुम्हारी कीर्ति अमर हो।

रामचन्द्र जी के वनवास के लिये प्रस्थान कर देने पर तो अवधनिवासी बहुत ही व्याकुल हुए। वे तो चाहते थे कि राम राज्य-सिंहासन को सुशोभित करें। अत उन्हे लौटाने के लिये फिर सब लोग वन को गए। साथ मे कैकेयी भी स्वय वहा पहुची और उन्हे लौटाने का प्रयत्न करने लगी। यद्यपि वह विमाता थी, लेकिन यह बात नही थी कि वह कौशल्या, सुमित्रा आदि से द्वेष रखती थी तथा राम-लक्ष्मण आदि से प्रेम नही करती थी। कैकेयी के चरित्र से यह स्पष्ट था कि उसके हृदय मे किसी भी प्रकार की मलिनता नही थी। वह भी उतनी ही दयार्द्र तथा कोमल स्वभाव वाली थी, जितनी कि कौशल्या व सुमित्रा। तीनो सहोदरो की भाति एक-दूसरे से प्रेम करती थी। उनके चारो पुत्रो मे भी किसी प्रकार का भेद-भाव न था। सुमित्रा लक्ष्मण को भी उतना ही प्रेम करती थी, जितना राम को। कौशल्या और कैकेयी ने भरत और राम से अपने पुत्रो की ही भाति स्नेह किया था। कैकेयी को किन्हीं विशेष परिस्थितियो तथा कुछ गलतफहमियो से दो वर-दान मागने पडे। उसका पूर्व-चरित्र कदापि इतना दूषित नही था। राम के चले जाने पर उसे बहुत ही दुःख हुआ। अपने किये पर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसके सहज स्नेह और वात्सल्य पर एक

प्रकार की कुबुद्धि का जो वातावरण पड गया था, वह हट कर निर्मल स्नेह–रस मे परिणत हो गया, क्योकि आखिर मातृप्रेम ही तो ठहरा । कुछ समय के लिये चाहे माता बच्चे को यातनाएं तथा ताडनाए भी दे, पर उसका प्रेम तो कही नहीं जा सकता। वह तो हृदय की एक सदैव स्थित रहने वाली बहुमूल्य वस्तु है, जो माता से कभी पृथक् नही की जा सकती । कंकेयी के हृदय से पुत्रप्रेम फूट–फूट कर बह निकला । वह राम को अयोध्या लौट चलने के लिए आग्रह करने लगी । राम के हृदय मे तो माताओ के प्रति कोई भेद–भाव था ही नही, वे जरा भी भिन्नता का अनु–भव नहीं करते थे ।

महारानी कंकेयी ने अत्यन्त सरल हृदय से पश्चात्ताप किया। वह बोली—'वत्स ! जो कुछ होना था, सा हो चुका । मुझे कलक लगना था सो लग गया । अब इस स्थिति का अन्त लाना तुम्हारे हाथ है । मेरा कलक कम करना हो तो मेरी बात मान कर अयोध्या चलो । तुमने मुझे बहिन कौशल्या के ही समान समझा है तो मेरी बात अवश्य मान लो । मैं अब तक भरत को ही अपना सबसे अधिक प्रिय समझती थी । मोहवश मैं मानती थी कि भरत ही मेरा पुत्र है और वही मुझे सबसे अधिक प्रिय होना चाहिए । अपने प्रिय के लिए सब कुछ किया जाता है । इसीलिए मैंने सोचा कि अगर मैंने भरत के लिये वरदान मे राज्य न मागा तो फिर वर मागना ही किस काम का ? लेकिन भरत ने मेरी भूल सुधार दी है । भरत ने मुझे सिखा दिया है कि 'अगर मै तुम्हे प्रिय हू तो राम मुझे प्रिय हैं । तू मेरे प्रिय से छुडा कर मुझे सुखी कैसे कर सकती है ? यह राज्य तो राम के सामने नगण्य है । मुझ से राम को दूर करना तो मेरे साथ शत्रुता करना है । राज्य मुझे प्यारा नही है, मुझे तो राम प्यारे हैं ।' इस प्रकार भरत के समझाने से मैं समझ

गई हूं कि अपने प्रिय राम के बिछुड जाने से भरत निष्प्राण-सा हो रहा है। राम, तुम मेरे प्रिय के प्रिय हो तो मेरे लिए तो दुगुने प्रिय हो। अब तुम मुझे छोडकर अलग नहीं रह सकते। यह निश्चय है कि तुम्हारे रहते ही भरत मेरा रह सकता है। तुम्हारे न रहने पर भरत भी मेरा नही रह सकता।'

कैकेयी कहती है—'राम! मैं नही जानती थी कि भरत मेरा नहीं, राम का है। अगर मैं जानती कि मैं राम की रहूं तभी भरत मेरा है, नही तो भरत भी मेरा नही है, तो मैं तुम्हारा राज्य छीनने का प्रयत्न ही न करती। मुझे क्या पता था कि भरत राम को छोडने वाली माता को छोड देगा।'

अगर आपके माता-पिता परमात्मा का परित्याग कर दें और ऐसी स्थिति हो कि आपको माता-पिता या परमात्मा मे से किसी एक को ही चुनना पडे तो आप किसे चुनेंगे ? माता-पिता का परित्याग करेंगे या परमात्मा का ? परमात्मा को त्यागने वाला चाहे कोई भी क्यों न हो, उसका त्याग किये बिना कल्याण नही हो सकता।

कैकेयी फिर कहने लगी—'मुझे पहले मालूम नहीं था कि तुम भरत को अपने से भी पहिले मानते हो। काश! मैं पहले समझ गई होती कि तुम भरत का कष्ट मिटाने के लिये इतना महान् कष्ट उठा सकते हो। ऐसा न होता तो तुम्हारा राज्य छीनने की हिम्मत किसमे होती ? खास तौर पर जब लक्ष्मण भी तुम्हारे साथ थे। तुमने महाराज के सामने भरत को और अपने आपको बाईं और दाईं आंख बताया था। यह सचाई अब मैं भली-भांति समझ रही हूं। मैं अब जान गई कि तुम भरत को प्राणों से भी ज्यादा प्यार करते हो।'

कैकेयी कहती गई—'वत्स ! तुम्हारे राज्य-त्याग से सूर्यवंश के एक नररत्न की परीक्षा हुई है । तुम्हारे वन आने पर लक्ष्मण ने भी सब सुखो का त्याग करके वन आना पसद किया । भरत ने राजा होकर भी क्षण भर भी शांति नही पाई । शत्रुघ्न भी बेहद दुःखी हो रहा है । चारो भाइयो मे से एक भी अपना स्वार्थ नही देखता है । सभी एक-दूसरे को सुखी करने के लिये अधिक से अधिक त्याग करने के लिये तैयार हैं । सब का सब पर अपार स्नेह है । तुम्हारा यह भ्रातृप्रेम मेरे कारण ही प्रकट हुआ है । इस दृष्टिकोण से मेरा पाप भी पुण्य-सा हो गया है और मुझे सतोष दे रहा है । भले ही मैंने अप्रशस्त कार्य किया है किन्तु फल उसका यह हुआ कि चिरकाल तक लोग भ्रातृप्रेम के लिए तुम लोगो का स्मरण करेंगे । कीचड-कीचड ही है पर कमल उत्पन्न होने से कीचड की भी शोभा बढ़ जाती है । मेरा अनुचित कृत्य भी इस प्रकार अच्छा हो गया । मैं अच्छी हू या बुरी, जैसी भी हू, सो हू । मगर तुम्हारा अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध है । मेरी लाज आज तुम्हारे हाथ मे है । अयोध्या लौटने पर ही उसकी रक्षा होगी, अन्यथा मेरे नाम पर जो धिक्कार दिया जा रहा है, वह बद न होगा ।'

कैकेयी मे अपनी भूल सुधारने का साहस था । इसी कारण उसने बिगडी बात बना ली । वह कहने लगी—'राम, मैं तर्क नहीं जानती । मुझे वाद-विवाद करना नही आता । मैं राजनीति से अनभिज्ञ हू । मेरे पास सिर्फ अधीर हृदय है । अधीर हृदय लेकर मैं तुम्हारे पास आई हू । मैं माता हू और तुम मेरे पुत्र हो, फिर भी प्रार्थना करती हू कि अब अयोध्या लौट चलो । 'गई सो गई अब राख रही को ।' बीती बात को बार-बार याद करके वर्तमान की रक्षा न करना अच्छा नही है ।

हे राम ! इस परिवर्तनशील ससार मे एक-सा कौन रहता

है ? सूर्य भी प्रतिदिन तीन अवस्थाएं धारण करता है। इसी प्रकार सभी कुछ बदलता रहता है। तो फिर तुम्हारी इस स्थिति मे परिवर्तन क्यो नही होगा ? मेरे भाग्य ने मेरे साथ छल किया था, इससे मुझे अपयश मिला, लेकिन मेरा भाग्य अब बदल गया है और इसी कारण मुझे अपनी भूल मालूम पडी है। अब मैं पहले वाली कैकेयी नही हू। पुत्र ! मैं तुम्हारे निहोरे करती हू कि अब तुम अयोध्या वापिस लौट चलो।

रामचन्द्र जी अभी तक माता की बातें सुन रहे थे। अब उन्होने नम्रतापूर्वक मुस्कराते हुए कहा—'माताजी, बचपन से ही आपका मातृस्नेह मुझ पर रहा है और अब भी यह वैसा ही है। आप माता हैं, मैं आपका पुत्र हूं। माता को पुत्र के आगे इतना अधीर नही होना चाहिए। आपने ऐसा किया ही क्या है, जिसके लिए इतना खेद और पश्चात्ताप करना पडे ? राज्य कोई बडी चीज नही है और वह भी मेरे भाई के लिए ही आपने मागा था, किसी गैर के लिए नही। जब मैं और भरत दो नही हैं, तब तो यह प्रश्न ही नही उठता कि कौन राजा है और कौन नहीं ? इतनी साधारण-सी बात को इतना अधिक महत्त्व मिल गया है। आप चिन्ता न करें। मेरे मन मे तनिक भी मैल नही है। भरत ने एक जिम्मेदारी लेकर मुझे दूसरा काम करने के लिए स्वतन्त्र कर दिया है।'

'माताजी ! जहा मा-बेटे का सम्बन्ध हो, वहा इतनी लम्बी बात-चीत की आवश्यकता ही नही है। आपके सम्पूर्ण कथन का सार यही है कि मैं अवध को लौट चलू लेकिन यह कहना माता के लिए उचित नही है। आप शात और स्थिर चित्त हो विचार करें कि ऐसी आज्ञा देना क्या उचित होगा ? आपकी आज्ञा मुझे

सदैव शिरोधार्य है । माता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का कर्त्तव्य है लेकिन माता ! तुम्ही ने तो मुझे पाल-पोसकर एक विशिष्ट साचे मे ढाला है । मुझे इस योग्य बनाया है । इसलिये मैं तो आपकी आज्ञा का पालन करूंगा ही, मगर निवेदन यही है कि आप उस साचे को न भूलें, जिसमे आपने मुझे ढाला है । मेरे लिए एक ओर आप हैं और दूसरी ओर सारा ससार है । सारे संसार की उपेक्षा करके भी मैं आपकी आज्ञा मानना उचित समझूंगा ।'

'माताजी, आपका आदेश मेरे लिए सबसे बडा है और उसकी अवहेलना करना बहुत बडा पाप होगा लेकिन यह बात आप स्वयं सोच लें कि आपका आदेश कैसा होना चाहिए ? आप मुझसे अवध चलने को कहती हैं, यह तो आप अपनी आज्ञा की अवहेलना कर रही हैं । मैंने आपको आज्ञा पालन करने के लिये ही वनवास स्वीकार किया है । क्या अब आपकी ही आज्ञा की अवहेलना करना उचित होगा ? ऐसे साचे मे आपने मुझे ढाला ही नहीं है । रघुवंश की महारानिया एक वार जो आज्ञा देती हैं, फिर उसका कदापि उल्लघन नही करतीं ।'

आप कह सकती हैं कि क्या मेरा और भरत का यहां आना असफल हुआ ? लेकिन यह बात नही है । आपका आगमन सफल हुआ है । यहा आने पर ही आपको मालूम हुआ होगा कि आपका आदेश मेरे सिर पर है । पहले आप सोचती होंगी कि वन मे राम आदि दुखी हैं । क्या आपको हम तीनो के चेहरे पर कही दुख की रेखा भी दिखाई पडती है ? हमने ससार को यह दिखा दिया कि सुख अपने मन मे है, कही बाहर से नही आता ।'

'माता ! आपने यहा आकर देख लिया कि राम, लक्ष्मण

और जानकी दुःखी नही हैं, वरन् सन्तुष्ट और सुखी हैं। अगर अब भी आपको विश्वास न हो तो हम फिर भी कभी विश्वास दिला देंगे कि हम प्रत्येक परिस्थिति में आनन्दमय ही रहते हैं, कभी दुखी नहीं होते। सूर्यकुल मे जन्म लेने वालो की प्रतिज्ञा होती है कि वे प्राण जाते समय भी आनन्द मानें, लेकिन वचन-भग होते समय प्राण जाने की अपेक्षा अधिक दुख मानें। पिताजी ने भी यही कहा था, ऐसी दशा में आप अयोध्या से चलकर मेरे प्रण को भग करेंगी और मुझे दुख मे डालेंगी ? अगर आप सूर्यकुल की परम्परा को कायम रहने देना चाहती हैं और मेरे प्रण को भग नही होने देना चाहती तो अयोध्या लौटने का आग्रह न करें। साथ ही साथ आत्म-ग्लानि की भावना का भी परित्याग कर दें। मैं स्वेच्छा से ही वनवास कर रहा हू। इसमे आपका कोई दोष नही है। विशेषत इस दशा मे जबकि आप स्वय आकर अयोध्या लौट चलने का आग्रह कर रही हैं तो उसमे आपका दोष कैसे हो सकता है ?

माताजी! मैंने जो कुछ भी कहा है, स्वच्छ अत करण से ही कहा है। आप उस पर विश्वास कीजिये। आप मेरी गौरव-मयी मां हैं, ऐसा मन मे विचार कर प्रसन्नतापूर्वक मुझे वनवास का आदेश दीजिये।

इस प्रकार मातृप्रेम व वात्सल्य का उदाहरण कैकेयी ने उपस्थित कर भारतीय नारियों के लिए एक आदर्श स्थापित किया। विमाता होते हुए भी उसके हृदय मे स्नेह की धाराए सदा प्रवाहित होती थी। किन्ही परिस्थितियों मे या अज्ञानतावश चाहे कुछ समय के लिए माता बच्चे पर नाराज भी हो उठे, पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह उससे स्नेह नहीं करती। बाल्यकाल मे माताओ के उन्हीं सस्कारो का ही तो परिणाम था, जिनके कारण राम के

ऐसे आदर्श व्यक्तित्व और चरित्र की नींव पडी । अगर माताएं योग्य न होती, अशिक्षित, असम्कृत और मूर्ख होती तो उनसे क्या आशा की जा सकती थी कि वे रामचन्द्र जैसे पुत्र-रत्न को पैदा करती ? तीनो माताएं सगी माताओ से किसी प्रकार कम न थी, अत. तीनो के सत्सस्कार चारो पुत्रो पर अंकित थे ।

नाना यातनाएं सहकर भी रामचन्द्र ने विश्व को बता दिया कि जब तक माता-पिता खाने-पीने को दें, अच्छा पहनने-ओढ़ने को दें, खूब सुखपूर्वक रखें, तब तक उनकी सेवा करने मे कोई विशेषता नही है । विशेषता तो तब है, जब माता-पिता द्वारा सभी कुछ छीन लेने पर भी पुत्र उनकी उसी प्रकार सेवा करे, जैसी पहिले करता था । इस प्रकार सेवा करने वाला पुत्र वास्तव मे सच्चा पुत्र है और भाग्यशाली है ।

६-माता का उपकार

मा बच्चे को जन्म देती है । नौ महीने उदर मे रखे हुए नाना तकलीफो का सामना करती है । पैदा होने के बाद तो उसके सकटो की गिनती ही नही रहती । फिर भी वह हसती-हसती पुत्र का मुह देखकर सब कुछ सहन करती है । माता का पुत्र पर असीम उपकार है । माता बालक को जन्म देती है, अतएव कहा जा सकता है कि यह शरीर माता ने दिया है लेकिन बहुत से लोग माता-पिता के महान् उपकारो का विस्मरण करके पीछे से आई हुई स्त्री के मनोहारी हावभाव से मुग्ध होकर उसकी सम्मोहिनी माया के जाल मे फसकर, माता-पिता के शत्रु बन जाते हैं और स्त्री की उगली के इशारे पर नाचते हैं । वह जिस प्रकार नचाती है, पुरुष बन्दर की तरह उसी प्रकार नाचता है । कई लोग

तो माता-पिता को इतनी पीडा देते हैं कि सुनकर हृदय मर्माहत हो उठता है । उन्हे अपशब्द सुनाने, मार-पीट करने तक की घट-नाएं घटती हैं । ये सब बातें मनुष्य की कितने दर्जे की कृतघ्नता सूचित करती हैं !

जिस माता ने अपने यौवन के सौन्दर्य की परवाह न करके, अपने हृदय के रस से—दूध से बालक के प्राणो की रक्षा की, जिसके उदर मे रहने पर उसकी रक्षा के लिये सयम से रही, प्रसव के पश्चात् जिसने सब प्रकार की घृणा को ममता के ऊपर न्योछा-वर कर दिया, जो बालक पर अपना सर्वस्व निछावर करने को उद्यत रही, जिसकी बदौलत पुत्र, पत्नी पाने योग्य बना, जिसने अपने पुत्र और पुत्र-वधू से अनेकानेक मसूबे बाधे, उसी माता की वृद्धा-वस्था में जब दयनीय दशा होती है और वह भी अपने पुत्र के हाथ से, तब उस पूत को क्या कहा जा सकता है ?

इस प्रश्न का उत्तर मिलना आज कठिन है । पुरुषो ने स्त्रियो की जो अवहेलना की है, उस अवहेलना की छाया मे इस प्रश्न का उत्तर सूझना आज कठिन है ।

अगर तटस्थता से विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि महिलावर्ग के प्रति कितना अन्याय किया जा रहा है । पुरुषो ने स्त्री-समाज को ऐसी परिस्थिति मे रखा है, जिमसे वे निरी बेवकूफ रहना ही अपना कर्त्तव्य समझें । कई पुरुष तो स्त्रियो को पैर की जूती तक कह देने का साहस कर डालते हैं लेकिन तीर्थंकर की माता को प्रणाम करके इन्द्र क्या बता गया है, इस पर विचार करो । इस पर भी विचार करो कि इन्द्र ने तीर्थंकर की माता को प्रणाम क्यो किया और तीर्थंकर के पिता को प्रणाम क्यो नही किया ?

इन्द्र कहता है—'हे रत्नकुक्षि-धारिणी ! हे जगत्विख्याता ! हे महामहिमा-मडिता माता ! आप धन्य हैं। आपने धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले और भव-सागर से पार उतारने वाले, ससार मे सुख एव शाति की सस्थापना करने वाले त्रिलोकीनाथ को जन्म दिया है। अम्बे ! आप कृतपुण्या और सुलक्षणा हैं। आपने जगत् को पावन किया है।'

अब बताइये माता का पक्ष बडा होता है या पिता का ? इन्द्र पिता को सिर नही झुकाता, इसका क्या कारण है ? देवों का राजा इन्द्र मनुष्यो मे से ससारत्यागियो को छोडकर अगर किसी को नमस्कार करता है, तो तीर्थंकर भगवान् की माता को ही। और किसी के सामने इन्द्र का मस्तक नही झुकता।

इन्द्र ने महारानी त्रिशला को नमस्कार किया सो क्या भूल की थी ? या सिद्धार्थ महाराज रानी त्रिशला की अपेक्षा किसी बात मे कम थे ? महारानी त्रिशला को इन्द्र ने प्रणाम किया। इसका कारण यह है कि भगवान् महावीर माता के ही निकट हैं। भगवान् को बडा बताना और भगवान् जिनके प्रति अति सन्निकट हैं, उन्हे बडा न बताना, यह उनका अपमान है।

आजकल चक्कर उलटा चल रहा है। लोग पूजा-पाठ, जप-तप आदि मे इन्द्र की स्थापना करते हैं, बुलाते हैं, उसे चाहते है पर इन्द्र भी जिसको प्रणाम करता है, ऐसी माता को नही चाहते। पर माता कितनी स्नेहमयी होती है ! वह पुत्र के सिवाय इन्द्र को भी नही चाहती। इन्द्र भगवान् की माता के पास प्रणाम करने जाता है पर भगवान् की माता क्या उससे किसी प्रकार की याचना करती हैं ? इन्द्र, माता को नमस्कार करता है पर माता इन्द्र को न चाहकर तीर्थंकर को ही चाहती है। ऐसी माता के

ऋण से क्या कोई उऋण हो सकता है ?

ठाणांग सूत्र मे वर्णन आता है कि गौतम-स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा, "भगवन्, अगर पुत्र माता-पिता को नहलाये, वस्त्राभूषण पहनावे, भोजन आदि सब प्रकार से सुख देवे और उन्हें कन्धे पर उठाकर फिरे तो क्या वह माता-पिता के ऋण से उऋण हो सकता है ? भगवान् ने उत्तर दिया—

नायमट्ठे समट्ठे ।

अर्थात् ऐसा होना सम्भव नही । इतना करके भी पुत्र माता के ऋण से उऋण नही हो सकता ।

इसका आशय यही है कि वास्तव मे इतना करने पर भी माता के उपकार का बदला नहीं चुक सकता । कल्पना कीजिये, किसी आदमी पर करोडों का ऋण है । ऋण मागने वाला ऋणी के घर गया । ऋणी ने उसका आदर-सत्कार किया और हाथ जोड-कर कहा-'मैं आपका ऋणी हू और ऋण को अवश्य चुकाऊ गा ।' अब आप कहिये कि आदर-सत्कार करने और हाथ जोडने से ही क्या वह ऋणी ऋणरहित हो गया ?

राजा बाग तैयार करवाए और किसी माली को सौंप दे । माली बाग मे से दस-बीस फल लाकर राजा को सौप दे तो क्या वह राजा के ऋण से मुक्त हो जाएगा ?

नहीं !

इसी प्रकार यह शरीर रूपी बगीचा माता-पिता के द्वारा बनाया गया है । उनके बनाए शरीर से ही उनकी सेवा की तो

क्या विशेषता हो गई ? यह शरीर तो उन्ही का था। फिर शरीर से सेवा करके पुत्र उनके उपकार से मुक्त किस प्रकार हो सकता है ?

एक माता ने अपने कलियुगी पुत्र से कहा—मैंने तुझे जन्म दिया है, पाल-पोसकर बडा किया है; जरा इस बात पर विचार तो कर बेटा।

बेटा नई रोशनी का था। उसने कहा—फिजूल बडबड मत कर। तू जन्म देने वाली है कौन ? मैं नही था, तब तू रोती थी, बाझ कहलाती थी। मैंने जन्म लिया, तब तेरे यहा बाजे बजे और मेरी बदौलत ससार मे पूछ होने लगी। नही तो बाझ समझकर कोई तेरा मुह देखना भी पसन्द नही करता था। फिर मेरे इस कोमल शरीर को तूने अपना खिलौना बनाया, इससे अपना मनोरंजन किया, लाड-प्यार करके आनन्द उठाया। इस पर भी उपकार जतलाती हो ?

माता ने कहा—मैंने तुझे पेट मे रखा सो ?

बेटा—तुमने जान बूझकर पेट मे थोडे ही रखा था। तुम अपने सुख के लिये प्रयत्न करती थी। इसमे तुम्हारा उपकार ही क्या है ? फिर भी अगर उपकार जतलाती हो तो पेट का किराया ले लो।

यह आज की सभ्यता है। भारतीय सस्कृति आज पश्चिमी सभ्यता का शिकार बनी जा रही है और भारतीय जनता अपनी पूजी को नष्ट कर रही है।

माता ने कहा—कोठरी की तरह तू मेरे पेट का भाड़ा देने को तैयार है, पर मैंने तुझे अपना दूध भी तो पिलाया है।

बेटा—हम दूध न पीते तो तू मर जाती। तेरे स्तन फटने लगते। अनेक बीमारिया हो जाती। मैंने दूध पीकर तुझे जिन्दा रखा है।

माता ने सोचा—यह बिगडैल बेटा ऐसे नहीं मानेगा। तब उसने कहा—अच्छा चल गुरुजी से इसका फैसला करा लें। अगर गुरुजी कहेंगे कि पुत्र पर माता-पिता का उपकार नही है तो मैं अब से कुछ भी नहीं कहूंगी। मैं माता हूं। मेरा उपकार मान या न मान, मैं तेरी सेवा से मुंह नही मोड सकूंगी।

माता की बात सुनकर लडके ने सोचा—शास्त्रवेत्ता तो कहते हैं कि मनुष्य कर्म से जन्म लेता है और पुण्य से पलता है। इसके अतिरिक्त गुरुजी माता-पिता की सेवा करने को एकात पाप भी कहते हैं। फिर चलने मे हर्ज ही क्या है ?

यह सोचकर लडके ने गुरुजी से फैसला कराना स्वीकार कर लिया। वह गुरुजी के पास चला गया।

दोनो माता-पुत्र गुरु के पास पहुंचे। वहा माता ने पूछा—महाराज, शास्त्र में कहीं माता-पिता के उपकार का भी हिसाब बतलाया है या नहीं ? गुरु ने कहा—जिसमे माता पिता के उपकार का वर्णन न हो, वह शास्त्र, शास्त्र ही नहीं। वेद मे माता-पिता के सम्बन्ध मे कहा है।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।

ठाणांग सूत्र मे भी ऐसी ही बात कही गई है।

गुरु की बात सुनकर मा ने पूछा—माता-पिता का उपकार

पुत्र पर है या पुत्र का उपकार माता-पिता पर है ?

गुरु ने ठाणांग सूत्र निकाल कर बतलाया और कहा—बेटा अपने माता-पिता के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता, चाहे वह कितनी ही सेवा करे ।

गुरु की बात सुनकर पुत्र अपनी माता से कहने लगा—देखलो, शास्त्र मे भी यही लिखा है न कि सेवा करके पुत्र, माता-पिता के उपकार से मुक्त नही होता ! फिर सेवा करने से क्या लाभ है ?

पुत्र ने जो निष्कर्ष निकाला, उसे सुनकर गुरु बोले—मूर्ख, माता का उपकार अनन्त है और पुत्र की सेवा परिमित है । इस कारण वह उपकार से मुक्त नही हो सकता । पावनेदार जब कर्ज-दार के घर तकाजा करने जाता है, तब उसका सत्कार करना तो शिष्टाचार मात्र है । उस सत्कार से ऋण नही पट सकता । इसी प्रकार माता-पिता की सेवा करना शिष्टाचार मात्र है । इतना करने से पुत्र उनके उपकारो से मुक्त नही हो सकता । पर इससे यह मतलब नही निकलता कि माता-पिता की सेवा नहीं करनी चाहिये । अपने धर्म का विचार करके पुत्र को माता-पिता की सेवा करनी ही चाहिये । माता-पिता ने अपने धर्म का विचार करके तेरा पालन-पोषण किया है । नही तो क्या ऐसे माता-पिता नही मिलते, जो अपनी संतान के प्राण ले लेते हैं ?

गुरु की बात सुनकर माता को कुछ जोर बंधा । उसने कहा-अब सुनले कि मेरा तुझ पर उपकार है या नही ? इसके बाद उसने गुरुजी से कहा—महाराज, यह मुझसे कहता है कि तूने पेट मे रखा है तो उसका भाड़ा ले ले । इस विषय मे शास्त्र क्या कहता है ?

प्रश्न सुनकर गुरुजी ने शास्त्र निकालकर बताया । उसमे लिखा था कि गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् ने उत्तर दिया कि इस शरीर मे तीन अंग माता के, तीन अंग पिता के और शेष अंग दोनों के हैं । मास, रक्त और मस्तक माता के हैं । हाड, मज्जा और रोम पिता के हैं । शेष भाग माता और पिता दोनो के सम्मिलित हैं ।

माता ने कहा—बेटा! तेरे शरीर का रक्त और मास मेरा है । हमारी चीजें हमे दे दे और इतने दिन इनसे काम लेने का भाड़ा भी चुकता कर दे ।

यह सब सुनकर बेटे की आंख खुली । उसे माता और पिता के उपकारों का ख्याल आया तो उनके प्रति प्रबल भक्ति हुई । वह पश्चात्ताप करके कहने लगा—मैं कुचाल चल रहा था । कुसगति के कारण मेरी बुद्धि मलिन हो गई थी । इसके बाद वह गुरुजी के चरणो मे गिर पडा और कहने लगा—माता-पिता का उपकार तो मैं समझ गया पर उस उपकार को समझाने वाले का उपकार समझ सकना कठिन है । आपके अनुग्रह से मैं माता-पिता का उपकार समझ सका हू ।

कहने का आशय यही है कि मातृत्व को समझने के लिये सर्वप्रथम माता-पिता के प्रति श्रद्धा की भावना लाओ ।

भले ही पुत्र कितना भी पढा-लिखा क्यो न हो, बुद्धि-वैभव कितना ही विशाल क्यो न हो, समाज मे कितनी ही प्रतिष्ठा क्यो न हो, फिर भी माता के समक्ष विनम्रता धारण करना पुत्र का कर्त्तव्य है । अगर पुत्र विनीत है तो उसके सद्गुणो का विकास ही होगा । प्रतिष्ठा में वृद्धि ही होगी । ह्रास होने की तो कोई

सम्भावना ही नहीं की जा सकती। पुत्र अगर माता-पिता का आदर करेगा तो लोग भी उसका आदर करेंगे।

जो अविनीत है, जो माता-पिता की अवज्ञा करता है और जो माता पिता की इच्छा के विरुद्ध चलता है, वह कुल के लिये अंगार है। इसीलिये वह अविनीत कहलाता है।

७-संस्कारों का आरोपण

अविनय, अशिक्षा आदि दुर्गुणों को दूर करने का प्रयत्न सर्वप्रथम बाल्यावस्था मे ही माता के द्वारा किया जाना चाहिये। बचपन के सस्कार जीवन भर के लिये होते हैं। माता के सभी अच्छे या बुरे सस्कार बच्चे पर पड़े बिना नही रहते। माता अगर चाहे तो अपने सद्‌गुणो द्वारा बच्चे को गुणवान् बना सकती है।

ज्ञानियों का कथन है कि बालक का जितना सुधार बचपन मे होता है, उतना और कभी नही होता। मान लीजिये किसी वृक्ष का अंकुर अभी छोटा है। वह फल-फूल नही देता। उस अंकुर से लाभ तो फल-फूल आने पर होगा, लेकिन फल-फूल आदि की समस्त शक्तिया उस अंकुर मे उस समय भी अव्यक्त रूप मे मौजूद रहती हैं। अंकुर अगर जल जाय तो फल-फूल आने की कोई क्रिया नही होती।

इसी प्रकार बालक मे मनुष्य की सब शक्तिया छिपी हुई हैं। योग्य दिशा मे उसका विकास होने पर समय पाकर उसकी शक्तिया खिल उठती हैं। मगर बालक को पालने मे डालकर दबा रखने से उसका विकास नही होता। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक जगह लिखा

है कि "पाच वर्ष तक के बालक को सिले कपड़े पहनाने की आवश्यकता नही है। इस अवस्था मे बालक को कपड़ो से लाद लेने का परिणाम वही होता है, जो अंकुर को ढांक देने से होता है। बालक कपड़ा पहनने से दबा रहता है। प्रकृति ने उसे ऐसी संज्ञा दी है कि कपड़ा उसे सुहाता नही और जबर्दस्ती करने पर वह रोने लगता है। लेकिन उसके रोने को मां-बाप उसी तरह नहीं सुनते जैसे भारतीयो के रोने को अंग्रेज नही सुनते थे। माताएं अपने मनोरंजन के लिये या बड़प्पन दिखाने के लिये बच्चे को कपड़ो में जकड़ देती हैं और इतने से संतुष्ट न होकर हाथ-पैरो मे गहनो की बेड़िया भी डाल देती है। पैरो में बूट पहना देती हैं। इस प्रकार जैसे उगते हुए अंकुर को ढक कर उसका सत्यानाश किया जाता है, उसी प्रकार बालक के शरीर को ढक कर, जकड़ कर उसका विकास रोक दिया जाता है। अशिक्षित स्त्रियां बालक के लिये गहने न मिलने पर रोने लगती हैं, जबकि उन्हे अपना और बच्चे का सौभाग्य मानना चाहिए।"

बच्चों के बचपन में ही संस्कार सुधारने चाहियें। बड़े होने पर तो वे अपने आप सब बातें समझने लगेंगे। मगर उनका झुकाव और उनकी प्रवृत्ति बचपन में पड़े संस्कारों के अनुसार ही होगी।

आजकल बहुत कम माताएं बच्चों को बचपन मे दी जाने वाली शिक्षा के महत्त्व को समझती हैं और अधिकांश माता-पिता शिक्षा को आजीविका का मददगार समझकर, धनोपार्जन का साधन मान कर ही बच्चो को शिक्षा दिलाते हैं। इसी कारण वे शिक्षा के विषय मे भी कंजूसी करते हैं। लोग छोटे बच्चो के लिये कम वेतन वाले छोटे अध्यापक नियत करते हैं किन्तु यह बहुत बड़ी भूल है। छोटे बच्चो मे अच्छे संस्कार डालने के लिये वयस्क

अनुभवी अध्यापक की आवश्यकता होती है ।

एक यूरोपियन ने अपनी लडकी को शिक्षा देने के विदुषी महिला नियुक्त की । । उनसे एक सज्जन ने पूछा-लडकी तो बहुत छोटी है और प्रारम्भिक पढाई चल रही लिये इतनी बडी विदुषी की क्या आवश्यकता है ? उस ने उत्तर दिया—'आप इसका रहस्य नही समझ सकते बच्चो मे जितने जल्दी सस्कार डाले जा सकते हैं, बडो मे यह बालिका अच्छा शिक्षण पाने से थोडे ही दिनो मे बन जाएगी ।'

प्राचीनकाल के शिक्षक विद्यार्थियो को यह समझाते माता-पिता का क्या दर्जा है और उनके प्रति पुत्र का क्या है ? आज भी यह बात सिखाने की नितात आवश्यकता है

बालक को सस्कार-सम्पन्न बनाने का उत्तरदायित्व, कि पहले कहा गया है, शिक्षको पर तो है ही, मगर पिता विशेषकर ही नही परन्तु अनिवार्य रूप से माता पर है । मात सहयोग के बिना शिक्षक अपने प्रयत्न मे पूरी तरह सफल हो सकता ।

जो यह कहा गया है कि सन्तान तो पशु भी उत्पन्न क है, ठीक ही है । इसमे मनुष्य की कोई विशेषता नही । मनु की विशेषता सन्तान का समुचित रूप से पालन-पोषण करके सु स्कारी बनाने मे है ।

शिक्षा के साथ बालक के माता-पिता का सहयोग निता जरूरी है । मान लीजिये, शिक्षक पाठशाला मे बालक को सत्य बोल की सीख देता है और स्वय भी सत्य बोलकर उसके सामने आदा

उपस्थित करता है, मगर बालक जब घर पर आता है और अपनी माता को एक पैसे के लिये झूठ बोलते देखता है तो पाठशाला का उपदेश समाप्त हो जाता है। ऐसी परिस्थिति मे वह किसका अनुकरण करे ? शिक्षक का या माता का ? शिक्षक ने ही तो बालक को मा के प्रति भक्ति-भाव रखने का उपदेश दिया है। उस उपदेश के अनुसार भी वह माता के असत्य से घृणा नही कर सकता। बहुत सूक्ष्म विचार करने की उसमे बुद्धि ही कहा है ? बालक के सामने जब इस प्रकार की गडबड उपस्थित हो जाती है, इस प्रकार की विरोधी परिस्थितिया उत्पन्न होती हैं तो वह अपने आप ही मार्ग निकाल लेता है। वह सोचता है—कहना तो यही चाहिये कि असत्य मत बोलो, सत्य भाषण ही करो, मगर काम पडने पर मा की तरह असत्य का प्रयोग करना चाहिये। ऐसा ही कुछ निर्णय करके बालक या तो ढोंगी बन जाता है या असत्यवादी, किन्तु सत्य का उपदेशक बन जाता है। इस प्रकार का विरोधी वातावरण बालको के सुधार मे बहुत बाधक है।

अतएव आज घर मे और पाठशाला मे जो महान् अन्तर है उसे मिटाना पड़ेगा। प्रत्येक घर पाठशाला का पूरक हो और पाठशाला घर की पूर्ति करे, तभी दोनों मिलकर बालको के सुधार का महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेंगे।

माता-पिता सन्तान उत्पन्न करके छुटकारा नही पा जाते, किन्तु सन्तान उत्पन्न होने के साथ ही साथ उनका उत्तरदायित्व प्रारम्भ होता है। शिक्षक को सुपुर्द करने से उनका कार्य पूरा नही होता। उन्हें बालक के जीवन-निर्माण के लिये स्वय अपने जीवन को आदर्शमय बनाना चाहिये, क्योंकि सस्कार-सुधार की बहुत बडी जिम्मेदारी जो उन पर है। बच्चे को संस्कारी बनाने मे ही मा

का असली मातृत्व है ।

प्राचीनकाल के माता-पिता बीस-बीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहकर सन्तान उत्पन्न करते थे । इस प्रकार संयमपूर्वक रह कर उत्पन्न की हुई सन्तान ही महापुरुष बन सकती है । आजकल के लोग समझते हैं, हनुमान का नाम जप लेने से ही शारीरिक शक्ति बढ जाती है । उन्हे यह नही मालूम कि हनुमान के समान वीर-पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुआ था ? मनमुटाव हो जाने के कारण अंजना और पवनकुमार दोनो बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे थे । तभी ऐसी वीर सन्तति उत्पन्न हुई थी । अच्छी और सदाचारी सन्तान उत्पन्न करने के लिये पहले माता-पिता को अच्छा और सदाचारी बनना चाहिये । बबूल के पेड मे आम नहीं लगता ।

माता अपने बालक को जैसा चाहे बना सकती है । माता चाहे तो अपने पुत्र को वीर भी बना सकती है और चाहे तो कायर भी बना सकती है । साधारणतया सिंह का बालक सिंह ही बनता सकता है और सूअर का बालक सूअर ही बनता है । उनमे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता परन्तु मनुष्य को इच्छानुसार वीर या कायर बनाया जा सकता है ।

एक बार एक क्षत्रिय ने दूसरे क्षत्रिय को जान से मार डाला । मृत क्षत्रिय की पत्नी उस समय गर्भवती थी । वह क्षत्रिय-पत्नी विचार करने लगी—मेरे पति मे थोडी-बहुत कायरता थी, तभी तो उनकी अकाल-मृत्यु हुई । वे वीर होते तो अकाल मे मृत्यु न होती । क्षत्रिय-पत्नी की इस वीर भावना का उसके गर्भस्थ शिशु पर प्रभाव पडा और आगे जाकर वह पुत्र वीर क्षत्रिय बना ।

क्षत्रिय-पत्नी ने अपने बालक को वीरोचित शिक्षा देकर वीर

क्षत्रिय बनाया। क्षत्रिय-पुत्र वीर होने के कारण राजा का कृपा-पात्र बन गया।

एक दिन राजा ने क्षत्रिय-पुत्र की वीरता की परीक्षा लेने का विचार किया। राजा ने सोचा—शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये क्षत्रिय-पुत्र को भेजने से एक पथ दो काज होगे। एक तो शत्रु वश मे आ जायगा, दूसरे क्षत्रिय-पुत्र की परीक्षा भी हो जाएगी।

इस प्रकार विचार कर राजा ने क्षत्रिय-पुत्र को शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये सेना के साथ भेज दिया। क्षत्रिय-पुत्र वीर था। वह तैयार होकर शत्रु को जीतने के लिये चल दिया। उसने शत्रु की सेना को अपनी वीरता का परिचय दिया, परास्त किया और शत्रु राजा को जीवित कैद करके राजा के सामने उपस्थित किया। राजा क्षत्रिय-पुत्र का पराक्रम देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उचित पुरस्कार देकर उसका सत्कार किया। सारे गाव मे क्षत्रिय-पुत्र की वीरता की प्रशसा होने लगी। जनता ने भी उसका सम्मान किया। क्षत्रिय-पुत्र प्रसन्न होता हुआ अपने घर जाने के लिये निकला। रास्ते मे वह विचार करने लगा—आज मेरी मा मेरी पराक्रम-गाथा सुनकर बहुत प्रसन्न होगी। घर पहुच कर वह सीधा माता को प्रणाम करने व आशीर्वाद लेने गया। पर जब वह माता के पास पहुचा तो उसने देखा—माता रुष्ट हैं और पीठ देकर बैठी है। माता को रुष्ट व क्रुद्ध देखकर वह विचार करने लगा—मुझसे ऐसा कौनसा अपराध बन गया है कि माता क्रुद्ध और रुष्ट हुई है।

आजकल का पुत्र होता तो मनचाही सुना देता, परन्तु उस क्षत्रिय-पुत्र को तो पहले से ही वीरोचित शिक्षा दी गई थी —

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

अर्थात्—माता देव तुल्य है, पिता देव तुल्य है और आचार्य देव तुल्य है। अतएव माता–पिता और आचार्य की आज्ञा की अवज्ञा नही करनी चाहिये।

यह सुशिक्षा मिलने के कारण क्षत्रिय–पुत्र ने नम्रतापूर्वक माता से कहा—मा, मुझसे ऐसा क्या अपराध बन गया है कि आप मुझ पर इतनी क्रुद्ध हैं? मेरा अपराध मुझे बताइये, जिससे मैं उसके लिये क्षमायाचना कर सकू?

माता बोली—जिसका पितृहन्ता मौजूद है, उसने दूसरे शत्रु को जीता भी तो क्या?

क्षत्रिय-पुत्र ने चकित होकर कहा—क्या मेरे पिता का घात करने वाला मौजूद है?

माता—हा, वह अभी जीवित है।

क्षत्रिय-पुत्र—ऐसा है तो अभी तक मुझे बताया क्यो नही, मा?

माता—मैं तेरे पराक्रम की जाच कर रही थी। अब मुझे विश्वास हो गया कि तू वीर–पुत्र है। जब तू दूसरे शत्रु को परास्त कर चुका है तो अब अपने पिता का घात करने वाले शत्रु को भी अवश्य पराजित कर सकेगा। तेरा सामर्थ्य देखे विना शत्रु के साथ भिड जाने को कैसे कहती?

क्षत्रिय–पुत्र माता का कथन सुनकर उत्तेजित होकर कहने लगा—मैं अभी शत्रु को पराजित करने जाता हूं। अपने पिता के

वैर का बदला लिये बिना हर्गिज नहीं लौटू गा। इतना कहकर वह उसी समय चल दिया।

दूसरी ओर क्षत्रिय-पुत्र के पिता की हत्या करने वाले क्षत्रिय ने सुना कि जिसे मैंने मार डाला, उसका पुत्र क्रुद्ध होकर अपने पिता का वैर भंजाने के लिये मेरे साथ लडाई करने आ रहा है तो यह सुनकर उस क्षत्रिय ने विचार किया—वह बडा वीर है और उसकी शरण मे जाना ही हितकर है। इसी मे मेरा कल्याण है। इस तरह विचार करके वह स्वय जाकर क्षत्रिय-पुत्र के अधीन हो गया। क्षत्रिय-पुत्र उस पितृ-घातक शत्रु को लेकर माता के पास आया। उसने माता से कहा—इसी क्षत्रिय ने मेरे पिता की हत्या की है। इसे पकड़ कर तुम्हारे पास ले आया हू। अब तुम जो कहो, वही दण्ड इसे दिया जाय।

माता ने अपने पुत्र से कहा—इसी से पूछ देख कि इसके अपराध का इसे क्या दण्ड मिलना चाहिये ?

पुत्र ने शत्रु से पूछा—बोलो, अपने पिता का बदला तुमसे किस प्रकार लूं ?

शत्रु ने उत्तर दिया—तुम अपने पिता के वैर का बदला उसी प्रकार लो, जिस प्रकार शरण मे आए हुए मनुष्य से लिया जाता है।

क्षत्रिय-पुत्र की माता सच्ची मा और क्षत्रियाणी थी। उसका हृदय तुच्छ नहीं, विशाल था। माता ने पुत्र से कहा—बेटा! अब इसे शत्रु नहीं, भाई समझ। जब यह शरण मे आ गया है तो शरणागत से बदला लेना सर्वथा अनुचित है। शरण मे आया

हुआ कितना ही बडा अपराधी क्यो न हो, फिर भी भाई के समान है । अतएव यह तेरा शत्रु नही, भाई है । मैं अभी भोजन बनाती हूं । तुम दोनो साथ-साथ बैठकर आनन्द से जीमो और प्रेमपूर्वक रहो । मैं यही देखना चाहती हूं ।

माता का कथन सुन कर पुत्र ने कहा—माताजी ! तुम पितृघातक शत्रु को भी भाई बनाने को कहती हो, पर मेरे हृदय मे जो क्रोधाग्नि जल रही है, उसे किस प्रकार शात करूं ?

माता ने कहा—पुत्र, किसी मनुष्य पर क्रोध उतार कर क्रोध शात करना कोई वीरता नही है । क्रोध पर ही क्रोध उतार कर शांत करना अथवा क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही सच्ची वीरता है ।

माता का आदेश पाकर पुत्र ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पितृहन्ता शत्रु को गले लगाया । दोनो ने सगे भाइयो की तरह साथ-साथ भोजन किया ।

इसे कहते हैं, चतुर माता की सच्ची सीख ! पुत्र को सन्मार्ग पर चलाना ही तो सच्चा मातृत्व है ।

आजकल पुत्र को जन्म देने की लालसा का तो पार ही नही है, पर उसमे उत्तम सस्कार डालने की ओर शायद ही किसी का ध्यान जाता है । माताए पुत्र को पाकर ही अपने को धन्य मान बैठती हैं । पर पुत्र को जन्म देते ही कितना महत्त्वपूर्ण उत्तर-दायित्व सिर पर आ जाता है, यह कल्पना बहुत माताओ को नही है । पुत्र को जन्म देकर उसे सुसंस्कृत न बनाना घोर नैतिक अपराध है । अगर कोई मा-बाप अपने बालक की आखो पर पट्टी बांध दें तो आप उन्हे क्या कहेगे ?

निर्दयी !

बालक मे देखने की जो शक्ति है, उसे रोक देना माता-पिता का धर्म नही है। इसके विपरीत उसके नेत्र मे अगर कोई रोग है, विकार है, तो उसे दूर करना उनका कर्त्तव्य है।

यह बाह्य चर्म-चक्षु की बात है, चर्म-चक्षु तो बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् कुछ समय मे अपने आप ही खुल जाते हैं, पर हृदय के चक्षु इस तरह नहीं खुलते। हृदय के चक्षु खोलने के लिये सत्संस्कारों की आवश्यकता पडती है। बालको को अच्छी शिक्षा देने से उनके जीवन का निर्माण होता है।

७

सन्तति-नियमन

इस जमाने मे जननेन्द्रिय की लोलुपता ने प्रचण्ड रूप धारण किया है और इसके फलस्वरूप सन्तानोत्पत्ति मे वृद्धि हो रही है। सन्तानो की इस बढती को देखकर कई लोग यह सोचने लगे हैं कि गरीब भारतवर्ष के लिए सन्तान-वृद्धि एक असह्य भार है। इस भार से भारत को बचाने के लिए उपाय ईजाद किया गया है कि सन्तान की उत्पत्ति के स्थान को ही नष्ट कर दिया जाय! न रहेगा बास, न बजेगी बासुरी!

यह उपाय सन्तति-नियमन या सन्तति-निरोध कहलाता है और इसी विषय पर मुझे अपने विचार प्रकट करने हैं। इस विषय का न तो मेरा अधिक अभ्यास है और न अध्ययन ही। पर समाचारपत्रो और कुछ पुस्तको को पढ कर मैं यह जान पाया हूं कि कुछ लोग बडे जोरशोर से कहते हैं कि—"बढती जाती हुई सन्तान को अटकाने के लिए शस्त्र या औषध द्वारा स्त्रियो की जनन-शक्ति का नाश कर दिया जाय, उनके गर्भाशय का आपरेशन कर डाला जाय, या फिर उनके गर्भाशय को इतना निबल बना दिया

जाय कि सन्तान की पैदाइश हो ही न सके ।" इस उपाय द्वारा सन्तति-निरोध करने की आवश्यकता बतलाते हुए वे लोग कहते हैं —

संसार आज बेकारी के बोझ से दबा जा रहा है। भारतवर्ष तो विशेष रूप से बेकारी की बीमारी का मारा कराह रहा है। ऐसी दुर्दशा मे खर्च मे वृद्धि करना उचित कैसे कहा जा सकता है? इधर सन्तान की वृद्धि के साथ अनिवार्य रूप से व्यय मे वृद्धि होती है। सन्तान जब उत्पन्न होती है, तब भी खर्च होता है, उसके पालन-पोषण मे खर्च होता है, उसकी शिक्षा-दीक्षा मे भी खर्च उठाना पडता है। उस दशा मे जबकि अपना और अपनी पत्नी का पेट पालना भी दूभर हो पडा है, सन्तान उत्पन्न करके खर्च मे वृद्धि करना आर्थिक संकट को अपने हाथो आमन्त्रण देना है। आर्थिक संकट के साथ अन्य अनेक कष्ट बढ जाते हैं। अतएव स्त्रियो की जनन-शक्ति नष्ट करके यदि सन्तानोत्पत्ति से छुटकारा पा लिया जाय तो बहुत से कष्टो से बचा जा सकता है।

यह आधुनिक सुधारको की, सतति-नियमन के कृत्रिम उपायो के प्रचारको की प्रधान युक्ति है। इस पर यदि गहरा विचार किया जाय तो साफ मालूम हो जायगा कि यह युक्ति निस्सार है। संसार मे बेकारी बढ गई है, गरीबी बढ गई है और इससे दुःख बढ गया है, इस कारण संतति-नियमन की आवश्यकता है, यह सब तो ठीक है किन्तु गरीबी और बेकारी की विपदा से बचने के लिए सन्तति-निरोध का जो उपाय बताया जाता है, वह उपाय प्रत्येक दृष्टि से अत्यन्त ही हानिकारक, निन्दनीय और घृणित है। इस सम्बन्ध मे मैं जो सोचता हूं उसे कोई माने या न माने, यह अपनी-अपनी रुचि और संस्कार पर निर्भर है, पर मैं अपने विचार प्रकट कर देना चाहता हूं। आजकल यह कहा जाता है कि यह विचार-

स्वातन्त्र्य का युग है। सबको अपने-अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। यदि यह सच है तो मुझे भी अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। अतएव इस सम्बन्ध मे जो बात मेरे मन मे आई है, वह प्रकट कर देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हू।

कल्पना करो कि एक अत्यन्त सुन्दर बगीचा है। इस बगीचे मे भाति-भाति के वृक्ष हैं। इन वृक्षो मे एक बहुत ही सुन्दर वृक्ष है। भारतीयता की दृष्टि से इस सुन्दर वृक्ष को आम का पेड समझा जा सकता है क्योकि आम भारतवर्ष का ही वृक्ष है, ऐसा सुना जाता है।

आम के वृक्ष मे यद्यपि फल बहुत लगते हैं किन्तु समय के परिवतन के कारण अथवा जमीन नीरस हो जाने के कारण जो फल पहले सुन्दर, स्वादिष्ट और लाभकारक होते थे, उनके बदले अब उसमे नीरस और हानिकारक फल आने लगे हैं। अब कुछ लोग, जो जन-समाज के हितैषी होने का दावा करते हैं, आपस मे मिल कर यह विचार करने लगे कि आम के फलों से जनता मे फैलने वाली बीमारी का निवारण किस प्रकार किया जाय ?

उनमे से एक ने कहा—इसमे आम के पेड का तो कोई अपराध नही है। पेड वेचारा क्या कर सकता है ? उसके फलो से जनता को हानि पहुच रही है और जनता को उस हानि से बचाने का भार बुद्धिमानो पर है, अतएव बुद्धिमानो को ऐसा कोई उपाय खोजना चाहिए, जिससे यह सुन्दर वृक्ष भी नष्ट न हो और उसके फलों से जनता को हानि भी न पहुचे।

दूसरे ने कहा—मैं ऐसी एक रासायनिक औषधि जानता हूं, जिसे इस वृक्ष की जड मे डाल देने से वृक्ष फल देना ही बन्द कर

देगा। ऐसा करने से सारा झंझट मिट जायगा। उस औषधि के प्रयोग से न तो वृक्ष मे फल लगेंगे, न लोग उसके फल खा-पाएगे। तब फलों द्वारा होने वाली हानि आप ही बन्द हो जायगी।

तीसरे ने कहा—वृक्ष मे फल ही न लगने देना उसकी स्वाभाविकता का विनाश करने के समान है। ऐसा किया जायगा तो आम वृक्ष का नाम-निशान तक शेष न बचेगा। इसलिए यह उपाय उचित नही प्रतीत होता।

चौथे ने कहा—मैं एक ऐसा उपाय बता सकता हू, जिससे वृक्ष मे अधिक फल नही आने पाए गे। जितने फलो की आवश्यकता होगी, उतने ही फल आए गे और शेष सारे नष्ट हो जाए गे।

पांचवां बोला—इससे लाभ ही क्या हुआ? जितने भी फल नष्ट होने से बच रहेंगे, वे हानिकारक तो होगे ही. वे नीरस, निसत्व और खराब भी होंगे। तो फिर इस उपाय से दुनिया को क्या लाभ होगा? मैं एक ऐसा उपाय जानता हू, जिससे वह वृक्ष भी सुन्दर और सुदृढ बनेगा और इसके फल भी स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकारी होंगे। साथ ही जितने फलो की आवश्यकता होगी, उतने ही फल उसमे लगेंगे, अधिक नही लगेंगे। वे फल इतने मधुर और लाभप्रद होगे कि उनमे किसी को हानि पहुंने की सम्भावना तक न होगी, वरन् लाभ ही लाभ होगा।

चौथे सज्जन ने कहा—यह एकदम अनहोनी बात है। ऐसा कोई भी उपाय सफल नही हो सकता। इस उपाय से वृक्ष भी नही सुधर सकता और आवश्यकता के अनुसार परिमित फल भी नहीं आ सकते।

पांचवें ने उत्तर दिया—भाई, तुम्हारा उपाय कारगर हो

सकता है और मेरा उपाय नहीं, यह क्यों ? मेरी बात का समर्थन करने वाले अनेक प्रमाण मौजूद हैं। प्राचीनकालीन शास्त्र से भी मेरी बात पुष्ट होती है और वर्तमानकालीन व्यवहार से भी सिद्ध हो सकती है। ऐसी दशा मे प्रत्यक्ष-सिद्ध वस्तु को भी स्वीकार न करना और असम्भव कहकर टाल देना, कहां तक उचित है ?

इस पाचवें सज्जन ने अपने कथन के समर्थन मे ऐसे प्रमाण उपस्थित किये जिनसे प्रभावित होकर सबने एक स्वर से उसका कथन स्वीकार कर लिया और उसके द्वारा बताया हुआ उपाय सबने पसन्द किया।

यह एक दृष्टांत है और सन्तति-नियमन के सम्बन्ध में इसे इस प्रकार घटित किया जा सकता है :-

यह ससार एक बगीचे के समान है। संसारी जीव इसी बगीचे के वृक्ष हैं। जीव-रूपी इन वृक्षो मे मानव वृक्ष सबसे श्रेष्ठ है। इस मानव-रूपी वृक्ष मे किसी कारण से अति सन्तान-रूप फल बहुत लगते हैं और ये फल नि.सत्व और हानिकारक होने से भार-रूप प्रतीत होते हैं। अति-सतति की वदौलत मनुष्य के बल-वीर्य का ह्रास हो रहा है, खर्च का भार बढ गया है, वेकारी बढ़ गई है अतएव सन्तान भी दुखी हो रही है।

आज के सुधारक—जो अपने को ससार के और विशेपतः मानव-समाज के हितैषी मानते हैं—इस दुरावस्था को समझे और उसे दूर करने के लिए उपायो पर विचार करने लगे।

इन सुधारकों मे से एक कहता है—विज्ञान की वदौलत मैंने एक उपाय ऐसा खोज निकाला है, जिससे मनुष्य रूपी वृक्ष

कायम रहेगा, उसके सुख-सौंदर्य को किसी प्रकार की क्षति न पहुंचेगी और साथ ही उस पर अति सनति-रूप भार भी न पड़ेगा। और वह उपाय यह है कि शस्त्र या औषध के प्रयोग से गर्भाशय का सफाया कर दिया जाय।

इस प्रकार संतति-नियमन के लिये एक व्यक्ति गर्भाशय का नाश करने की सम्मति देता है। दूसरा कहता है कि ऐसा करने से तो मनुष्य-समाज ही समूल नष्ट हो जायगा, अतएव यह उपाय प्रयोजनीय नही है।

आजकल के सुधारक बढ़ती हुई सतति का निरोध करने के लिये इसी को अन्तिम उपाय मानते हैं। बहुत से लोगो को यह उपाय पसन्द भी आ गया है और वे इसका प्रचार भी करते हैं। सुना तो यहा तक जाता है कि इस उपाय का प्रचार करने के लिए सरकार भी सहायता दे रही है।

लोग यह सोचते हैं कि इस उपाय का प्रयोग करने से हमारे विषय-भोग मे भी बाधा नही पड़ेगी और हमारे ऊपर सतान का बोझ भी न पड़ेगा। अति-सनति की उलझन से भी छुटकारा मिल जायगा और आमोद-प्रमोद मे भी कमी न करनी पड़ेगी। जान पड़ता है, इसी विचार से प्रेरित होकर लोग इस उपाय का अवलम्बन करने के लिए ललचा उठे हैं।

भगवान् अरिष्टनेमि के जमाने मे जिस प्रकार जिह्वालोलुपता का प्रचार हो रहा था, उसी प्रकार आज जननेन्द्रिय अथवा स्पर्शनेन्द्रिय ने प्राय सर्व-साधारण को अपना दास बना लिया है। विषय-लोलुपता के कारण आज की जनता मे अपनी सतान के मोह की द्रोह की भावना उत्पन्न हो गई है और इसी कारण सन्तान

को विषय-भोग मे बाधक माना जा रहा है। इस विघ्न-बाधा को हटाकर, अपनी काम-लिप्सा को निरकुश और निर्विघ्न बनाने के जघन्य उद्देश्य से प्रेरित होकर ही लोग उपर्युक्त उपाय काम मे लाना पसन्द करते हैं। जहा विषय-भोग की वासना मे वृद्धि होती है, वहा इस प्रकार की कुत्सित मनोवृत्ति होना स्वाभाविक है। गीता मे कहा है—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते,
संगात्सञ्जायते काम कामात् क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद् भवति सम्मोह सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम,
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

इन्द्रिय-लोलुपता किस प्रकार विनाश को जन्म देती है, इसका स्वाभाविक क्रम गीता मे इस प्रकार बताया गया है—

विषयो का विचार करने से संग-उत्पन्न होता है, संग से काम की उत्पत्ति होती है। काम से क्रोध, क्रोध से सम्मोह अर्थात् अज्ञान का जन्म होता है, अज्ञान से स्मृति का नाश होता है, स्मृति के नाश के बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बुद्धि-भ्रष्ट हो जाने के फल-स्वरूप सर्वनाश हो जाता है।

आज सतति-नियमन के लिए जिस दृष्टि को सम्मुख रखकर उपायो की आयोजना की जा रही है और जिन उपायो को कल्याणकारी समझा जा रहा है, उनका भावी परिणाम देखते हुए यही कहा जा सकता है कि यह सब विनाश का पथ है।

जन-साधारण के विचार के अनुसार विषय-भोगों का त्याग

नहीं किया जा सकता। इसी भ्रांत विचार के कारण विषय लालसा जागृत होकर विषय-भोग का सेवन किया जाता है। अधिक से अधिक स्त्री-संग करके विषयों का सेवन किया जाय, ऐसी इच्छा की जाती है। इस इच्छा की पूर्ति के लिए कामोत्तेजक गोलियां, याकूती गोलियां आदि जीवन को बर्बाद करने वाली चीजों का उपयोग किया जाता है। आजकल विषय-भोग की लालसा इस सीमा तक बढ़ गई है कि जीवन को मटियामेट करने वाली, कामवर्धक चीजों के विज्ञापनों को रोकने की ओर तो तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता, उलटे संतति रोकने के लिए कृत्रिम उपायों का आश्रय लिया जा रहा है।

कहने का आशय यह है कि स्त्री-संग करने से कामवासना जागृत होती है और उससे क्रोध उत्पन्न होता है। जो कामवासना को चरितार्थ करने में बाधक हो, उस पर क्रोध आना स्वाभाविक ही है। सन्तान पर क्रोध आने का यही प्रधान कारण है। इस भावना के कारण अपनी प्यारी संतान भी शैतान का अवतार प्रतीत होती है। यही कारण है कि संतान से खर्च में वृद्धि होती है और वह भोग भोगने में विघ्न उपस्थित करती है। इस कारण से ऐसे उपायों की योजना की जाती है, जिनसे संतान पैदा ही न होने पाए। किन्तु यह वृत्ति अत्यन्त भयंकर है। जिस दृष्टि को सम्मुख रखकर आज संतान पर क्रोध किया जाता है, उसके प्रति द्रोह किया जा रहा है और उसकी उत्पत्ति का नाश किया जा रहा है, उस दृष्टि पर यदि गहरा और दूरदर्शितापूर्ण विचार किया जाय तो जान पड़ेगा कि यह दृष्टि धीरे-धीरे बढ़ती हुई कुछ भी काम न कर सकने वाले—अतएव भार-स्वरूप समझे लिये जाने वाले-वृद्ध और अपाहिज पुरुषों के विनाश के लिये प्रेरित करेगी। इसके जिस प्रकार सन्तान के प्रति व्यवहार किया जा रहा है, उसी

प्रकार वृद्धों के प्रति भी निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने की भावना उत्पन्न होगी। फिर स्त्रियां भी यह सोचने लगेंगी कि मेरा पति अब अशक्त और अयोग्य हो गया है, यह मेरे लिये अब भार-स्वरूप है और मेरी स्वतन्त्रता मे बाधक है। ऐसी दशा मे क्यो न उसका विनाश कर डाला जाय? पुरुष भी इसी प्रकार स्त्रियो को अयोग्य एव असमर्थ समझकर उनके विनाश का विचार करेंगे। इस प्रकार शस्त्र या औषध का जो कृत्रिम उपाय, खर्च से बचने और सतति-नियमन के काम मे लाया जाता है, वही उपाय स्त्री और पुरुष के प्राणो का सहार करने के काम मे लाया जाने लगेगा। परिणाम यह होगा कि मानवीय सद्गुणो का नाश हो जायगा, समाज की शृंखला भग्न हो जायगी, हिंसा-राक्षसी की चडाल-चौकडी मच जायगी और जो भयकर काल अभी दूर है, वह एकदम नजदीक आ जायगा।

सन्तति-नियमन के भयकर और प्रलयकर उपाय से और भी अनेक अनर्थ उत्पन्न हो सकते हैं। इस उपाय के विषय मे स्त्रियां यह सोच सकती हैं कि सन्तान की बदौलत ही मेरे गर्भाशय का आपरेशन किया जाता है, अतएव आपरेशन की झझट से बचने के लिए सन्तान उत्पन्न होते ही क्यो न उसका गला घोट दू?

शस्त्र-प्रयोग से जब सन्तति की उत्पत्ति रोकी जा सकती है और इस प्रकार सतति के प्रति अन्तःकरण में बसने वाली स्वाभाविक ममता और दया को तिलांजलि दी जा सकती है, तो यह क्या असम्भव है कि एक दिन ऐसा आ जाय जब लोग अपनी लूली-लगडी या अविनीत सतान का भी वध करने पर उतारू हो जाए?

इस प्रकार संतति-नियमन के लिए किये जाने वाले कृत्रिम

उपायों के कारण घोर अनर्थ फैल जाएगे और मानवीय अन्त करण मे विद्यमान नैसर्गिक दया आदि सद्भावनाए समूल नष्ट हो जायेंगी ।

यहा एक आशका की जा सकती है । वह यह कि जो सतान उत्पन्न हो चुकी हो, उसे नष्ट करना तो पाप है, मगर सतान को उत्पन्न होने देने के लिए गर्भाशय का आपरेशन कराना पाप कैसे कहा जा सकता है ?

इस आशका का समाधान यह है । मान लीजिये एक मनुष्य किसी नौका मे छेद कर रहा है और उस पर बहुत से मनुष्य सवार हैं । वह मनुष्य नौका पर सवार मनुष्यो को तो मार नहीं रहा है, सिर्फ नौका मे छेद कर रहा है । तो क्या यह कहा जा सकता है कि वह सचमुच उन आदमियो के प्राण नहीं ले रहा है? यदि यह नही कहा जा सकता तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उत्पत्तिस्थान को नष्ट करके अपने विषय-भोग चालू रखने के लिए हिंसा नही की जा रही है ? इसके अतिरिक्त जब मनुष्य की परोक्ष हिंसा से घृणा नही होगी, वरन् जान-बूझकर परोक्ष हिंसा की जायगी, तो प्रत्यक्ष हिंसा करने मे घृणा उठ जायगी ।

कहा जा सकता है कि इस बढती जाने वाली सतान का निग्रह किस प्रकार करना चाहिए ? सतान का नियमन न किया जाय तो क्या पिल्लो की तरह सतान बढाते हुए चले जावें ? इस प्रश्न के उत्तर मे सबसे पहले हम यह कहना चाहते हैं कि विषय वासना को सदा के लिए ही शात क्यो न कर दिया जाय ? काम-वासना मे वृद्धि क्यो की जाय और स्त्री-प्रसग क्यो किया जाय ? इस समस्या को हल करने के लिए भीष्म पितामह और भगवान् अरिष्टनेमि का आदर्श सामने रखकर ब्रह्मचर्य का ही पालन क्यो न किया जाय ? ब्रह्मचर्य

का पालन यदि पूर्ण रूप से किया जाय तो सतति-नियमन की आवश्यकता ही प्रतीत नही होगी।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य का आश्रय लेने से सतति-नियमन की समस्या सहज ही सुलझ जाती है। फिर उसके लिए हानिकारक उपायो का अवलम्बन करने की आवश्यकता नही रह जाती। सतति-नियमन के लिये ब्रह्मचर्य अमोघ उपाय है पर विलासी लोग उसका उपयोग न करते हुए चाहते हैं कि न तो विषय-भोग का परित्याग करना पडे और न सतान ही उत्पन्न होने पावे और इस दुरभिसन्धि की पूर्ति के लिए शस्त्र-प्रयोग आदि उपायो से जन-शक्ति का ही नाश करने की तरकीबें खोजते हैं पर स्मरण रखना, यदि ब्रह्मचर्य का पालन न करके कृत्रिम उपायो द्वारा सन्तति-नियमन किया जायगा तो इससे भविष्य मे अपार और असीम हानिया होगी। ब्रह्मचर्य का पालन न करते हुए संतान को कृत्रिम साधनो द्वारा रोका जायगा और पानी की भाति वीर्य का दुरुपयोग किया जायगा तो निर्बलता मानव समाज को ग्रस लेगी और तब सन्तान की अपेक्षा मनुष्य स्वय अपने लिए भार-रूप बन जायगा, ऐसा भार जिसे सम्भालना कठिन हो जायगा।

सन्तति-नियमन के लिए ब्रह्मचर्य ही अमोघ उपाय है—यही प्रशस्त साधन है। इस अमोघ उपाय की उपेक्षा करके—इसका तिरस्कार करके कृत्रिम साधनो से सतति-नियमन करना और विषय-भोग का व्यापार चालू रखना निसर्ग के नियमो का अतिक्रमण करना है और नैसर्गिक नियमो का अतिक्रमण करके कोई भी व्यक्ति और कोई भी समाज सुखी नहीं हो सकता। यदि सतति-नियमन का उद्देश्य विषय भोग का सेवन नही है, किन्तु आर्थिक और शारीरिक निर्बलता के कारण ही सन्तति-नियमन की

आवश्यकता का प्रतिपादन किया जाता है,तो भी ब्रह्मचर्य ही एक-मात्र अमोघ उपाय है ।

कोई यह कह सकता है कि सन्तति नियमन के लिए ब्रह्मचर्य उत्तम उपाय तो है, पर विषय–भोग की इच्छा को रोक सकना शक्य नही है । ऐसी लाचारी की हालत मे ब्रह्मचर्य का उपाय किस प्रकार काम मे लाया जाय ?

किसी उपवास-चिकित्सक के पास कोई रोगी जाय और चिकित्सक से कहे कि अपने रोग का निवारण करना चाहता हूं और उपवास–चिकित्सा-पद्धति को अच्छा भी मानता हू, पर उपवास करने मे असमर्थ हू ! तो चिकित्सक उस रोगी को क्या उत्तर देगा ? निस्सदेह वह यही कह सकता है कि अगर उपवास नही कर सकते तो आपके रोग की औषधि इस चिकित्सालय मे नहीं है ! इसी प्रकार जब तुम विषय-भोग की इच्छा को जीत नहीं सकते, तो ब्रह्मचर्य के सिवाय और क्या इलाज है ? तुम ब्रह्मचर्य पालन नहीं करना चाहते और विषय-भोग की प्रवृत्ति चालू रखकर सतति का नियमन करना चाहते हो तो इसका अर्थ यही है कि तुम सतति-नियमन के सच्चे उपाय को काम मे नही लाना चाहते, बल्कि विषय-वासना की पूर्ति मे तुम्हे सन्तान बाधक जान पडती है, इसलिये उसका निरोध करना चाहते हो ।

खेद है कि लोगो के मन मे यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि विषय-भोग की इच्छा का दमन करना असम्भव है । परन्तु जैसे नेपोलियन ने असम्भव शब्द को कोष मे से निकाल डालने को कहा था, उसी प्रकार तुम अपने हृदय मे से काम–भोग की इच्छा का दमन करने की असम्भवता को निकाल कर बाहर करो । ऐसा करने से तुम्हारा मनोबल सुदृढ बनेगा और तब विषय-भोग की

कामना पर विजय प्राप्त करना तनिक भी कठिन न होगा ।

मर्यादित ब्रह्मचर्य का पालन करके उत्पन्न की हुई सन्तान कितनी बलिष्ठ होती है, इस बात को समझने के लिए हनुमान की कथा पर विचार करो । हनुमान हमे बल देंगे इस भावना से लोग उसकी पूजा करते हैं, पर हनुमान की मूर्ति पर तेल या सिंदूर पोत देने से ही क्या बल की प्राप्ति हो सकती है ? हनुमान को जिस बल की प्राप्ति हुई थी, वह ब्रह्मचर्य के प्रताप से हुई थी । वे शील के ही पुत्र थे । पवन, महासुन्दरी अन्जना का पाणिग्रहण करके उन्हे अपने घर लाये । फिर अन्जना के प्रति उनके हृदय मे किंचित् सन्देह उत्पन्न हो गया और इस कारण उन्होने अंजना का परित्याग कर दिया । उन्होने इस अवस्था मे अपने पर पूर्ण नियन्त्रण रखा । अंजना ने यह समझ लिया था कि पतिदेव को मेरे विषय मे शंका उत्पन्न हो गई है और इसी कारण वे अपने ऊपर पूर्ण अंकुश रखते हुए मुझसे अलग–अलग रहते है । यह समझ कर अंजना ने भी अपने मन को वशीभूत करने का निश्चय कर लिया ।

अंजना की दासी ने एक बार अंजना से कहा—पवन जी तुम्हारे लिए पति नही, प्रत्युत पापी हैं । वह जो पति होते तो क्या इस तरह अपनी पत्नी का परित्याग कर देते ?

अंजना ने उत्तर दिया—दासी ! जीभ सम्भाल कर बोल । मेरे पति की निन्दा मत कर । वे सच्चे धर्मात्मा हैं । वे राजपुत्र हैं—चाहे तो अनेक कन्याओं का पाणिग्रहण कर सकते है । पर नहीं, मेरी खातिर वे अपने मन पर संयम रख रहे हैं । मेरे किसी पूर्व–कृत पाप के कारण उन्हें मेरे विषय मे सन्देह उत्पन्न हो गया है । जब मेरा पाप दूर हो जायगा तो मेरे पति का सन्देह दूर हो जायगा और तब वे फिर मुझे पहले की तरह चाहने लगेंगे ।

एक दिन वह था जब स्त्रियां अपने पति का प्रेम सम्पादन करने के लिए आत्म-समर्पण करती थी और आज यह दिन है कि पुनर्विवाह करने के लिए स्त्रियों को भरसक उत्तेजित किया जाता है। उनके हृदय मे काम-वासना की आग भडकाई जाती है। पुरुष स्वयं काम-वासना के गुलाम बन रहे हैं और इसी कारण आज विधवा-विवाह या पुनर्विवाह का प्रश्न खडा हो गया है। अगर विधवाओं की भांति पुरुष भी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मचर्य का पालन करें और त्यागमय जीवन व्यतीत करें तो सहज ही यह प्रश्न हल हो सकता है। किन्तु स्त्री की मृत्यु के बाद पुरुष ऊपर से रोने का ढोंग भले ही करते हों पर नई स्त्री के आने के विचार से हृदय में प्रसन्न होते हैं।

जैसे स्त्रियों के लिए अंजना का आदर्श है, इसी प्रकार पुरुषों के लिए पवनकुमार का आदर्श है। पवनकुमार और अंजना-दोनों ने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया था। जैसे अंजना बारह वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रही, उसी प्रकार पवनकुमार बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। वह राजकुमार थे। चाहते तो एक छोड दस विवाह कर लेते अथवा आजकल की तरह दुर्व्यवहार भी कर सकते थे, पर उन्होंने यह नहीं किया। उन्होंने सोचा, जब मैं अपनी पत्नी को पतिव्रता देखना चाहता हूं तो मैं स्वयं दुराचार करके क्यों नष्ट होऊं—मैं भी क्यों न पत्नीव्रती बनूं? मैं यह अनर्थ कैसे कर सकता हूं?

आज का पुरुष-वर्ग स्त्रियों की टीका करने में कमी नहीं रखता पर खुद कैसी-कैसी करतूतें कर रहा है, इस ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। पुरुष समझता है, मुझे सब कुछ करने का अधिकार है, क्योंकि मैं पुरुष हूं! पर यह दयनीय बात है।

अतएव मैं यह कहता हूं कि स्त्री और पुरुष दोनों को ही शील का पालन करना चाहिए। शास्त्र मे पुरुष के लिए स्वदार–सतोष और स्त्री के लिए स्वपति–सतोष का विधान है। पुरुष यदि स्वदार–सतोष व्रत का पालन करें तो स्त्रिया स्वपति–सतोष व्रत का पालन क्यो न करेंगी ? पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न हो सके तो भी यदि इस आंशिक व्रत का पालन किया जाय और स्त्री–पुरुष सन्तोषपूर्वक मर्यादित जीवन व्यतीत करें तो सन्तति– नियमन का प्रश्न सहज ही हल हो सकता है।

बारह वर्ष बाद युद्ध में जाते हुए पवनकुमार ने जगल में पडाव डाला। वही पास मे किसी पेड के नीचे एक चकवी रो रही थी। पवनकुमार ने अपने मित्र प्रहस्त से उस चकवी के रोने का कारण पूछा। प्रहस्त ने कहा—रात मे चकवा–चकवी का वियोग हो जाता है और इसी वियोग की वेदना से व्याकुल होकर यह चकवी रो रही है।

पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा—जब यह चकवी केवल एक रात के वियोग से कल्पांत मचा रही है, तो मेरी पत्नी के दुःख का क्या ठिकाना होगा, जिसे मैंने बारह वर्ष से त्याग रखा है ! मुझे उसके विषय मे सन्देह उत्पन्न हो गया था और इसी कारण मैंने उसका त्याग कर दिया है।

प्रहस्त ने पवन से पूछा—अपनी पत्नी के प्रति आपको क्या सन्देह हो गया था ? इस विषय मे आपने आज तक मुझसे कुछ भी जिक्र नही किया। जिक्र किया होता तो मैं आपके सन्देह का निवारण कर देता।

पवनकुमार ने अपना सन्देह प्रहस्त को बता दिया। प्रहस्त ने कहा—वह सती है। उस पर आपका यह सन्देह अनुचित है।

आपका सन्देह सच्चा होता तो वह इतने दिनों तक घर में न बैठी रहती, वह कभी की मायके चली गई होती। आपने जिसे दूषण समझा और जिसके कारण आपको सन्देह हो गया है, वह दूषण नहीं, भूषण है—गुण है।

पवनकुमार सारी बात समझ गये। उनका सन्देह काफूर होता गया। उन्होंने प्रहस्त से कहा—मैंने एक सती-साध्वी स्त्री को बहुत कष्ट पहुचाया है। इस समय मैं समरांगण मे जा रहा हू और कदाचित् मैं युद्ध मे मारा गया तो यह दुःख काटे की तरह मुझे सदा ही सताता रहेगा। क्या ऐसा कोई उपाय नही है कि मैं रात भर उसके पास रहकर वापिस लौट सकू? प्रहस्त ने कहा—है क्यो नही, मैं ऐसी विद्या जानता हू।

आज एरोप्लेन—वायुयान हैं, पर पहले आकाश मे उडने की विद्या भी थी। इस विद्या के बल से प्रहस्त के साथ पवनकुमार अंजना के निवास-स्थान पर आए। जिस समय पवनकुमार अंजना के पास पहुच रहे थे, उस समय अंजना को एक दासी उससे कह रही थी—जिसे तुम अपना सुहाग समझती हो, तुम्हारे उस पति ने तुम्हारा शकुन न लेकर तुम्हारा अपमान किया है। वास्तव मे तुम्हारा पति अत्यन्त क्रूर है। मैं तो सोचती हू—वह युद्ध में अवश्य मारा जायगा।

अंजना और उसकी दासी के वार्तालाप से सहज ही यह समझा जा सकेगा कि वास्तव मे दासी और रानी मे कितना अन्तर होता है। दासी के कथन के उत्तर मे अंजना ने कहा—खबरदार, जो ऐसी बात मुह से निकाली! युद्ध मे मेरे स्वामी अवश्य विजय-प्राप्त करेंगे। मेरी भावना तो निरन्तर यही रहती है कि उन्हें शीघ्र ही विजय प्राप्त हो।

दासी—जिसने तुम्हारा घोर अपमान किया है, उसी की तुम विजय चाहती हो ! कैसी भोली हो मालकिन !

अंजना—मेरे पति के हृदय मे मेरे विषय मे सन्देह उत्पन्न हुआ है । वे मुझे दुराचारिणी समझते हैं और इसी कारण युद्ध के लिए जाते समय उन्होंने मेरा शकुन नही लिया है । मेरे पति महा-पुरुष और वीर हैं। उन्होने अपने पिताजी को युद्ध मे नही जाने दिया और आप स्वय युद्ध मे सम्मिलित होने गये हैं । वे ऐसे शूर-वीर हैं और बारह वर्ष से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं। ऐसे सच्चरित्र और वीर-पुरुष की जीत नही होगी, तो किसकी होगी ?

इस प्रकार अजना और उसकी दासी मे चल रही बातचीत पवनकुमार ने शात चित्त से सुनी। पवनकुमार अजना की अपने प्रति अगाध निष्ठा देख कर गद्‌गद् हो गये । प्रहस्त से उन्होंने कहा—मित्र ! मैंने इस सती के प्रति अक्षम्य अपराध किया है। अब किस प्रकार इसे अपना मुह दिखाऊ ?

प्रहस्त ने कहा—थोडी देर और धैर्य धारण कीजिए। इतना कहकर प्रहस्त ने अजना के मकान की खिडकी खडखडाई । खिडकी की खडखडाहट सुनकर अजना गरज उठी—कौन दुष्ट है, जो कुमार को बाहर गया देखकर इस समय आया है ? जो भी कोई हो, फौरन यहां से भाग जाय, अन्यथा उसे प्राणो से हाथ धोना पडेगा।

प्रहस्त ने उत्तर दिया—और कोई नहीं है । दूसरे किसकी हिम्मत है, जो यहा आने का विचार भी कर सके । यह पवनकुमार जी हैं और इनके साथ में इनका मित्र प्रहस्त हू । ये शब्द सुनते ही अजना के अग-अग मे मानो बिजली दौड गई । उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा । पर जब तक उसे खातिरी न हो गई, उसने

किवाड़ न खोले। जब उसने खिड़की में से देखकर यकीन कर लिया, तभी दरवाजा खोला।

अंजना ने अर्घ्य लेकर अपने प्राण-पति पवनकुमार की आरती उतारी और फिर कुछ-कुछ लजाते हुए बोली, सकुचते हुए विनम्र वाणी से कहने लगी—'क्षमा करना नाथ, मैंने आपको बहुत कष्ट पहुंचाया है।'

कष्ट किसने किसे पहुंचाया था? पवनकुमार ने अंजना को अथवा अंजना ने पवनकुमार को? वास्तव में तो पवनकुमार ने ही अंजना को कष्ट दिया था। फिर भी अंजना ने इस तरह की शिकायत न करते हुए उलटा यही कहा कि—'मैंने आपको बहुत कष्ट दिया है। मेरे कारण ही आपने एकनिष्ठता के साथ बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पाला है। इस कष्ट के लिए मुझे क्षमा कीजिए। आपका सन्देह दूर हो गया है, यह जानकर आज मुझे असीम आनन्द की अनुभूति हो रही है।

पवनकुमार ने मन ही मन लजाते हुए कहा—'सती! क्षमा-दान दो। अनजान में मैंने तुम सरीखी परम सती महिला को मिथ्या कलंक लगाया है। मेरे इस घोर अपराध को क्षमा करो।'

अन्त में दोनों का संसार-सम्बन्ध हुआ। दोनों ने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पाला था, अतएव पवनकुमार के वीर्य से हनुमान जैसे बली बालक का जन्म हुआ।

तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचर्यपूर्वक मर्यादित जीवन व्यतीत करने से सन्तान भी बलवान होती है। अतएव संतति-नियमन के सम्बन्ध में पवनकुमार का आदर्श सामने रखना चाहिए।

तुम कदाचित् भीष्म और भगवान् अरिष्टनेमि की तरह पूर्ण ब्रह्मचारी नही रह सकते तो पवनकुमार की भाति ब्रह्मचर्य-पूर्वक मर्यादित जीवन तो अवश्य बिता सकते हो। कामवासना पर काबू नही रखा जा सकता। इस भ्रमपूर्ण भावना का परित्याग करो। इस दुर्भावना के कारण ही विषय-वासना वेगवती बनती है।

मेरे सम्पूर्ण कथन का सार यही है कि इस समय सतति-नियमन की आवश्यकता तो है, पर आजकल उसके लिए शस्त्रक्रिया या औषध का जो उपाय बताया जाता है, वह सच्चा हितकर उपाय नही है। यह उपाय तो प्रत्येक दृष्टि से लाभ के बदले हानि ही पहुचाएगा। अतएव हानिकारक उपायो का उपयोग न करके सन्तति-नियमन के लिए ब्रह्मचर्य का अमोघ और कल्याणकारी उपाय काम में लाना चाहिए। ब्रह्मचर्य के अवलम्बन से सन्तति का नियमन होगा और जो सन्तान होगी, वह स्वस्थ, सबल और सम्पन्न होगी। साथ ही तुम भी शक्तिशाली और चिरजीवी बन सकोगे।

सन्तति-नियमन करके द्रव्य के अपव्यय या अधिक व्यय से बचना चाहते हो—द्रव्य तुम्हें प्यारा है तो असली धन—जीवन के मूल और शक्ति के स्रोत वीर्य के अपव्यय से भी बचने का प्रयास करो। द्रव्य-धन की अपेक्षा वीर्य-धन का मूल्य कही अधिक है—बहुत अधिक है। फिर इस ओर दृष्टि-निपात क्यो नही करते ?

शस्त्र-क्रिया या औषध के प्रयोग द्वारा सन्तति-नियमन करने से अपनी हानि के साथ-साथ परम्परा से दूसरो की भी हानि होगी। इसके अतिरिक्त आजकल तो स्त्री-पुरुष की समानता का प्रश्न भी उपस्थित हो गया है। ऐसी दशा मे, सम्भव है, स्त्रियों की ओर से यह प्रश्न खडा कर दिया जाय कि सन्तति-नियमन के लिए हमारे गर्भाशय का ही आपरेशन क्यो किया जाय ? क्यो न

पुरुषों को ही ऐसा बना दिया जाय, जिससे सन्तान की उत्पत्ति ही न हो सके। पुरुषों की उत्पादक शक्ति का ही विनाश क्यों न कर दिया जाय ?

सन्तति-नियमन के जिन कृत्रिम उपायों के कारण भविष्य मे ऐसी भयानक स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना है, उन उपायो का प्रयोग न करना ही विवेकशीलता है। कदाचित् सरकार सन्तति-नियमन के लिए ऐसे कृत्रिम उपायो को काम मे लाने के लिए कानून बना दे, तो सरकार के उस काले कानून को मानना या न मानना, तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। अगर तुम्हें भी सन्तति-नियमन के कृत्रिम उपाय अनुचित और हानिकारक जान पड़ते हों तो इन उपायो का परित्याग करो और सन्तति-नियमन के लिए अमोघ उपाय ब्रह्मचर्य का प्रयोग करो। इसी मे तुम्हारा, समाज का और अन्ततः विश्व का कल्याण है।

❀ ❀ ❀

आज सन्तति-निरोध के नाम पर स्त्री का गर्भाशय आपरेशन कराके निकलवा डालने का भी रिवाज चल पड़ा है। स्त्री का गर्भाशय निकलवा देने पर चाहे जितना विषय-सेवन किया जाय, कोई हर्ज नही, यह मान्यता आजकल बढ़ती जा रही है लेकिन यह पद्धति अपनाने से आपके शील की तथा आपकी कोई कीमत न रहेगी। वीर्य-रक्षा करने से ही मनुष्य की कीमत है। वीर्य को पचा जाने मे ही बुद्धिमत्ता है।

आधुनिक डाक्टरो का मत है कि जवान आदमी शरीर में वीर्य को नही पचा सकता। ऐसा करने से दूसरी हानि होने की सम्भावना रहती है। इस मान्यता के विपरीत हमारे ऋषि मुनियो

का अनुभव कुछ जुदा है । शास्त्र में ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये नव-वाड बतलाई हुई हैं, जिनकी सहायता से वीर्य शरीर में पचाया जा सकता है ।

अमेरिकन तत्त्ववेत्ता डाक्टर थोर एक बार अपने शिष्य के साथ जगल मे गया था । शिष्य ने उनसे पूछा कि यदि कोई आदमी अपने वीर्य को शरीर मे न पचा सके तो उसे क्या करना चाहिये ? थोर ने उत्तर दिया कि ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन भर मे एक बार स्त्री-प्रसग करना अनुचित नही है । ऐसा करना वीर का काम है । जिस प्रकार सिंह जीवन मे एक बार सिंहनी से मिलता है, वैसे ही जो जीवन मे एक बार स्त्रीसग करता है, वह वीर पुरुष है । शिष्य ने पूछा कि यदि ऐसा करने पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये ? थोर ने उत्तर दिया कि साल मे एक बार स्त्री-प्रसग करना चाहिये । फिर शिष्य ने पूछा—यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना ? गुरु ने कहा कि मास मे एक बार स्त्री से मिलना चाहिये । यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये? ऐसा पूछने पर थोर ने उत्तर दिया कि फिर मर जाना चाहिये ।

आज समाज की क्या दशा है ? आठम-चौदस को भी शील पालने की शिक्षा देनी पडती है । आठम-चौदस की प्रतिज्ञा लेकर लोग ऐसे भाव दिखलाते हैं, मानो हम साधुओ पर कोई उपकार करते हैं । सच्चा श्रावक स्वस्त्री का आगार होने पर भी अपनी स्त्री के साथ भी सन्तोष से काम लेगा । जहाँ तक होगा, बचने की कोशिश करेगा । सब सुधारों का मूल शील है । आप यदि जीवन मे शील को स्थान देंगे तो कल्याण होगा ।

जब स्त्री गर्भवती होती है, तब उसके दो हृदय होते हैं ।

एक गुद का और दूसरा बालक का। दो हृदय होने के कारण उसकी इच्छा को दोहद कहा जाता है। उसकी इच्छा गर्भ की इच्छा मानी जाती है। जैसा जीव गर्भ मे होता है, वैसा ही दोहद भी होता है। दोहद के अच्छे बुरे होने का अन्दाजा लगाया जा सकता है। श्रेणिक को कष्ट देने वाला उसका पुत्र कोणिक जब गर्भ मे था, तब उसकी माता को अपने पति श्रेणिक के कलेजे का मांस खाने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। दुर्योधन जब गर्भ मे था, उसकी माता को कौरव वंश के लोगो के कलेजे खाने की इच्छा हुई थी। गर्भ मे जैसा बालक होता है, वैसा दोहद होता है। दोहद पर से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि गर्भस्थ बालक कैसा होगा। बालक के भूत और भविष्य का पता दोहद से लग सकता है। आजकल सांसारिक प्रपञ्चों का बोझा मगज पर अधिक होता है, अतः स्वप्न याद नही रहा करते। रात्रि मे नदी के बहाव का शब्द जोर से सुनाई देता है। इसका अर्थ यह नही होता कि रात मे नदी जोर का शब्द करती है। वह सदा-समान रूप से बहती है। किन्तु उस वक्त वातावरण मे शांति होने से शब्द स्पष्ट सुनाई देता है। स्वप्न के विषय मे भी यही बात है। शास्त्र मे स्वप्न कहे है। यदि उनको ठीक तरह से समझने की शक्ति हो तो मालूम होगा कि उसमें भूत-भविष्य का हाल जानने का भी तरीका दिया हुआ है।

न करना निरोध का ठीक रास्ता है ।

गर्भ रह जाने के बाद उसकी सम्भाल न करना निष्करुणा है । धारिणी राणी को जब गर्भ था, वह अधिक ठडे, अधिक गर्म, अधिक तीखे कडुवे कसायले खट्टे–मीठे पदार्थों का भोजन नहीं करती थी । ऐसी चीजो पर उसका मन भी दौड जाता, फिर भी गर्भ की रक्षा के लिए वह अपनी जबान पर काबू रखती थी । वह न अधिक जागती, न अधिक सोती, न अधिक चलती और न पडी रहती ।

ब्रह्मचर्य का पालन न करने से गर्भ रह जाय, तब यह उत्तर दे देना कि बालक के भाग्य में जैसा होगा वैसा देखा जायगा, नगाईपूर्ण उत्तर है । इस उत्तर मे कर्त्तव्य का खयाल नही है । किसी को पाच रुपये देने हैं । वह लेने वाला कह दे कि तेरे भाग्य मे होगे तो मिल जायगें, नही तो नही मिलेंगे । यह उत्तर व्यवहार मे नगाई का उत्तर गिना जाता है । इसी प्रकार पहले अपने ऊपर काबू न रखना और बाद मे कह देना कि जैसा नसीब मे होगा देखा जायगा, मूर्खता सूचित करता है, केवल मूर्खता ही नही किन्तु निर्दयता भी साबित होती है ।

वाद अन्य वस्तुओ की लूट के साथ–साथ स्त्रियो को भी लूटा जाता था । उनके साथ खुले आम व्यभिचार होता था । घोडा, गाय आदि की तरह ही स्त्रियो को रखा जाता रहा । अपनी वस्तुओ को जैसे छिपाकर रखा जाता है, उसी प्रकार औरतो को भी बडे यत्न से पर्दों और बुरको मे छिपाकर रखा जाता था। सुन्दर स्त्रियो को तो और भी सबकी दृष्टि से बचाकर रखे जाने का प्रयत्न होता था । यही उनकी परतन्त्रता का एक रूप पर्दे के रूप मे अब तक बना हुआ है ।

स्त्रियो को दासी समझने के विचार कोई नए नही, लम्बे समय से ऐसा दृष्टिकोण चला आ रहा है। बौद्ध साहित्य मे भी स्त्रियो की हालत बहुत गिरी हुई रखी गई थी । बडी मुश्किल से बाद मे संघ के अन्दर स्त्रियो के प्रवेश की आज्ञा मिली पर बुद्ध ने कहा था कि यह उचित न रहेगा । इस प्रवेश से संघ का पतन शीघ्र हो जायगा । पारसियो के धर्म–ग्रन्थो के अनुसार पत्नी को प्रातःकाल उठकर पति से नौ बार यह पूछना चाहिए कि मैं क्या करू ? मुसलमानो को चार स्त्रियां तक एक साथ रखने की स्वतन्त्रता है । पुरुषो की प्रतियोगिता मे उनके अधिकार आधे माने गए हैं । इसी प्रकार यहूदी और ईसाई धर्म मे भी स्त्रियो को पुरुषो के मुकाबले मे बहुत कम अधिकार दिए गए । ईसाई-मत मे तो स्त्रियो मे आत्मा भी नही मानी गई । उनके धर्मानुसार पुरुषो को स्त्रियो पर शासन करने का अधिकार है और स्त्रियो का कर्त्तव्य उनसे शासित होना है । प्रथम–महायुद्ध से पहिले तक उन्हे पादरी बनने की आज्ञा न थी ।

स्त्रियो को बहुत समय तक परतन्त्रता की बेडियो मे जकड कर रखा गया । पर्दा उसी का अवशेष है । पर्दा रखना पूर्ण

रूप से स्त्रियों पर अविश्वास रखना है। अपनी प्यारी वस्तु समझ कर दूसरों की दृष्टि से बचाकर रखना पर्दे का कार्य था। उन्हें इस प्रकार रखा जाना घोर अन्याय है। अभी तक हमारा समाज इन भावों से मुक्त नहीं हो पाया। फलस्वरूप यह प्रथा अब तक विद्यमान है।

कुछ समय से स्त्रियों में जागृति की भावना फैलती जा रही है। वे स्वतन्त्र रूप से अपने अधिकारों की माँग कर पुरुषों के दासत्व को छोड़ने के लिए प्रयत्नशील हैं। योरप में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए काफी आंदोलन किए गए थे। पहले उन्हें चुनाव आदि में वोट देने का अधिकार नहीं था पर धीरे-धीरे लड़ते हुए उन्हें बहुत से अधिकार प्राप्त हो गए। अतः पाश्चात्य स्त्रियों की हालत इस लिहाज से अच्छी है उसके मुकाबले में भारतीय महिलाओं की स्थिति इतनी ठीक नहीं है। यद्यपि उन्हें सभी राजनैतिक अधिकार प्राप्त हैं, फिर भी पहिले की असमानता अभी रह रही है। रूसी और अफगानिस्तान की महिलाओं ने भी बुरका का विरोध किया है और वे अपने अधिकारों की प्राप्ति की कोशिश करती हैं।

बिल्कुल नीच न रखी जाए। सक्षेप मे पर्दा हटाना सदियो से चली आती हुई दासता के बधन को हटाना है ।

पर्दे के कारण हमारा समाज अपग हो गया है । पुरुष और स्त्री समाज के दो अभिन्न अंग हैं। सामाजिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि दोनो का सम्बन्ध परस्पर सहानुभूति और सहयोग-पूर्ण रहे। पर्दे के कारण स्त्री और पुरुषो को भिन्न-भिन्न-सा कर दिया गया है । दोनों के बीच कोई सम्बन्ध नही, मिलकर कोई कार्य नही कर सकते । किसी समस्या पर दोनो गम्भीरता से विचार भी नही कर सकते । अभी एक स्त्री अपने निकट सम्बन्धियो के अतिरिक्त किसी से बात भी नही कर सकती, मिलकर कोई कार्य करना तो अलग रहा । कोई पुरुष अपनी रिश्तेदार-स्त्रियो के अलावा अन्य स्त्रियो से बात नही कर सकता । अगर किसी स्त्री ने किसी अन्य पुरुष से कुछ देर बातें करली तो उनका सम्बन्ध अनुचित समझा जायगा । उस पर व्यभिचारिणी होने का आरोप लगाया जायगा । कोई पुरुष अपने पवित्रतम प्रेम का भी परिचय किसी स्त्री को नही दे सकता । इस प्रकार अभी तक स्त्रियो और पुरुषो का कार्यक्षेत्र सर्वथा अलग रहा है । उनका समाज भी भिन्न रहा। दोनों की सम्मति और सहयोग से कोई कार्य नहीं किया जाता । पति-पत्नी, पिता-पुत्री और भाई-बहिन के अतिरिक्त स्त्री पुरुषो का कोई सम्बन्ध ही नही रहा और यह भी रिश्तेदारो तक ही सीमित रहा । इनके अलावा सब रिश्ते नाजायज समझे जाते हैं । हमारे समाज मे इन विचारो से बहुत सकुचितता उत्पन्न हो गई है । जहा स्त्री-पुरुषो मे जरा भी मिलना-जुलना सभा-सोसाइटियो मे हुआ कि वही पर लोग कलियुग का स्मरण करने लगते हैं । पति-पत्नी का साथ मे कही बाहर भ्रमण करने जाना भी बहुत बुरा समझा जाता है । इसे निर्लज्जता और उच्छृंखलता के

सिवाय और किसी का रूप नहीं दिया जाता ।

पर्दा प्रथा की पुष्टि में सबसे महत्त्वपूर्ण तर्क यह दिया जाता है कि इसके न होने से स्त्रियों में सदाचार न रहेगा लेकिन यह कथन घोर असत्य है । इसमें स्त्रियों के प्रति घोर अन्याय स्पष्ट है । भारतवर्ष के जिन प्रदेशों में पर्दा नहीं है, वहां पर्दा वाले प्रदेशों से कम सदाचार नहीं देखा जाता । योरोपीय देशों में पर्दा बिलकुल नहीं है, स्त्रियां पुरुषों की तरह स्वतन्त्र घूमती फिरती है । वे सभी पुरुषों से अच्छी तरह मिलती-जुलती हैं पर यह कहना अनुचित न होगा कि उनका भी चारित्र भारतीयों की अपेक्षा हीन नहीं । यहां छिपे-छिपे जितने दुराचार होते हैं, वहां उतने नहीं होते । अफ्रीका में कई स्त्री-पुरुष नग्न रहते हैं पर आश्चर्य है कि वहां के पुरुष पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करते हैं । अगर यह कहा जाय कि बिना पर्दे के पुरुष-वर्ग संयम में नहीं रह सकेगा, तब तो पुरुषों को ही पर्दे में रखना उचित होगा । उन्हें दुराचार से बचाने का यही एक मात्र उपाय है । उनकी कमजोरी और व्यभिचार से स्त्री-वर्ग हानि क्यों उठाए ? उन्हें पर्दे में रखना सरासर अन्याय है । क्या आवश्यकता है कि इन्हें भेड़-बकरियों की तरह ही नहीं ... की पूरी अवस्था में बाड़े में बन्द रखा जाय ?

जैसा चाहे रख सकते हैं। स्वतंत्र होते ही वे अपने-आपको मनुष्य अनुभव करने लगेंगी। उस समय पुरुषो की सत्ता उन पर नही चलेगी। पहले से ही वे सहानुभूतिपूर्वक उन्हें उचित सुविधाएं देंगे तो ठीक रहेगा।

जो लोग यह कहते हैं कि पर्दा प्राचीनकाल से बडे-बूढो के जमाने से चला आया है, उन्हे सोचना चाहिए कि अगर बडे-बूढों के कायदो पर अच्छी तरह विचार करते और उसके अनुसार आचरण करते तो तुम्हारी यह हालत नही होती। जितनी विचारशीलता से उन्होने यह प्रथा चलाई थी, उतनी आज होती तो इन परिस्थितियो मे पर्दा उठाने मे क्षण भर का भी विलम्ब न होता। भिन्न-भिन्न परिस्थितियो के अनुसार रीति-रिवाजो मे परिवर्तन करते रहने मे ही बुद्धिमत्ता है। कोरी लकीर पीटने से ही कुछ हाथ नही आता।

पुराने समय मे लज्जा स्त्रियो का आभूषण समझा जाता था। विनय उनका श्रेष्ठ गुण था। पर्दे को प्रथा तो पहले बिलकुल न थी। मुसलमानो के समय के पश्चात् पर्दा प्रारम्भ हुआ। उस समय की परिस्थितियो और आज की परिस्थितियो मे भिन्नता है। यह आवश्यक नही कि उस समय जो वस्तु उपयुक्त हो, वही आज भी हो। लोग इस दृष्टि से नहीं सोच पाते। उनके दिमाग मे इतना आता है कि पर्दा हमारे बडे-बूढों ने चलाया था। जो काम उन्होंने किया, जो चीज उन्होंने अपने दिमाग से सोची, उस समय वही ठीक थी। उनके ऊचे विचारो और ऊचे आदर्शों की ओर तो किसी की दृष्टि नहीं जाती और तुच्छ से तुच्छ बातो पर गुड के मकोड़ो सरीखे चिपटते हैं।

पर्दा उठाने का अर्थ निर्लज्जता नहीं और न अविनय है। कौन इन्कार करता है कि वधू को सास-श्वसुर की विनय रखना

चाहिए, उनका माता-पिता सरीखा आदर करना चाहिए। पर क्या बिना मुंह ढंके उनका आदर नहीं किया जा सकता। पर्दा उठा देने पर स्त्रियों को वर्तमान में उपयोग में आने वाले निर्लज्जतापूर्ण बारीक वस्त्रों का, जिनमें आज उनके सिर का एक-एक बाल दिखाई देता है, त्याग करना पड़ेगा। पर्दा उठा देने से पर्दे की बहुत-सी पोलें अपने आप समाप्त हो जाएंगी। क्या इतने बारीक वस्त्र प्राचीनकाल की स्त्रियां पहनती थी ?

६

आभूषण

—०—

आभूषण स्त्रियों की अत्यन्त प्रिय वस्तु है। आज से ही नही पर प्राचीनकाल से ही आभूषण स्त्रियो का शृङ्गार है। हां, उसकी बनावट अथवा रूपो मे भले ही परिवर्तन होता रहा है।

यही कारण है कि अनेको स्त्रिया तो जेवरों के पीछे इस तरह पागल रहती हैं कि भले ही गृहस्थी मे उन्हें और सब सुख हो पर अगर जेवर नहीं है तो कुछ नहीं है। इस प्रकार की स्त्रियां आए दिन सास-ससुर अथवा पति से गहने के लिये झगडती रहती हैं।

कुछ जातियो मे तो इतना अधिक जेवर पहिनने का रिवाज है कि वह गहना उनके लिये वेडी के समान हो जाता है। हाथ-पाव मे गड्ढे पड जाते हैं, फिर भी उनका मोह उनसे नहीं छूटता। वे दुनियां भर मे उनका प्रदर्शन कर उस भारी वजन को ढोती फिरती हैं। प्रदर्शन इसलिए कि अधिक गहना पहन कर दूसरो को दिखाना एक प्रकार की इज्जत समझती हैं। इज्जत का जेवर से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध समझा जाता है। इसलिए अधिक गहना पहनने वाली औरत को प्राय. डाह की नजरो से देखा जाता है।

आभूषण इसलिये पहिने जाते हैं कि बहुत दिनों से उनको पहिनने का रिवाज चला आया है। किसी के कम या बिलकुल न पहिनने पर भी औरतें आपस में एक दूसरे की नुक्ताचीनी किया करती हैं।

स्त्रियां आपस में गहनों से ही एक दूसरी का मूल्य आंका करती हैं। जो ज्यादा गहना पहने होती है, सब उससे बात करने के लिए उत्कण्ठित रहती हैं और जो गरीबिनी नहीं पहन सकती है, उससे बात करने की भी आवश्यकता नहीं समझती।

भावार्थ—पतिव्रता फटे चिथडे पहने हो और गले मे पोत भी न हो तो भी हीरे की ज्योति सदृश दीप्ति को प्राप्त होती है।

गहना-कपडा नारी का सच्चा आभूषण नही है । नारी का श्रेष्ठ आभूषण शील है। सीता जब वन मे रही, तब उसने क्या गहना पहना था ? द्रौपदी ने विराटनगर मे राजा के यहा सैरध्री नामक दासी बनकर रानियो की रानी होते हुए भी सिर गूथने का छोटी से छोटी दासी का काम किया था । आज ऐसी सती-साध्वी देवियो के सामने सारा ससार सिर झुकाता है ।

तात्पर्य यह है कि बाहरी सुन्दरता के पीछे मत पडो। बढिया गहने और कपडे नारी के आभूषण नही हैं । इनसे शरीर का ऊपरी सौन्दर्य भले ही कुछ बढ जाय, मगर आत्मा की सुन्दरता का ह्रास होता है ।

नारी की सुन्दरता बढाने के लिए शील का आभूषण काफी है । उन्हे और आभूषणो का लालच नही होना चाहिए । बाहरी सुन्दरता मन को बिगाडने वाली होती है और मन की पवित्रता अंतःकरण के शुद्ध करने वाली होती है । बाह्य सुन्दरता अनेक कष्टो का निमन्त्रण करती है, अनावश्यक व्ययजनक होती है । आतरिक सुन्दरता अनेको कष्टो का निवारण करती है व पैसा भी खर्च नही होता । प्रत्येक स्त्री को चाहिए कि आत्मा की शोभा बढाने का सतत प्रयत्न करे । मन की पवित्रता को कायम रखते हुए जीवन को उज्ज्वलता-रूपी सुन्दर आभूषण से अलकृत करे । इस मासपिड (शरीर) की सजावट मे क्या पडा है ? नारी की सच्ची महत्ता और पूजा शील मे होगी । शील आभूषणो का भी आभूषण है । गहनो मे सुन्दरता देखने वाली नारी आत्मा के सद्गुणाभूषण को कभी नही देख पाती। त्याग, सयम और सादगी मे जो सुन्दरता

है, वह बाहरी आभूषणों में कहाँ ?

रामचन्द्रजी जब वनवास गए, तब सीता भी उन्हीं के साथ वन को चली गईं । भरत उस समय अपने ननिहाल में थे । वहाँ से आने पर जब उन्हें मालूम हुआ कि राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गये, तब उन्होंने अपनी माता कैकेयी को बहुत कठोर शब्दों में फटकारा और रामचन्द्र जी वगैरह को वापिस लाने के लिए प्रजाजनों के साथ वन को रवाना हुए । वहाँ पहुँचने पर उन्होंने रामचन्द्र जी से लौट चलने का अत्यन्त ही आग्रह किया पर रामचन्द्र जी राजी नहीं हुए । निरुपाय हो उन्होंने भाभी सीता

अपने भाई की कद्र कम करते हैं। यह सुहाग-बिन्दी आपके भाई के होने से ही है। क्या आप अपने भाई की अपेक्षा रत्नो को भी बड़ा समझते हैं ? आपका ऐसा समझना उचित नही है।

भरत ! आप प्रकृति की ओर देखिये। जब रात गहरी होती है तो ओस के बूद पृथ्वी पर गिर कर मोती के गहने बन जाते हैं। लेकिन उषा के प्रकट होते ही प्रकृति उन गहनो को पृथ्वी पर गिरा देती है. जैसे प्रकृति यह सोचती है कि इन गहनो का शृङ्गार तभी तक ठीक था, जब तक उषा प्रकट नही हुई थी। अब उषा की मौजूदगी मे इनकी क्या आवश्यकता है ? यही बात मेरे लिये भी है। जब तक वन-वासरूपी उषा प्रकट नही हुई थी, तब तक भले ही आभूषणो की आवश्यकता रही हो, अब तो सौभाग्य को सूचित करने वाली इस सुहाग-बिंदी मे ही समस्त आभूषणो का समावेश हो जाता है। यही मेरे लिये सब शृङ्गारों का शृङ्गार है। इससे अधिक की मुझे आवश्यकता नहीं है। ऐसी स्थिति मे आप क्यो व्याकुल होते हैं ? आपको मेरा सुहाग देखकर ही प्रसन्न होना चाहिए।

बहिनो से यही कहना है कि सीता जी ने जिन गहनो को हसकर त्याग दिया था, उन गहनो के लिए तुम आपस मे कभी मत लडो। जब आत्मा सद्गुणो से अलकृत होती है तो शरीर को विभूषित करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। सीता और राम के प्रति आपके हृदय में इतनी श्रद्धा क्यो है ? उन्होंने त्याग न किया होता तो जो गौरव उन्हे मिला है, वह कभी मिल सकता था ? त्याग के बिना कोई किसी को नहीं पूछता।

कदाचित् कहा जाय कि घर मे नगे हाथ अच्छे नहीं लगते

सुकोमल वस्त्र पहन कर झूले में झूल रही है। भोजन के समय भोजन करती है और विलास मे डूबी रहती है। उसी गृहस्थी मे दूसरी बाई कर्मशीला है। वह श्रृंगार की परवाह नही करती, नाज-नखरो में दिल नहीं लगाती। घर को साफ-सुथरा रखती है। बच्चो की अशुचि मिटाकर उन्हे नहलाती है, स्वच्छ वस्त्र पहनाती है, उनके भोजन की उत्तम व्यवस्था करती है।

आप इन दोनो मे किसे अच्छा समझती हैं? किसे जीवन-दायी मानती हैं?

इस प्रकार जीवन मे बाह्य शारीरिक सौन्दर्य और विलास को प्रधानता देने वाले का दुनिया मे कोई मूल्य नहीं। मूल्य तो आध्यात्मिक पवित्रता और स्वच्छता का है। जो जितना ही शरीर से उदासीन और हृदय से पवित्र होगा, उसी का जीवन सफल और मूल्यवान् है। पवित्र जीवन ही उसका वास्तविक सौदर्य है।

सीता के सम्बन्ध मे बुद्धिमती स्त्रियां कहती हैं—सीता ने क्षमा का नौलडा हार पहन रखा है। ऐसा ही हार हमे पहनना चाहिए। यद्यपि कैकेयी की वर-याचना के फलस्वरूप उनके पति को और उनको वन जाना पड रहा है, फिर भी इनके चेहरे पर रोष का लेशमात्र भी कोई चिन्ह नही दिखाई देता। उनकी मुद्रा कितनी शात और गम्भीर है! अगर उनमें धैर्य नहीं होता तो वह तुम्हारी तरह रोने लगती। अगर वह अपनी आख टेढी करके कह देती कि मेरे पति का राज्य लेने वाला कौन है तो किसका माहस था कि वह राज्य ले सके। सारी अयोध्या उनके पीछे थी। लक्ष्मण उनके परम सहायक थे और वे अकेले ही सबके लिए काफी थे। सीता चाहती तो मिथिला से फौज मगवा सकती थी लेकिन

बहिनो ! सीता ने मणि-जडे कर्णफूल त्याग कर उत्तम शिक्षा के जो कर्णफूल पहने हैं, उन्हें ही हमे पहनना चाहिए। सीता विदेहपुत्री है और विदेह आत्मज्ञानी हैं। सीता ने उन्हीं की शिक्षा ग्रहण की है।

× ×

मैं जब गृहस्थावस्था मे था, तब की बात है। मेरे गांव में एक बूढे ने विवाह करना चाहा। एक विधवा बाई की एक लडकी थी। बूढे ने वृद्धा के सामने विवाह का प्रस्ताव उपस्थित किया। मगर उसने और उसकी लडकी दोनों ने उसे अस्वीकार कर दिया। कुछ दिनो बाद उस बूढे की रिश्तेदार कोई स्त्री उस बाई के पास आई और उसे वहुत-सा जेवर दिखला कर बोली-तुम्हारी लडकी का विवाह उनके साथ हो जाएगा तो उसे इतना जेवर पहनने को मिलेगा। लालच मे आकर विधवा ने अपनी लडकी का विवाह उस बूढे के साथ कर दिया।

मेवाड की भी एक ऐसी ही घटना है। एक धनी वृद्ध के साथ एक कन्या का विवाह होना निश्चित हुआ। समाज-सुधारकों ने लडकी की माता को ऐसा न करने के लिये समझाया। लडकी की माता ने कहा कि पति मर जाएगा तो क्या हुआ, मेरी लडकी गहने तो खूब पहिनेगी।

आप ही बताइये ? उक्त दोनो विवाह किसके साथ हुए ?

'धन के साथ'

'पति के साथ तो नही ?'

नही।

धन ही इन कन्याओं का पति बना।

दिनो के लिए भीख मागी जाती है और उन आभूषणो से हीनता का अनुभव करने के बदले महत्त्व का अनुभव किया जाता है। क्या यह घोर अज्ञान का परिणाम नही है ? आभूषण न पहनने वाले यूरोपियन क्या हीन-दृष्टि से देखे जाते हैं ? फिर आपको ही अपनी सारी महत्ता आभूषणो मे क्यों दिखाई देती है ?

आभूषणों से लादकर बच्चों को खिलौना बनाना आप पसन्द करते हैं, पर उनके भोजन की ओर अक्षम्य उपेक्षा रखते हैं। यह कैसी दोहरी भूल है ? जरा अपने बच्चे का खाना किसी अंग्रेज बच्चे के सामने रखिये। वह तो क्या, उसका बाप भी वह भोजन नहीं खा सकेगा, क्योकि हमारा भोजन इतना चटपटा होता है कि बेचारे का मुंह जल जाय।

बच्चो को आभूषण पहनाने का आपका उद्देश्य क्या है ? इसके दो ही उद्देश्य हो सकते है। एक तो अपने बालक को सुन्दर दिखाना अथवा अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करना। मगर ये दोनों उद्देश्य भ्रमपूर्ण हैं। बालक तो स्वभाव से ही सुन्दर होता है। वह निसर्ग का सुन्दरतर उपहार है। उसके नैसर्गिक सौन्दर्य को आभूषण दबा देते हैं, विकृत कर देते हैं। जिन्हे सच्चे सौन्दर्य की परख है, वे ऐसे उपायो का अवलम्बन नही करते। विवेकवान् व्यक्ति जड-पदार्थ लादकर चेतन की शोभा नही बढाते। जो लोग आभूषणो मे सौन्दर्य निहारते हैं, कहना चाहिए कि उन्हें सौन्दर्य का ज्ञान नहीं है। वे सजीव बालक की अपेक्षा निर्जीव आभूषण को अधिक चाहते हैं। उनकी रुचि जडता की ओर आकृष्ट हो रही है।

अगर अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करने के लिए बालक को आभूषण पहना कर खिलौना बनाना चाहते हो तो स्वार्थ की हद हो गई। अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करने के लिए निर्दोष बालक का

जीवन क्यों विपत्ति में डालते हो ? जिसे अपनी धनाढ्यता का अजीर्ण है, जो अपने धन को नहीं पचा सकता, वह किसी अन्य उपाय से बाहर निकाल सकता है। उसके लिए अपनी प्रिय सन्तान के प्राणों को संकट में डालना क्या उचित है ?

बच्चों को आभूषण पहनाने से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनेक हानियाँ होती हैं। परन्तु एक प्रत्यक्ष हानि आप सभी जानते हैं। गहनों की बदौलत कई बालकों की हत्या होती है। हत्या की घटनाएँ आये दिन घटती रहती हैं। फिर भी आप अपना हठ नहीं छोड़ते, यह कितने आश्चर्य की बात है ? आपका विवेक कहाँ है ? कब वह जागृत होगा ?

१०

विधवा बहिनों से

आपके घर मे विधवा बहिनें, शीलदेवियां हैं। इनका आदर करो। इन्हे पूज्य मानो। इन्हे खोटे, दुःखदायी शब्द मत कहो। ये शीलदेवियां पवित्र हैं, पावन हैं। ये मगलरूप हैं। इनके शकुन अच्छे हैं। शील की मूर्ति क्या कभी अमगलमयी हो सकती है?

समाज की मूर्खता ने कुशीलवती को मगलमयी और शीलवती को अमगला मान लिया है। यह कैसी भ्रष्ट बुद्धि है?

याद रखो, अगर समय रहते न चेते और विधवाओ की मान-रक्षा न की, उनका निरन्तर अपमान करते रहे, उन्हें ठुकराते रहे तो शीघ्र ही अधर्म फूट पडेगा। आदर्श धूल मे मिल जायगा और आपको ससार के सामने नतमस्तक होना पडेगा।

विधवा या सुहागिन बहिनो के हृदय मे कुविचार उत्पन्न होने का प्रधान कारण उनका निकम्मा रहना है। जो बहिनें काम-काज में फंसी रहती हैं, उन्हे कुविचारो का शिकार होने का अवकाश नहीं मिलता।

विधवा बहिनों के लिए चर्खा अच्छा साधन माना गया है, पर आप लोग तो उसके फिरने मे वायुकाय की हिंसा का महापाप मानते हैं। आपको यह विचार कहां है कि अगर विधवाएं निकम्मी रहकर इधर-उधर भटकती फिरेंगी और पापाचार का पोषण करेंगी तो कितना पाप होगा?

बहिनो! शील आपका महान् धर्म है। जिन्होंने शील का पालन किया है, वे प्रातःस्मरणीय बन गई हैं। आप धर्म का पालन करेंगी तो साक्षात् मंगलमूर्ति बन जाएगी।

बहिनो! स्मरण रखो—तुम सती हो, महाभागिनी हो, पवित्रता की प्रतिमा हो! तुम्हारे विचार उदार और उच्च होने चाहिए। तुम्हारी दृष्टि पतन की ओर कभी नहीं जानी चाहिए। बहिनो! हिम्मत रखो। धैर्य धारण करो। सच्ची धर्म-पालिनी बहिनों में कायरता नहीं हो सकती। धर्म जिनका अमोघ कवच है, उनमें कायरता कैसी?

उसके सद्गुणों पर अवलम्बित है । वही नारी की वास्तविक प्रतिष्ठा है। आभूषणो से अपनी प्रतिष्ठा का दिखावा करने अपके सद्गुणों का अपमान करना है । आप सोचती हैं कि बिना आभूषणो के विधवा अच्छी नही लगती, इसलिए आभूषण पहनती हैं। पर मैं कहता हूं—विधवा बहिन के मुख-मडल पर जब ब्रह्मचर्य का तेज विराजमान होगा तो उसके सामने आभूषणो की आभा फीकी पड़ जाएगी । चेहरे की सौम्यता बलात् उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न किये बिना नही रहेगी । उसके तप, त्याग और सयम से उसके प्रति असीम श्रद्धा का भाव प्रकट हुए बिना नहीं रहेगा। इसमे क्या प्रतिष्ठा नही ? सच पूछो तो यही उत्तम-गुण उसकी सच्ची प्रतिष्ठा के कारण होगे। ऐसी अवस्था मे कृत्रिम-प्रतिष्ठा के लिए वैधव्य-धर्म के विरुद्ध गहने आदि की आवश्यकता नहीं रहेगी । इसीलिए मैं कहता हू—आत्मा के सद्गुणो का सत्यानाश करने वाली इन रीतियों का आप बिल्कुल त्याग कर दें और संयम से जीवन विताए ।

११

विविध विषय

१–सच्चा श्रृंगार

बहनो री करलो ऐसो सिंगार,
जिससे होओ भव-जल पार ।

मन का मैल उतारे बिना न तो शुद्धि हो सकती है और न मुक्ति मिल सकती है। इसलिए कहा जाता है कि पानी से मैल उतारने मात्र से कुछ न होगा, मन का मैल उतारो।

केवल जल से मैल उतार लेने से कुछ नहीं होगा, मन के राग-द्वेषरूपी मैल को साफ करो।

स्त्रियों मे राग-द्वेष के कारण ही आपस मे झगडे होते हैं। जो स्त्रिया राग-द्वेष से भरी हैं, वे अपने बेटे को तो बेटा मानती हैं पर देवरानी के बेटे को बेटा नही समझती। उनमे इतना क्षुद्रतापूर्ण पक्षपात होता है कि अपने बेटे को तो दूध के ऊपर की मलाई खिलाती हैं और देवरानी या जिठानी के लडके को नीचे का सारहीन दूध देती हैं। जो स्त्री इस प्रकार राग-द्वेष के मल से भरी है, वह सुख-चैन कैसे पा सकती है? राग-द्वेष को हटाकर मन, वचन की शुद्धता मे स्नान करना ही सच्ची शुचि है।

जो स्त्री ऊपर के कपडे तो पहने है मगर जिसने आत्मा के सम्यग्दृष्टिरूपी वस्त्रो को उतार फेंका है, वह ऊपरी वस्त्रो के होते हुए भी नगी-सी ही है। जिसके ऊपर विद्यारूपी वस्त्र नही हैं, उसकी शोभा सुन्दर वस्त्रो से भी नही हो सकती। कृत्य-अकृत्य के ज्ञान को विद्या कहते हैं और स्त्री के लिए यह विद्या ही सिंगार है। अविद्या के साथ उत्तम वस्त्र तो और भी ज्यादा हानिकारक होते हैं।

किसी स्त्री का पति परदेश मे था। उसने अपनी पत्नी को पत्र भेजा। पत्नी पढी-लिखी नही थी। वह किसी से पत्र पढवाने का विचार कर ही रही थी कि बढिया वस्त्रो से सुसज्जित एक महापुरुष उधर होकर निकले। स्त्री पत्र लेकर उनके पास पहुची।

चुडैल कहलाती हैं। वास्तव मे परस्पर मेल–मिलाप से रहना ही केश संवारना है। आपस में मेलरूपीकेश सवार कर न्याय की माग निकालो अर्थात् परस्पर मेल होने पर भी अन्याय की बात मत कहो। न्याय की बात कहो। न किसी का हक छीनो, न खाओ। हो सके तो अपना हक छोड़ दो। इतना नही बन सकता तो कम से कम दूसरे का हक हजम मत करो। जो स्त्रियां ऐसा करती हैं, समझना चाहिए कि उन्हीं की माग निकली हुई है। ऐसी देवियों को देवता भी नमस्कार करते हैं।

स्त्रिया पैरों में महावर लगाती हैं। किन्तु सच्चा महावर क्या है? हृदय मे धैर्यरूपी महावर लगाओ। इसी प्रकार ललाट पर यश का तिलक लगाओ। कम से कम ऐसा कोई काम मत करो जिससे लोक मे अपयश होता हो। इस लोक और परलोक मे निंदा करने वाला कार्य न करना ही स्त्रितो का सच्चा तिलक है।

स्त्रिया अपना सिंगार पूरा करने के लिए गाल पर कस्तूरी या काजल की एक बिन्दी लगाती हैं। वह तिल कहलाता है। किन्तु वास्तव मे अपना एक भी क्षण व्यर्थ न जाने देना ही सच्चा तिल लगाना है। गन्दे विचारो मे समय जाने से ही अनेक खरा-बिया होती हैं।

परोपकार की मिस्सी लगाओ। केवल दांत काले कर लेने से क्या लाभ है? एक स्त्री अपनी मिस्सी की शोभा दिखलाने के लिए हसती रहती है और दूसरी हसती नही है किन्तु परोपकार मे लगी रहती है। इन दोनो मे से परोपकार करने वाली ही अच्छी समझी जाएगी। जो निठल्ली बैठी दांत निकाला करती है, उसे कोई भली नही कहेगा, चाहे मिस्सी कितनी ही बढ़िया क्यो न लगी

वास्तव में परोपकार की मिस्सी लगाना ही सच्चा सिंगार है।

पतिव्रता के काजल में भी शक्ति होती है। शिशुपाल ने अपनी भौजाई से कहा था—मैं बनड़ा बना हूँ भाभी! मेरी आंखों में काजल आंज दो। उसकी भौजाई ने कहा—रुक्मिणी को ब्याहने का तुम्हें अधिकार नहीं है, क्योंकि वह तुम्हें चाहती नहीं है। जो चाहती ही नहीं उसे ब्याहने का अधिकार पुरुष को नहीं है। इसी हालत में मैं तुम्हें काजल नहीं आंजूंगी। मैंने काजल आंज दिया और तुम वहां से कोरे आ गये तो मेरे काजल का अपमान होगा।

हाथों की शोभा मेहदी लगाने से नहीं होती, बल्कि घर पर आए हुए गरीबो को निराश व अपमानित न करके उन्हें दान देने से होती है ।

शुभ विचारो की फूलमाला धारण करनी चाहिए, वनस्पति के फूलो की माला पहनना तो प्रकृति की शोभा को नष्ट करना है । इसी प्रकार मुख मे पान-बीडा दबा लेने से स्त्री की प्रतिष्ठा नही बढती । प्रतिष्ठा बढाने के लिए स्त्री को विनय सीखना चाहिए ।

भारत की स्त्रियो मे विनय की जैसी मात्रा पाई जाती है, अन्य देशों मे नहीं है । यूरोप की स्त्रियों मे कितनी विनयशीलता है, यह बात तो उस फोटू को देखने से मालूम हो जायगी, जिसमे रानी मेरी कुर्सी पर डटी हैं और बादशाह जार्ज उनके पास नौकर की भांति खडे हैं ! भारत की स्त्रियो मे इतनी अशिष्टता शायद ही मिले ।

इस सब सिंगार पर सत्सगति का इत्र लगाना चाहिए । कुसंगति से यह सब पूर्वोक्त सिंगार भी दूषित हो जाता है । कैकेयी भरत की माता होने पर भी मथरा की सगति के कारण बुरी कहलाई ।

२-कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य

आज कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय मे बडी उलटी समझ हो रही है । लोगो ने न जाने किस प्रकार अपनी कुछ धारणाए बना ली हैं । बाजार से घी लाने मे पुण्य है और घर पर गाय का पालन करके घी उत्पन्न करने मे पाप है, ऐसा कई लोग समझते

देता हूं, क्या कहता हूं और किस आधार से कहता हूं. इस बात को वे समझने का कष्ट नहीं उठाते । उन्हें कौन समझाए कि साधु का कर्त्तव्य जुदा होता है और गृहस्थ का धर्म जुदा है । दोनों की परिस्थितियां इतनी भिन्न हैं कि उनका कर्त्तव्य एक नहीं हो सकता। साधु कभी सावद्य भाषा का प्रयोग नहीं करता ।

शास्त्र मे प्रतिपादित कर्त्तव्य क्या है और आधुनिक श्राविकाएं उसे किस रूप मे समझती हैं, इस बात का विचार करने से आश्चर्य होने लगता है। कोई–कोई श्राविका चक्की न चलाने की प्रतीज्ञा लेती है । वह समझती है—'चक्की नहीं चलाऊंगी तो पाप से बच जाऊंगी ।' मगर उन्हें यह विचार नहीं आता कि आटा तो खाना ही पडेगा, फिर वह पाप से कैसे बच जायगी ?

मैं तो यहां तक कहता हूं कि मशीन से आटा पिसवाने की अपेक्षा हाथ मे पीसकर खाने मे कम पाप होता है। इसका कारण यह है कि हाथ से पीसने मे यतना रखी जा सकती है । पीसते समय गेहूं आदि मे कोई जीव–जन्तु गिर जाए तो उसे बचाया जा सकता है । चक्की के पाटों के बीच मे छिपे हुए जीवो की रक्षा की जा सकती है । हाथ से इतना अधिक आटा नही पीसा जाता कि उसका बहुत अधिक संग्रह हो जाए।

३–मशीन का आटा

अभी कुछ दिनो पहले तक गृहस्थ बहिनें अपने हाथ से आटा पीसती थी । धनाढ्य और निर्धन का इस विषय मे कोई भेद नहीं था । शरीर के लिए किसी न किसी प्रकार के शारीरिक व्यायाम की जरूरत होती ही है । नीरोग रहने के लिए यह अत्या-

मालूम होता हो, लेकिन किसी भी दृष्टि से वह लाभप्रद नहीं है। सस्कार की दृष्टि से भी वह अत्यन्त हेय है। बम्बई मे सुना था कि मछली बेचने वाले लोग जिस टोकरी मे मछलिया रखकर बेचते हैं, उसी टोकरी मे गेहू लेकर पन-चक्की में पिसाने ले जाते हैं। मछली वाली टोकरी के गेहू जिस चक्की मे पिसते हैं उसी मे दूसरे गेहू पिसते हैं। लोग यों तो छुआछूत का बडा ध्यान रखते हैं लेकिन पन-चक्की मे वह छुआछूत भी पिस कर चूरा-चूरा हो जाती है। क्या मछली वाली टोकरी के गेहू का आटा पनचक्की मे रह कर आप लोगों के आटे मे नही मिलता होगा ! और वह आटा बुरे सस्कार नही डालता होगा ?

आप डाक्टरो की राय लेंगे तो वह आपको बतलायेंगे कि पन-चक्की का आटा हानिकारक है।

इसके सिवाय हाथ की चक्की से अल्प-आरम्भ से काम चलता था, लेकिन पनचक्की से महा-आरम्भ होता है।

पनचक्की से गृहस्थ-जीवन की एक स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और परतन्त्रता पैदा हो गई है।

४—बिना छना पानी

गर्मी और वर्षा के कारण आटे मे भी कीडे पड जाते हैं, जल मे भी कीडे पड जाते हैं और ईंधन मे भी। लोग धर्म-ध्यान तो करते हैं, परन्तु इन जीवों की रक्षा करने मे और हिंसा के घोर पाप से बचने मे न मालूम क्यों आलस्य करते हैं ? बडे-बडे मटको में भरा हुआ पानी कई दिनो तक खाली नहीं होता। पहले से भरा हुआ पानी में दूसरा पानी डालते रहते हैं। कदाचित् पहले

जैन और क्या वैष्णव सभी ग्रन्थों मे रात्रि-भोजन को त्याज्य माना गया है। जिसने रात्रि-भोजन त्याग दिया है, वह एक प्रकार से तपस्या करके अनेक रोगो से बच रहा है। रात्रि-भोजन त्यागने से बहुत लाभ होता है। प्लेग के कीड़ो का जोर दिन मे उतना नहीं होता, जितना रात्रि मे होता है। रात्रि मे प्लेग के कीडे प्रबल हो जाते हैं, दिन मे सूर्य की किरणो से या तो वह नष्ट हो जाते हैं या प्रभावशील हो जाते हैं। डाक्टरो और शास्त्रकारो का कथन है कि जो भोजन रात्रि मे रहता है, उसमे अनेक प्रकार के कीटाणु पैदा हो जाते हैं। इस प्रकार रात्रि का भोजन सब प्रकार से अभक्ष्य होता है। मगर खेद है कि कई भाई चार पहर के दिन मे तो भोजन नहीं कर पाते और रात्रि मे ही फुर्सत पाते हैं।

रात्रि-भोजन की बुराइयां इतनी स्थूल हैं कि उन्हें अधिक समझाने की आवश्यकता नही जान पडती। रात्रि मे चाहे जितना प्रकाश किया जाय, अन्धेरा रहता ही है। बल्कि प्रकाश को देख कर बहुत-से कीडे आ जाते हैं और वे भोजन मे गिर जाते हैं। अगर एक दम अन्धेरे मे भोजन किया जाय तो आकर गिरने वाले जीवजन्तुओ का पता लग ही नही सकता। इस प्रकार दोनो अवस्थाओ मे रात्रि-भोजन करने वाले अभक्ष्य भक्षण और हिंसा के पाप से नही बच सकते। रात्रि-भोजन के प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले दोषो का दिग्दर्शन कराते हुए हुए आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

> मेधां पिपीलिका हन्ति, यूका कुर्याज्जलोदरम्।
> कुरुते मक्षिका वान्ति, कुष्ठरोगं च कोलिकः॥
> कण्टको दारुखण्ड च, वितनोति गलव्यथाम्।
> व्यञ्जनान्तर्निपतितस्तालु, विध्यति वृश्चिका॥

कर सकता है ? एक उदाहरण लीजिये—

जैनी रात को नहीं खाते है, सुन चातुर भाई ।
हठ करके किसी ने खाया, क्या नसीहत पाई ।।
रामदयाल सागर में हकीम था, उसकी थी नारी ।
प्यास लगी पानी की उसको, रात थी अन्धियारी ।।
मकड़ी उसमें पड़ी आन कर, जहरी थी भारी ।
जहरी मकड़ी गई पेट में, हो गई दुखियारी ।।
पेट फूला और सूजी सारी,

वैद औषधि करी तैयारी ।
नहीं लागे कारी ।।

छह महीने में मुई निकली, सागर में भाई ।।हठ०।।

आप इस कविता की शाब्दिक त्रुटियो पर ध्यान न देकर उसके भावो पर ध्यान दीजिए। रात्रि-भोजन से होने वाली हानियों के उदाहरण पहले के भी हैं और आज भी अनेक सुने जाते हैं। सागर के हकीम ने रोगो पर हिकमत चलाई, लेकिन रात्रि का भोजन नहीं त्यागा। नतीजा यह हुआ कि उसे अपनी स्त्री से हाथ धोना पडा। आजकल के वैज्ञानिक भी रात्रि-भोजन को राक्षसी भोजन कहते हैं। रात्रि मे पक्षी भी खाना-पीना छोड देते हैं। पक्षियों मे नीच समझे जाने वाले कौवे भी रात मे नही खाते। हां, चमगीदड रात्रि को खाते हैं, परन्तु क्या आप उन्हे अच्छा समझते हैं ? आप उनका अनुकरण करना पसन्द करते हैं ?

सारांश यह है कि रात्रि-भोजन अहिंसा और स्वास्थ्य दोनों

पत्नी को दासी बना कर रखना उसके प्रति अन्याय होगा । स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि स्त्री और पुरुष की शिक्षा में भिन्नता होनी चाहिए अथवा नही ?

५–शिक्षा की रूपरेखा

यह निश्चित है कि पति चाहे कितना ही धन अर्जित करता हो अगर उस पैसे का उचित उपयोग न किया जाय तो बहुत हानि होने की सम्भावना है। अगर घर की व्यवस्था उपयुक्त नहीं, स्वच्छता की ओर कोई लक्ष्य नहीं, उचित सन्तानपोषण की व्यवस्था नही तथा खान-पान की सामग्री का इन्तजाम नही तो कौटुम्बिक जीवन कभी सफल और सुखी नही रह सकता। अगर गृहिणी शिक्षिता होकर आफिस मे पतिदेव की तरह क्लर्की करे और उनकी सन्तान सदैव दुखी रहे तथा सभी प्रकार की अव्यवस्था हो तो क्या वह दाम्पत्य जीवन सुखी होगा ? एक सफल गृहिणी होना ही स्त्री का कर्त्तव्य है। पति पत्नी दोनो ही अगर भिन्न–भिन्न क्षेत्र मे अपना–अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह पूरा करते रहे, तभी गृहजीवन सुखी हो सकता है। पति का आफिस का कार्य उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना स्त्री का भोजन बनाना। किसी का भी कार्य एक दूसरे से हीन नही। स्त्रियो को सुशिक्षित होकर अपनी गृहस्थी को स्वर्ग बनाने और अपनी सन्तान को गुणवान् बनाकर सत्संस्कारी करने का उपक्रम करना चाहिए। स्त्रियो की शिक्षा निश्चित रूप से पुरुषो से भिन्न प्रकार की होनी चाहिए। साधारण रूप से सभी शिक्षित स्त्रियो को सफल गृहिणी बनने मे सीता सावित्री का आदर्श अपनाना चाहिए। किन्हीं विशेष परिस्थितियो मे कोई स्त्री अर्थप्राप्ति मे भी पति का हाथ बटा सकती है, अपनी सुविधा और योग्यता के अनुसार। पर स्त्रियो के बिना गृहस्थी सुव्यवस्थित नही रह सकती और उन्हे इस ओर

हुआ देखकर चाय न पीने के कारण जीवित रहने वाला बहुत घबराया। उसने सोचा—कही मुझ पर ही कोई आफत न आ पडे। थाने मे इत्तला करने पर पुलिस तहकीकात करने आई। उस जीवित बचने वाले ने कहा—ये सब लोग चाय पी-पी कर सोये थे। जान पडता है, चाय मे ही कोई विषैली चीज मिली होगी। इनकी मृत्यु का और कारण मालूम नहीं होता। पुलिस-अफसर ने चायदानी देखी तो मालूम हुआ कि चायदानी की नली मे एक छिपकली जमी हुई थी, जो चाय के साथ उबल गई और उसके जहर से सभी पीने वाले अपने प्राणो से हाथ धो बैठे।

कोद (विडवाल) की ठकुरानी ने दिन भर एकादशी का व्रत किया और रात को फलाहार करने लगी। ठकुरानी ने केवल एक ही ग्रास खाया था कि भयकर रोग हो गया। अनेक प्रकार की चिकित्सा करने पर भी वह न बच सकी।

> अस्तंगते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते।
> अन्नं मांससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेयमहर्षिणा॥

यहां सूर्य डूबने के पश्चात् अन्न को मास और पानी को रुधिर के समान बतलाया गया है। यह चाहे आलकारिक भाषा हो, फिर भी कितने तीखे शब्दों मे रात्रि के भोजन-पान का त्याग बतलाया गया है! अतएव रात्रि-भोजन के अनेक विध दोषो का विचार करके आप उसका त्याग करें।

६—चाय

चाय का प्रचार बहुत हो गया है। चाय का प्रचलन हो भले गया हो मगर समझदार लोगों का कहना है कि चाय हानि

७–सच्ची लज्जा

आजकल की बहुत–सी स्त्रियां घूंघट आदि से ही लज्जा की रक्षा समझती हैं, किन्तु वास्तव में लज्जा कुछ और ही है। लज्जावती अपने अंग–अंग को इस प्रकार से छिपाती है कि कुछ कहा नही जा सकता। लज्जावती कैसी होती है, यह बात उदाहरण से समझ लीजिये—

एक लज्जावती बाई पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई अपना जीवन बिताती थी। उसने यह निश्चय किया था कि मेरे साथ जो भी कोई रहेगी, उसे भी मैं ही शिक्षा दूंगी। उसकी शिक्षा से मुहल्ले की बहुत–सी स्त्रियां सदाचारिणी बन गईं।

उसी मुहल्ले में एक और औरत थी, जिसका स्वभाव इससे एकदम विपरीत था। यह पूर्व को तो वह पश्चिम को जाती थी। वह अपना दल बढाने के लिए स्त्रियों को भरमाया करती। उस पतिव्रता की निन्दा करती, उसकी संगति को बुरा बतलाती और कहती—'अरी, उसकी संगत करोगी तो जोगिन बन जाओगी। खाना–पीना और मौज करना ही तो जीवन का सबसे बडा लाभ है।

कुछ स्त्रियां उस निर्लज्जा और धूर्ता स्त्री की भी बातें सुनने वाली थीं, पर ऐसी थी कम ही। सदाचारिणी की बातें सुनने वाली बहुत थीं। यह देखकर उसे बडी ईर्ष्या होती और उसने उस सदाचारिणी की जड खोद फेंकने का निश्चय कर लिया।

वह सदाचारिणी बाई बडी लज्जावती थी, मगर ऐसी नहीं कि घर में ही बन्द रहे और और बाहर न निकले। वह अपने काम करने के लिए बाहर भी जाती थी। जब वह बाहर निक–

कलक लगाकर उसके प्राण ले सकूं तो मेरे रास्ते का काटा दूर हो जाए। मगर कलक क्या लगाऊं ? और कोई कलक लगाने पर तो उसका साबित करना कठिन हो जाएगा। क्यो न मैं अपने लडके को ही मार डालूं और दोष उसके माथे मढ दूं। लोगो को विश्वास हो जायगा और उसका भी खात्मा हो जायगा।'

इस प्रकार क्रूरतापूर्ण विचार करके उसने अपने लडके के प्राण ले लिये। लडके का मृत शरीर उस सदाचारिणी के मकान के सामने कुएं मे फेंक आई। इसके बाद रो-रो कर, बिलख-बिलख कर अपने लडके को खोजने लगी। हाय ! मेरा लडका न जाने कहा गायब हो गया है ! दूसरे लोग भी उसके लडके को ढूंढने लगे। आखिर वह लोगो को उसी कुए के पास लाई जिसमे उसने लडके का शव फेंका था। लोगो ने कुएं को ढूढ़ा तो उसमे से बच्चे की लाश निकल आई। लाश निकलते ही दुराचारिणी उस सदाचारिणी का नाम ले-लेकर कहने लगी—'हाय ! उस भगतन की करतून देखो। उस पापिनी ने मुझसे बैर भजाने के लिए मेरे लडके को मार डाला ! डाकिन ने मेरा लाल खा लिया। हाय ! मेरे लडके को गला घोटकर मार डाला।'

आखिर न्यायालय मे मुकदमा पेश हुआ। दुराचारिणी ने सदाचारिणी पर अपने लडके को मार डालने का अभियोग लगाया। सदाचारिणी को भी न्यायालय मे उपस्थित होना पडा। उसने सोचा—बडी विचित्र घटना है। मैं उस लडके के विषय मे कुछ नहीं जानती, फिर भी मुझ पर हत्या का आरोप है। खैर कुछ भी हो, अभियोग का उत्तर तो देना ही पडेगा।

कुलटा स्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन मे कुछ गवाह भी पेश

सदाचारिणी—अगर धर्म न जाने योग्य बात है तो साफ क्यो नहीं कहते ?

वजीर—तुम्हारे खिलाफ यह आरोप है कि तुमने लडके को मारा है। न मारने की बात केवल तुम्हीं कहती हो, पर तुम्हारी बात पर विश्वास कैसे किया जाय ? अपनी बात पर विश्वास कराना है तो नंगी होकर मेरे सामने आ जाओ। इससे मैं समझ लूंगा कि तुमने मेरे सामने जैसे शरीर पर पर्दा नही रखा, उसी प्रकार बात कहने मे पर्दा न रखोगी।

सदाचारिणी—जिसे मैं प्राणो से भी अधिक समझती हूं,उस लज्जा को नही छोड सकती और आपका भी यह कर्त्तव्य नहीं है। आप चाहे तो शूली पर चढा सकते हैं—फासी पर लटकाने का आपको अधिकार है, परन्तु लज्जा का त्याग मुझ से न हो सकेगा।

इतना कहकर वह वहां से चल दी। वजीर ने कहा-'देखो, समझ लो। न मानोगी तो मारी जाओगी।' सदाचारिणी ने कहा—'आपकी मर्जी। यह शरीर कौन हमेशा के लिए मिला है। आखिर मनुष्य मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है।

वजीर ने सोच लिया—'यह स्त्री सच्ची और सती है।'

इसके बाद वजीर ने कुलटा को बुलाकर वही कहा—'तुम मेरी एक बात मानो तो तुम जीत जाओगी।'

कुलटा—मैं तो जीती हुई हू ही। मेरे पास बहुत से सबूत हैं।

बन्धन मे तभी बंध सकते हैं, जब वे आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन की अपनी अशक्तता अनुभव कर लें, लेकिन आज के विवाहो मे ऐसे अनुभव के लिये समय ही नही आने दिया जाता। सिर्फ जैन-समाज मे ही नही, पर भारत की सभी जातियो मे पुरुष और स्त्री युवक-युवती होने से पूर्व ही विवाहित कर दिये जाते हैं। अधिकाश बालक बालिकाओ के माता-पिता अपने बच्चो का विवाह ऐसी अवस्था मे कर देते हैं, जबकि वे बालक बिवाह की आवश्यकता, उसकी जवाबदारी और उसका भार समझने के अयोग्य ही नही, परन्तु उससे अनभिज्ञ ही होते हैं। यह अवस्था बालक-बालिकाओ के खेलने-कूदने योग्य है पर माता-पिता बच्चो का खेल देखने के साथ ही विवाह का खेलभी देखने की लालसा से अपने नन्हे बच्चो का भविष्य नष्ट कर देते हैं।

अभागे भारत मे, ऐसे-ऐसे बालक-बालिकाओ के विवाह सुने जाते हैं, जिनकी अवस्था एक वर्ष से भी कम होती है। अपने बालक या बालिका को दूल्हे या दुलहिन के रूप मे देखने के लिए लालायित मा-बाप अपनी जवाबदारी और सतान की भावी उन्नति, सब को बाल-विवाह की अग्नि मे भस्म कर देते हैं किन्तु यह सर्वथा अनुचित है। ऐसे माता-पिता अपने कर्त्तव्य को भुलाकर बालक और बालिकाओं के प्रति अन्याय करते हैं। अपने क्षणिक सुख के लिये अपने बालको को भोग की धधकती हुई ज्वाला मे भस्म होने के लिये छोड देते हैं और अपनी सतान को उसमे जलते हुए देखकर भी आप खडे-खडे हसते हैं तथा यह अवसर देखने को मिला, इसके लिये अपना अहोभाग्य समझते हैं। किन्तु माता-पिताओ के लिये यह सर्वथा अनुचित है। उनका कर्त्तव्य अपनी सतान को सुख देना है, दुख देना नही।

आजकल अधिकाश लोगो को यह भी पता नही है कि हमारा

शास्त्र के अनुसार पहला धर्म लज्जा है। 'जहां लज्जा है, वहीं दया है। मैंने दोनों की लज्जा की परीक्षा की। पहली बाई ने मरना स्वीकार किया, पर लाज तजना स्वीकार न किया। वह धर्मशीला है। इस दूसरी ने मुझे भी कलक लगाया और फिर लाज देने को तैयार हो गई। यह देखकर इसे पिटवाया तो लड़के की हत्या करना स्वीकार कर लिया।

सारा मामला बदल गया। सच्चरित्रा बाई के सिर मढा हुआ कलंक मिट गया। बादशाह ने सच्चरित्रा को धन्यवाद देकर कहा—'आज से तुम मेरी बहिन हो।'

लज्जा के प्रताप से उस बाई की रक्षा हुई। वह लाज तज देती तो उसके प्राण भी न बचते। बादशाह ने कुलटा को फांसी की सजा सुनाई और सदाचारिणी से कहा—'बहिन! तुम जो चाहो, मुझसे माग सकती हो।

सदाचारिणी बाई ने उठकर कहा—'आपके अनुग्रह के लिए आभारी हू। मैं आपके आदेशानुसार यही मागती हू कि यह बाई मेरे निमित्त से न मारी जाय। इस पर दया की जाय।'

बादशाह ने वजीर से कहा—तुम्हारी बात बिलकुल सत्य है। जिसमे लज्जा होगी, उसमे दया भी होगी। इस बाई को देखो। अपने साथ बुराई करने वाली की भी कितनी भलाई कर रही है।

बादशाह ने सदाचारिणी बाई की बात मान कर कुलटा को क्षमा-दान दे दिया। कुलटा पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसका जीवन एकदम बदल गया।

स्वच्छ रखो । इससे परमात्म-दर्शन हो सकेगा ।

९-द्रौपदी की विदाई

शुभ मुहूर्त मे द्रौपदी का विवाह हुआ । द्रुपद और कृष्ण ने पांडवो को खूब सम्पत्ति दहेज में दी । द्रौपदी अन्य रानियो के साथ अपनी सास कुन्ती के पास गई ।

द्रौपदी के परिवार वालो को और खास तौर पर उसकी माता को विदाई के समय कितना दुःख हुआ होगा, यह बात भुक्त-भोगी गृहस्थ ही समझ सकते हैं । लडकी की विदाई का करुण दृश्य देखा नहीं जाता । कन्या का वियोग हृदय को हिला देता है । साधारण घरो मे भी कन्या की विदाई के समय कोलाहल मच जाता है तो राजकुमारी द्रौपदी की विदाई का किन शब्दो में वर्णन किया जा सकता है !

द्रौपदी की माता ने द्रौपदी को दिलासा देते हुए कहा—वेटी, जैसे मैं अपने पिता का घर छोड़ कर आई हूं, उसी प्रकार तू भी घर छोडकर ससुराल जा रही है । यह तो लोक की परम्परा ही है । इसका उल्लघन नहीं किया जा सकता । तेरे जैसी पुत्री पाकर मैं निहाल हुई हूं, अब अपने कुल की लाज रखना तेरे हाथ की बात है । तूने मेरे स्तनो का दूध पीया है, इसलिए ऐसा कोई काम मत करना, जिससे मेरा मुंह काला हो । अपने जीवन मे कोई भी अपवाद न लगने देना ।

अच्छी माता ऐसी ही शिक्षा देगी । वह बतलाएगी कि तुझे पति, सास, ससुर और नौकरों-चाकरों के साथ कैसा शिष्टतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए । कोई समझदार माता अपनी लड़की को

प्रश्न सुनकर गुरुजी ने शास्त्र निकालकर बताया । उसमे लिखा था कि गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् ने उत्तर दिया कि इस शरीर मे तीन अंग माता के, तीन अंग पिता के और शेष अंग दोनों के हैं । मांस, रक्त और मस्तक माता के हैं । हाड, मज्जा और रोम पिता के हैं । शेष भाग माता और पिता दोनो के सम्मिलित हैं ।

माता ने कहा—बेटा ! तेरे शरीर का रक्त और मांस मेरा है । हमारी चीजें हमे दे दे और इतने दिन इनसे काम लेने का भाड़ा भी चुकता कर दे ।

यह सब सुनकर बेटे की आंख खुली । उसे माता और पिता के उपकारों का ख्याल आया तो उनके प्रति प्रबल भक्ति हुई । वह पश्चात्ताप करके कहने लगा—मैं कुचाल चल रहा था । कुसगति के कारण मेरी बुद्धि मलिन हो गई थी । इसके बाद वह गुरुजी के चरणो मे गिर पड़ा और कहने लगा—माता-पिता का उपकार तो मैं समझ गया पर उस उपकार को समझाने वाले का उपकार समझ सकना कठिन है । आपके अनुग्रह से मैं माता-पिता का उपकार समझ सका हू ।

कहने का आशय यही है कि मातृत्व को समझने के लिये सर्वप्रथम माता-पिता के प्रति श्रद्धा की भावना लाओ ।

भले ही पुत्र कितना भी पढा-लिखा क्यो न हो, बुद्धि-वैभव कितना ही विशाल क्यो न हो, समाज मे कितनी ही प्रतिष्ठा क्यो न हो, फिर भी माता के समक्ष विनम्रता धारण करना पुत्र का कर्त्तव्य है । अगर पुत्र विनीत है तो उसके सद्‌गुणो का विकास ही होगा । प्रतिष्ठा में वृद्धि ही होगी । ह्रास होने की तो कोई

स्थान एक ऐसी संस्कृति ले रही है, जिसके गर्भ मे घोर अशांति, घोर असंतोष, घोर नास्तिकता और विनाश ही भरा हुआ है। द्रौपदी को मिली हुई शिक्षा भारतीयों के लिए इस समय बहुत उपयोगी साबित हो सकती है।

'देने योग्य को देना' का अर्थ यह है कि व्यवहार मे किसी को उधार देना ही पडता है। ऐसा उधार देने का समय आने पर या किसी और प्रकार से देने का समय आने पर जो देने योग्य हो उसे अवश्य देना। किन्तु उसे देना जो उधार लेकर भाग न जाय और न लडने पर ही आमादा हो जाय।

'न देने योग्य को न देना' इसका आशय यह है कि जो लेकर देना ही न सीखा हो, उसे मत देना। यह हमारी वस्तु वापिस लौटा देगा या नहीं, यह बात सोच-विचार कर ही किसी को देना और जो दी हुई वस्तु का दुरुपयोग करता हो उसे भी मत देना। जैसे—बालक ने चाकू मांगा और उसे दे दिया तो वह अपना हाथ काट लेगा। रोष मे आकर किसी ने अफीम मांगी और उसे दे दी तो वह आत्महत्या कर लेगा। इसलिए देने से पहले सुपात्र-कुपात्र का ध्यान रखना। न देने से तो ऐसे को थोडा ही दुःख होगा मगर दे देने से घोर अनर्थ हो सकता है और फजीता अलग होता है।

कुछ लोगो की ऐसी आदत होती है कि वस्तु मौजूद रहते भी वे झूठ बोलते हैं—कह देते हैं, मेरे पास नहीं है। इस प्रकार झूठ बोल कर कुपात्र बनने की क्या आवश्यकता है। देने का मन न हो तो सच-सच क्यों नही कह देते कि हम देना नही चाहते। अपनी वस्तु के लिए, जो कुपात्र है, उसे कुपात्र न कहकर स्वयं झूठ बोलने के कारण कुपात्र बनना अच्छी बात नही है। हां, योग्य को

उसने दीनता एवं नम्रता के साथ आपसे याचना की और आपने उसे झिडक दिया तो वह अतिथि अपनी नम्रता से पुण्य लेकर जाता है और आपको पापी बना जाता है।

द्रौपदी की माता ने उसे इस प्रकार की शिक्षा दी। वहाँ जो दूसरी स्त्रिया मौजूद थी, वे समझती थीं कि महारानी हम सभी को शिक्षा दे रही हैं। द्रौपदी की माता तथा अन्य सभी कुटुम्बी-जनो की आखें आंसुओ से भरी हुई थीं।

जब कन्या पीहर से ससुराल जाती है तो पीहर को देख करके वह सोचती है—मैं इस घर के आंगन मे खेली हू और आज यही घर छूट रहा है। अदृष्ट मुझे और कही ले जा रहा है। जीवन मे जिन्हे अपना माना था, वे पराये बनते जा रहे हैं और जिन्हें देखा नही, जाना नहीं, उन्हे आत्मीय बनाना होगा ! स्त्री जीवन की यह कैसी विचित्रता है, मानो एक ही जीवन मे स्त्री के दो,एक-दूसरे से भिन्न जीवन हो जाते हैं। क्षण भर मे 'ममता का क्षेत्र बदल जाता है !'

तत्त्व की दृष्टि से देखा जाय तो जो बात स्त्री के जीवन मे घटित होती है, वह मनुष्य मात्र के जीवन मे, यहां तक कि जीवमात्र के जीवन में घटित होती है। अन्तर है तो केवल यही कि स्त्री-जीवन की परिवर्तन-घटना आखो के सामने होती है, जब कि दूसरो की आखो से ओझल होती है। इतना अन्तर होने पर भी असली चीज दोनो जगह समान है। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। आज जिन्हें तुम अपना मान रहे हो, वे क्या अनादि-काल से तुम्हारे हैं और अनन्त काल तक तुम्हारे रहेंगे ?

भक्तजन कहते हैं—हम भी कन्या हैं। संसार हमारा

में जो बात आ रही थी, वही तुमने भी कही है ! मैं भी इसी समस्या पर विचार कर रहा हू ।

> भिन्न-सा करके कोशलराज,
> राज देते हैं तुमको आज ।
> तुम्हें रुचता है वह अधिकार,
> राज्य है प्रिये भोग या भार ।

सीता कहती है—'मेरे श्वसुर आपको राज्य क्या दे रहे हैं मानो भाइयों को आपस मे अलग-अलग कर रहे हैं—जुदाई दे रहे हैं । क्या आपको ऐसा रुचिकर है ? आप उसे चाहते हैं ? आप राज्य को प्रिय वस्तु समझते हैं या भार मानते हैं ?'

सीता की भांति आज की बहिने भी क्या देवरों के विषय में ऐसा ही सोचती हैं ? राज्य तो बडी चीज है, क्या तुच्छ से तुच्छ वस्तुओं को लेकर ही देवरानी-जेठानी मे महाभारत नहीं मच जाता ? वे भाई-भाई के बीच कलह की बेल नहीं बो देती ? क्या जमाना था वह, जब सीता इस देश मे उत्पन्न हुई थी ? सीता जैसी विचारशील सती के प्रताप मे यह देश धन्य हो गया है । आज क्या स्थिति है ? किसी कवि ने कहा है—

> एक उदर का नीपज्या, जामण जाया वीर ।
> औरत के पाले पड़्या, नहि तरकारी में सीर ।।

बहिनो ! अगर धर्म को जानती हो तो इस बात का विचार रखो कि भाई-भाई मे भेद न पड़ने पावे ।

सीता ने राज्य प्राप्ति के समय भी इस बात का विचार

किया था। वह राज्य को भार मान रही है। मगर आज क्या भाई और क्या भौजाई, जरा-जरा-सी बात के लिए छल-कपट करते नहीं चूकते ?

रामचन्द्र, सीता से कहने लगे—प्रिये ! तुम वास्तव में असाधारण स्त्री हो। तुम बड़े भाग्य से मुझे मिली हो। स्त्रियो पर साधारणतया यह दोषारोपण किया जाता है कि वे पुरुष को गिरा देती हैं, पुरुष को ऊर्ध्वगामी नही बनने देतीं—उसके पंख काट डालती हैं, और यहां तक कि पुरुष को नरक मे ले जाती हैं। मगर जानकी, तुम अपवाद हो। पुरुष की प्रगति मे बाधा डालने वाली स्त्रियां और कोई होंगी, तुम तो मेरी प्रगति ही हो ! तुम मेरी सच्ची सहायिका हो। जो काम मुझसे अकेले नही हो सकता, वह तुम्हारी सहायता से कर सकूंगा।

जानकी ! मैं स्वय राज्य को भार मानता हूं। वह वास्तव में भार ही है। मैं राज्य पाना दंड पाना समझता हूं। अगर वह सौभाग्य की बात समझी जाय तो सिर्फ इसलिए कि राज्य के द्वारा प्रजा की सेवा करने का अवसर मिलता है। जो राजा न होकर भी प्रजा की सेवा कर सकता है, उसे राज्य की आवश्यकता ही क्या है ? सम्भव है, मेरे सिर पर यह भार अभी न आवे, कदाचित् आया तो भी मैं अपने भाइयो के साथ लेशमात्र भी भेदभाव नहीं करूंगा। हम जिस प्रकार रहे, उसी प्रकार रहेंगे, अवध का राज्य क्या, इन्द्र का पद भी मुझे अपने भाइयो से अलहदा नही कर सकता।

११—बारीक वस्त्र

जो स्त्रियां शील को ही नारी का सर्वोत्तम आभूषण

समझती हैं, उनके मन मे बढिया वस्त्र और हीरा-मोती के आभूषणों की क्या कीमत हो सकती है ? उन्हे इन्द्राणी बना देने का प्रलोभन भी नही गिरा सकता। शील का सिंगार सजने वाली के लिए यह तुच्छ—अति तुच्छ है। सच्ची शीलवती अपने शील का मूल्य देकर उन्हे कदापि लेना नही चाहेगी।

और बारीक कपडे ! निर्लज्जता का साक्षात् प्रदर्शन है। कुलीन स्त्रियों को यह शोभा नही देते। खेद है कि आजकल बारीक वस्त्रों का चलन बढ गया है। यह प्रथा क्या आप अच्छी समझते हैं ? नहीं।

मगर आज तो यह बडप्पन का चिह्न बन गया है। जो जितने बडे घर की स्त्री, उसके उतने ही बारीक वस्त्र ! बडप्पन मानो निर्लज्जता मे ही है ? क्या बारीक वस्त्र लाज ढक सकते हैं ? इन बारीक वस्त्रो की बदौलत भारत की जो दुर्दशा हुई है, उसका बयान नहीं किया जा सकता।

मोटे कपड़े मजदूरी करना सिखाते हैं और महीन कपडे मजदूरी करने से मना करते हैं। महीन कपडा पहनने वाली बाई अपना बच्चा लेने मे भी सकोच करती है इस, डर से कि कहीं धूल न लग जाय। इस प्रकार बारीक वस्त्रो ने सन्तान-प्रेम भी छुडा दिया है।

१२—पति को सीख

एक होशियार वकील भोजन करने बैठा था। इतने में उसका एक मवक्किल आया और उसने पचास हजार रुपये के नोट वकील के सामने रख दिये। वकील ने अपनी चतुराई का गर्व प्रदर्

करते हुए अपनी पत्नी की ओर निगाह फेरी । मगर पत्नी मुंह के आगे हाथ लगा कर रुदन कर रही थी। वकील ने रोने का कारण पूछा। कहा—'क्यो, अपने घर किस बात की कमी है ? देखो आज ही पचास हजार आये हैं । मैं कितना होशियार हूं और मेरी कितनी ज्यादा कमाई है, यह सब जानते-बूझते भी तुम रो रही हो।

वकील की पत्नी ने कहा—मैं तुम्हें देखकर रो रही हूं ।

वकील—क्यो ? मैंने कोई बुरा काम किया है ?

वकील-पत्नी—आपने सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बनाया है । यह क्या कम खराब काम है ? आप पचास हजार लेकर फूले नही समाते, मगर जिसके एक लाख डूब गये और एक लाख घर से देने पडे, उसके दुःख का क्या पार होगा ? मुझे नहीं मालूम था कि आप इस प्रकार पाप का पैसा पाकर आनन्द मना रहे हैं ।

वकील—हमारा धन्धा ही ऐसा है । ऐसा न करें तो काम कैसे चले ?

पत्नी—आप सत्य को असत्य बनाते हैं, इसके बदले सत्य को सत्य बनाने की ही वकालात क्यो नही करते ? सच्चा मुकदमा ही लें तो क्या आपका काम नही चलेगा ? मैं चाहती हूं कि आप प्रतिज्ञा ले लें भविष्य मे कोई भी झूठा मुकदमा आप हाथ नहीं लेंगे ।

आज उसे कितना दु.ख हो रहा होगा ! आज मैं अपने वाक्चातुर्य से न्यायाधीश के सामने झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा सिद्ध करने मे सफल भी हो जाऊं किन्तु जब परलोक मे मुझे पुण्य-पाप का हिसाब देना पड़ेगा, तब क्या उत्तर दूंगा ? कहा भी है :—

होयगो हिसाब तब मुख से न आवे ज्वाब ।
'सुन्दर' कहत लेखा लेगो राई-राई को ॥

वकील की बात सुनकर मवक्किल भी चकित रह गया और कहने लगा—वास्तव मे वकील-पत्नी एक सत्यमूर्ति है, जिसने पचास हजार को भी ठोकर लगा दी ।

बहिनो, अन्याय के पथ पर चलने वाले पति को इस प्रकार सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करो ।

१३—गर्भवती का कर्त्तव्य

आजकल के अधिकांश नर-नारियो को गर्भ-सम्बन्धी ज्ञान नही होता परन्तु भगवतीसूत्र मे इस विषय की चर्चा की गई है। वहां यह बतलाया गया है कि हे गौतम ! माता के आहार पर ही गर्भ के बालक का आहार निर्भर है । माता के उदर मे रस-हरणी नलिका होती है । उसके द्वारा माता के आहार से बना रस बालक को पहुंचता है और उसी से बालक के शरीर का निर्माण होता है ।

बहुत-सी गर्भवती स्त्रियां भाग्य के भरोसे रहती हैं और गर्भ के विषय की जानकारी नही करती । इस अज्ञान के कारण कभी-कभी गर्भस्थ बालक और गर्भवती स्त्री दोनों को हानि उठानी

पड़ती है। बालक को आंखों देखते काटना या मारना तो कोई सहन नहीं करता पर अज्ञान के कारण बालक की मौत हो जाती है और माता के प्राण संकट में पड़ जाते हैं, यह सहन कर लिया जाता है।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है—गर्भ का बालक मल-मूत्र का त्याग भी करता है? भगवान् ने उत्तर दिया है—गर्भ का बालक माता के भोजन मे से रस-भाग को ही ग्रहण करता है। उस सार रूप रस-भाग को भी वह इतनी मात्रा में ग्रहण करता है कि उसके शरीर के निर्माण मे ही सारा लग जाता है। गर्भस्थ बालक आहार के खल-भाग को लेता ही नही है। अतएव उसे मलमूत्र नही आता।

भगवान् के कथन का सार यह है कि गर्भ के बालक का आहार माता के आहार पर ही निर्भर है। माता यदि अत्यधिक खट्टा-मीठा या चरपरा खाएगी तो उससे बालक को हानि पहुंचे बिना नहीं रहेगी। जैसे कैदी का भोजन जेलर के जिम्मे होता है, जेलर के देने पर ही कैदी भोजन पा सकता है, अन्यथा नहीं, इसी प्रकार पेट-रूपी कारागार मे रहे हुए बालक रूपी कैदी के भोजन की जिम्मेदारी माता पर है। गर्भस्थ वालक की दया न करने वाले मां-बाप घोर निर्दय हैं, वालक के घातक हैं। कोई-कोई कहते हैं कि श्रेणिक की रानी धारिणी ने अपने गभ की रक्षा की सो यह मोह अनुकम्पा का पाप हुआ लेकिन धारिणी के विषय में शास्त्र का पाठ है कि धारिणी रानी गर्भ की अनुकम्पा के लिए भय, चिन्ता और मोह नहीं करती है क्योंकि क्रोध करने से बालक क्रोधी होता है, भय करने से बालक डरपोक बन जाता है और मोह करने से लोभी होता है। इसीलिए धारिणी ने सब दुर्गुणों

का त्याग कर दिया था। आश्चर्य तो यह है कि अनुकम्पा के विरोधी इन दुर्गुणो के त्याग को भी दुर्गुण कहते हैं! मोह के त्याग को भी मोह—अनुकम्पा कहने वाले समझदार (?) लोगो को कौन समझा सकता है?

जो स्त्रिया गर्भवती होकर भी भोग का त्याग नहीं करती हैं, वे अपने पैरो पर आप ही कुल्हाड़ी मारती हैं। इस नीचता से वढ़कर और कोई नीचता नही हो सकती। नैतिक दृष्टि से ऐसा करना घोर पाप है और वैद्यक की दृष्टि से अत्यन्त अहितकर है। पतिव्रता का अर्थ यह नही है कि वह पति की ऐसी आज्ञा का पालन करके गर्भस्थ वालक की रक्षा न करे। माता को ऐसे अवसर पर सिंहनी वनना चाहिए, शक्ति वनना चाहिए और ब्रह्मचर्य का पालन करके वालक की रक्षा करनी चाहिए।

गर्भवती स्त्री को भूखा रहने का धर्म नहीं वतलाया गया है। किसी शास्त्र मे ऐसा उल्लेख नही मिलता कि किसी गर्भवती स्त्री ने अनशन तप किया था! जब तक वालक का आहार माता के आहार पर निर्भर है, तव तक माता को यह अधिकार नही कि वह उपवास करे। दया मूल गुण है और उपवास उत्तर गुण है। मूल गुण का घात करके उत्तर गुण की क्रिया करना ठीक नही।

१४—पुत्री—पुत्र

आज पुत्र का जन्म होने पर तो हर्ष और पुत्री का जन्म होने पर विषाद अनुभव किया जाता है, पर यह लोगों की नासमझी है। पुत्री के विना जगत् स्थिर ही कैसे रह सकता है? अगर किसी के भी घर पुत्री का जन्म न हो तो पुत्र क्या आकाश से टपकने लगेंगे? सामाजिक व्यवस्था की विषमता के कारण पुत्र-

पुत्री में इतना कृत्रिम अन्तर पड़ गया है। पर यह समाज का दूषित पक्षपात है। जिस पेट से पुत्र का जन्म होता है, उसी पेट से पुत्री का। फिर पुत्री को हीन क्यो समझा जाता है ? सासारिक स्वार्थ के वश मे होकर औरो की तो बात क्या, पुत्री को जन्म देने वाली माता भी पुत्री के जन्म से उदास हो जाती है ! ऐसी बहिनो से पूछना चाहिए कि क्या तुम स्त्री नही हो ? स्त्री होकर भी स्त्री जाति के प्रति अभाव रखना कितनी जघन्य मनोवृत्ति है ? कई स्त्रियो के विषय मे सुना गया है कि वे पुत्र होने पर खाने-पीने की जैसी चिन्ता रखती हैं, वैसी पुत्री के होने पर नही रखती। जहा ऐसे तुच्छ विचार हो, सन्तान के अच्छे होने की क्या आशा की जा सकती है और ससार का कल्याण किस प्रकार हो सकता है ?

सुवचन

स्त्रियों को या तो अविवाहित रह कर परमात्मा की भावना में रहना चाहिए या फिर ऐसे कुलदीपक को जन्म देना चाहिए जो कुल को यशस्वी और प्रशसा का पात्र बना दे। केवल भोग करना स्त्री का कर्त्तव्य नहीं है।

❀ ❀ ❀ ❀

हरिश्चन्द्र का नाम घर-घर में प्रसिद्ध है। इन शक्तियों की सहायता से ही उन लोगों ने अलौकिक कार्य कर दिखलाए हैं। जैसे शरीर का आधा भाग बेकार हो जाने पर सारा ही शरीर बेकार हो जाता है, वैसे ही नारी की शक्ति के अभाव मे नर की शक्ति काम नहीं करती।'

❀ ❀ ❀ ❀

'वही पत्नी श्रेष्ठ गिनी जाती है, जो पति मे अनुरक्त रहे और अपने कुटुम्बी-जनो को अपने आदर्श व्यवहार से आकर्षित कर ले।'

❀ ❀ ❀ ❀

आर्य-बालाओं में लज्जा का गुण होना स्वाभाविक है। पर लज्जा का अर्थ घूंघट ही नहीं है। लज्जा घूघट मे नही, नेत्रो मे निवास करती है। घूघट मारने वालियो मे ही अगर लज्जा होती तो वे ऐसे बारीक वस्त्र ही क्यों पहनती, जिनमे सारा शरीर दिखाई देता हो। महीन-वस्त्र पहनकर घूंघट निकालना तो एक प्रकार का छल है कि कपडे भी पहनें रहे और शरीर कुछ छिपा भी न रहे। इन महीन कपडो मे लज्जा कहां ?

❀ ❀ ❀ ❀

धर्मी पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा तो स्त्री मात्र को रहती है लेकिन स्वयं धर्मशीला बनने की भावना विरली स्त्री मे ही होती है और फिर धर्म का आचरण करने वाली तो हजारों लाखो मे भी शायद कोई मिल सकती है। पति कदाचित् पापी भी हो लेकिन पत्नी अगर अपने धर्म का पालन करती है तो उसका पाला हुआ धर्म ही उसके काम आता है। पति के पाप से पत्नी को नरक नहीं मिलता। अतएव हमे दूसरे की ओर न देखकर

अपने धर्म का ही पालन करना चाहिए ।

❀ ❀ ❀ ❀

बहिनो ! तुम्हे जितनी चिंता अपने गहनो की है, उतनी इन गहनो का आनन्द उठाने वाली आत्मा की है ? तुम्हे गहनो का जितना ध्यान रहता है, कम से कम उतना ध्यान अपनी आत्मा का रहता है ? आभूषणो को ठेस न लगने के लिए जितनी सावधानी रखती हो, उतनी आत्म-धर्म को ठेस न लगने देने के लिए भी सावधानी रखती हो ?

❀ ❀ ❀ ❀

कहा हैं ऐसी देविया जो अपने बालक को मनुष्य के रूप मे देव-दिव्य विचार वाला, दिव्य शक्तिशाली—बना सकें ? महिला वर्ग की स्थिति अत्यन्त विचारणीय है । जब तक महिलाओ का सुधार नही होगा, तब तक किसी भी प्रकार का सुधार ठीक तरह नही हो सकता । आखिर तो मनुष्य के जीवन का निर्माण बहुत कुछ माता के हाथ मे ही है । माता ही बालक की आद्य और प्रधान शिक्षिका है । माता बालक के शरीर की ही जननी नही, वरन् बालक के सस्कारो की और व्यक्तित्व की भी जननी है, अतएव बालको के सुधार के लिए पहले माताओ के सुधार की आवश्यकता है ।

❀ ❀ ❀ ❀

पुरुष-स्त्रियो को अबला कहते हैं । स्त्रिया भी अपने को अबला मानने लगी हैं । लेकिन स्त्रियो को अबला कहने वाला पुरुष कितना सबल है ? दूसरो को अबला बनाने वाला स्वय सबल नहीं रह सकता । जो वास्तव मे सबल होगा, वह दूसरे को निर्बल बनायेगा ?

❀ ❀ ❀ ❀

महिलावर्ग के प्रति पुरुपवर्ग ने जो व्यवहार किया, उसका फल पुरुप-वर्ग को भी भोगना पडा। महिलाओ को, जो साक्षात् शक्ति-स्वरूपिणी हैं, अबला बनाने के अभिशाप मे पुरुष-वर्ग स्वय अबल बन गया। सियारनी से कभी सिंह उत्पन्न होते देखे गये हैं? नही। तो फिर अबला से सबल सपूत किस प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं?

❀ ❀ ❀ ❀

वही पत्नी योग्य कहलाती है, जो स्वयं चाहे वीर न हो, युद्ध मे लडने न जावे, पर वीर सतान उत्पन्न करे, जो पति को देखकर सभी कुछ भूल जावे और पति जिसे देख कर सब भूल जावे। दोनो एक-दूसरे को देखकर प्रसन्न हो। पति जो कार्य करे उसके लिए यह समझे कि मेरा आधा अग वह कार्य कर रहा है।

१२

नारी-जीवन के उच्चतर आदर्श

१-गांधारी का गम्भीर त्याग

शास्त्रो में पत्नी को 'धर्मसहायिका' कहा है। अगर वह काम-सहायिका ही होती तो उसे धर्मसहायिका कहने की क्या आवश्यकता थी? जैसे दवा रोग मिटाने को खाई जाती है, उसी प्रकार विवाह धर्म की सहायता करने और कामवासना को सयत करने के लिए किया जाता है। इससे विपरीत, जो पत्नी को काम-क्रीडा की सामग्री समझता है, उसकी गति विचित्रवीर्य के समान होती है। अतिभोग के कारण विचित्रवीर्य की मृत्यु हो गई और राज्य का भार फिर भीष्म के कन्धो पर आ पडा।

विचित्रवीर्य के लडके पाण्डु का विवाह कुन्ती के साथ हुआ। धृतराष्ट्र अन्धे थे। वह जब युवावस्था मे आये तो भीष्म ने जान लिया कि वह ब्रह्मचर्य पालने मे समर्थ नही है। यह सोचकर उन्होंने धृतराष्ट्र का विवाह कर देने का विचार किया। उन्हें मालूम था कि गांधार देश के महाराजा सबल की कन्या गांधारी इनके वर के योग्य है। भीष्म ने सबल के पास दूत भेजकर

कहलाया—भीष्म ने धृतराष्ट्र के लिए आपकी कन्या गांधारी की मंगनी की है।

महाराज पशोपेश मे पड गए। वे सोचने लगे—क्या करना चाहिए? क्या अन्धे को अपनी कन्या दे दूं? यह नही हो सकता। भीष्म कितने ही महान् पुरुष हों, मैं अपनी कन्या नही दे सकता। साधारण आदमी भी अन्धे वर को अपनी कन्या नही देता तो मैं राजा होकर कैसे दे सकता हू?

सबल ने अपने लडके शकुनि से पूछा—थोडे दिनो बाद राज्य का सारा भार तुम्हारे सिर आने वाला है। इसलिए तुम बतलाओ कि इस विषय मे क्या करना उचित है?

शकुनि ने कहा—अपने बलाबल का विचार करते हुए गांधारी का विवाह धृतराष्ट्र के साथ कर देना ही उचित है। अपने देश पर विदेशियो और विधर्मियो के आक्रमण होते रहते हैं। यह सम्बन्ध होने से कुरुवंश अपना सहायक बनेगा और कुरुवश की धाक से बिना युद्ध ही देश की रक्षा हो जायगी। यह तो कन्या ही देनी पड रही है, अवसर आने पर तो देश की रक्षा के लिए पुत्र का भी रक्त देना पडता है।

सबल—संग्राम मे पुत्र का रक्त देना दूसरी बात है और कन्या के अधिकार को लूट कर देश की रक्षा चाहना दूसरी बात है। राज्य-रक्षा के लोभ मे पडकर कन्या का अधिकार छीन लेना क्या क्षत्रियो के लिए उचित कहा जा सकता है? गांधारी स्वेच्छा से शत्रु के साथ युद्ध करके अपना रक्त बहा दे तो हर्ज नहीं है, परन्तु कन्या के अधिकार का बलात् अपहरण करके उस पर अन्याय करना उचित नहीं है। गांधारी की इच्छा के बिना उसका विवाह

नहीं करूंगा । ऐसा करने पर चाहे राज्य चला ही क्यों न जाय ! हां, गांधारी स्वेच्छा से अगर अन्धे पति की सेवा करना चाहे तो बात दूसरी है । मैं उसे रोकूंगा भी नहीं । लेकिन उसकी इच्छा के विरुद्ध अन्धे के साथ उसका विवाह नहीं कर सकता ।

सभा मे उपस्थित सभी लोगो ने राजा के विचार का समर्थन किया और कहा—आप राजा होकर भी अगर कन्या के अधिकार को लूट लेंगे तो दूसरे लोग आपके चरित का न जाने किस प्रकार दुरुपयोग करेंगे ।

गांधारी राजकुमारी थी, युवती थी, सुन्दरी थी और गुणवती थी । पाण्डवचरित के अनुसार वह ऐसी सती थी कि किसी के शरीर को देखकर ही वज्रमय बना सकती थी । ऐसी गांधारी की मगनी अन्धे पुरुष के लिए आई है । इस समय गांधारी का क्या कर्त्तव्य है ? अगर पिता सगाई कर देते तो गांधारी के सामने विचारने के लिए कोई समस्या ही न रहती, मगर पिता ने इस सम्बन्ध को स्वीकार करने या न करने का उत्तरदायित्व स्वयं उसी पर छोड़ दिया है । अब गांधारी को ही अपने भविष्य का निर्णय करना है ।

राजसभा मे पूर्वोक्त निर्णय हो गया तो राजसभा मे रहने वाली दासी गांधारी के पास दौड़ी आई । उस समय गांधारी अपनी सखियो के साथ महल मे एक कमरे मे बैठी हास्य-विनोद कर रही थी ।

दासी दौड़ती हुई वहां आ पहुंची । उसे उदास और घबराई देखकर गांधारी ने कारण पूछा—क्यो आज क्या समाचार है ? उदास क्यों है ?

दासी—गजब हुआ राजकुमारी !

गांधारी—क्या गजब हुआ ? पिता और भाई तो सकुशल हैं?

दासी—और सबके लिए तो कुशलमगल है, आप ही के लिए अनर्थ हुआ है !

गांधारी ने मुस्करा कर कहा—मैं तो देख आनन्द मे बैठी हूं । मेरे लिए अनर्थ हुआ और मैं मजे मे हूं और तू घबरा रही है !

दासी—एक ऐसी बात सुनकर आई हू कि आपके हितैषी को दुःख हुए बिना नही रह सकता । आप सुनेंगी तो आपको भी दुःख होगा !

गांधारी—मुझे विश्वास नहीं होता कि मैं अपने सम्बन्ध में कोई बात सुनकर तेरी तरह घबरा उठूंगी । मैं अच्छी तरह जानती हू कि घबराहट किसी भी मुसीबत की दवा नही है । वह स्वयं एक मुसीबत है और मुसीबत बढ़ाने वाली है । खैर, बतला तो सही, बात क्या है ?

दासी कुरुवंशी राजा शान्तनु के पौत्र और विचित्रवीर्य के अन्धे पुत्र धृतराष्ट्र के लिए तुम्हारी याचना करने के लिए भीष्म ने दूत भेजा है । इस विषय मे राजसभा में गरमागरम बातचीत हुई है।

गांधारी—यह तो साधारण बात है । जिसके यहा जो चीज होती है, मागने वाले आते ही हैं । अच्छा, आगे क्या हुआ सो बतला ।

दासी—महाराज ने कहा कि मैं अन्धे के साथ गांधारी का विवाह नहीं करूंगा । राजकुमार ने कहा कि अपना बल बढ़ाने के लिए धृतराष्ट्र के साथ गांधारी का विवाह कर देना चाहिए ।

गांधारी – फिर ? विवाह निश्चित हो गया ?

दासी—नहीं, अभी कोई निश्चय नहीं हुआ है। इसी से मैं आपको सूचना देने आई हूं,। राजकुमारी, चेत जाओ। आपकी रक्षा आपके हाथ मे है। महाराज ने आपकी इच्छा पर ही निर्णय छोड दिया है। पुरोहित आपकी सम्मति जानने आए गे। अगर आप जन्म भर के दुःखो से बचना चाहे तो किसी के कहने मे मत आना। दिल की बात साफ–साफ कह देना। सकोच मे पडो तो मुसीबत मे पड़ो।

इसी बीच मदनरेखा नामक सखी ने कहा—बडी सयानी बन रही है तू, जो राजकुमारी को यह उपदेश दे रही है! क्या यह इतना भी नही समझती कि अन्धा पति जिंदगी भर की मुसीबत है! जब राजकुमारी को स्वय निर्णय करना है तो फिर घबराहट की बात ही क्या रही ? जो बात अबोध कन्या भी समझती है, वह क्या राजकुमारी नहीं समझेंगी ?

अपनी सखियों की सम्मति सुनकर और यह समझकर कि इनकी बुद्धि एव विचारशक्ति इतनी ही उथली है, गांधारी थोडा मुस्कराई। उसने कहा—सखियो, तुम मेरी भलाई सोचकर ही सम्मति दे रही हो, इसमे कोई सदेह नहीं। पर क्या तुम्हें मालूम है कि मेरा जन्म किस उद्देश्य के लिए हुआ है ?

एक सखी ने उत्तर दिया—बचपन से साथ रहती हैं तो जानती क्यो नहीं ? आपका जन्म इसलिए हुआ है कि आप किसी सुन्दर और शूरवीर राजा की अर्धांगिनी बनें, राजकुमार पुत्र को जन्म दें, राजकीय सुख भोगें और राजमाता का गौरव पावें।

गाधारी—सखी, यह सब तो जीवन मे साधारणतया होता ही है, पर जीवन का उद्देश्य यह नही। तुम इतना ही समझती हो, इससे आगे की नही सोचती। मैं सोचती हू कि मेरा जन्म जगत् का कोई कल्याणकारी कार्य करने के लिए हुआ है। यह जीवन बिजली की चमक के समान क्षणभगुर है—कौन जानता है, कब है और कब नहीं ? अतएव इसके सहारे कोई विशिष्ट कार्य कर लेना चाहिए, जिससे दूसरो का कल्याण हो।

सखी—तो क्या आप अभी से वैरागिन बनेंगी ? सयम ग्रहण करेंगी ?

गाधारी—सयम और वैराग्य का उपहास मत करो। जिसमे सयम धारण करने का सामर्थ्य हो और जो सयम ग्रहण कर ले, वह तो सदा वन्दनीय है। अभी मुझ में इतनी शक्ति नहीं है। मेरी अन्तरात्मा अभी सयम लेने की साक्षी नहीं देती। अभी मुझमें पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की क्षमता नही जान पडती।

चित्रलेखा—जब ब्रह्मचर्य नही पालना है और विवाह करना

ही है तो क्या सूझता पति नहीं मिलेगा ? अन्धे पति को वरण करने की क्या आवश्यकता है ?

गांधारी—मेरा विवाह भोग के लिए ही नहीं, धर्म के लिए होगा। मैं पतिसेवा के मार्ग से परमात्मा के समीप पहुचना चाहती हूं।

मदन०—पतिव्रत धर्म का पालन करना तो उचित ही है। आप दुराचार नहीं करेंगी, यह भी हमे मालूम है। पर अन्धे को पति बनाने से क्या लाभ है ? क्या आपका यह सौन्दर्य और शृंगार निरर्थक नहीं हो जायगा ?

गांधारी—सखी, तुम वास्तविक बात तक नहीं पहुचती। शृंगार पतिरंजन के लिए होता है, लेकिन मेरी मांग अन्धे पति के लिए आई है। अतएव मेरा शृंगार पति के लिए नहीं, परमेश्वर के लिए होगा। शृंगार का अर्थ शरीर को सजाना ही नहीं है। बाह्य-शृंगार पति-रंजन के लिए किया जाता है, लेकिन मुझे ऐसा शृंगार करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। असली की कमी होने पर ही नकली चीज का आश्रय लिया जाता है। सेवा में कमी होने पर सिंगार का सहारा लिया जाता है। लेकिन मेरा सिंगार पतिसेवा ही होगा। ऐसा करके ही मैं आत्म-सन्तोष पाऊंगी और पती का कर्त्तव्य स्त्रियों को समझाऊंगी। अतएव पति अन्धा है या दूसरा, इस बात की मुझे कोई चिन्ता नहीं। पुरोहित जी के आने पर मैं विवाह की स्वीकृति दे दूंगी। जगत को स्त्री का दाम्पत्य कर्त्तव्य बतलाने का सुअवसर मुझे प्राप्त होगा।

वह अन्धे के साथ विवाह करने को तैयार हो रही है, यह बड़ा अनर्थ होगा !

इसी समय राजपुरोहित आ पहुचे। गाधारी ने पुरोहित का यथायोग्य सत्कार किया।

गाधारी की शिष्टता और विनम्रता देख पुरोहित गहरे विचार मे पड गया। सोचने लगा—यह सुकुमार फूल क्या अन्धे देवता पर चढने के योग्य है ? कैसे इसके सामने प्रस्ताव किया जाय ! फिर भी हृदय कठिन करके पुरोहित ने कहा—राजकुमारी! आज एक विशेष कार्य से आया हू। तुम्हारी सम्मति लेना आवश्यक है।

गाधारी—कहिए न, सकोच क्यो कर रहे हैं ?

पुरोहित जी—अन्धे धृतराष्ट्र के लिए आपकी सगाई आई है। इस सम्बन्ध मे अन्तिम निर्णय का भार आप पर छोड़ दिया गया है। महाराज ने आपकी सम्मति लेने मुझे भेजा है।

पुरोहित जी की बात सुनकर गाधारी हल्की सी मुस्कराने लगी पर बोली नही। चित्रलेखा ने कहा—पुरोहित जी ! राजसभा की सब बातें राजकुमारी सुन चुकी हैं। उन्होने अन्धे धृतराष्ट्र को पति बनाना स्वीकार कर लिया है। आप वृद्ध हैं, इसलिए कहना नहीं चाहती।

पुरोहित को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—आर्य जाति मे विवाह जीवन भर का सौदा माना जाता है। जीवन भर का सुख-दुःख विवाह के पतले सूत्र पर ही अवलम्बित है, विवाह शारीरिक

ही नहीं वरन् मानसिक सम्बन्ध भी है और मानसिक सम्बन्ध की यथार्थता तथा घनिष्ठता मे ही विवाह की पवित्रता और उज्ज्वलता है । इस तथ्य पर ध्यान रखते हुए इस विषय मे राजकुमारी को मैं पुन. विचार करने के लिए कहता हू । तुम भी उन्हें सम्मति दे सकती हो ।'

गांधारी भली-भांति जानती थी कि अन्धे के साथ मुझे जीवन भर का सम्बन्ध जोडना है । उसे अन्धे के साथ विवाह करने से इन्कार कर देने की स्वाधीनता थी । सखियो ने उसे समझाने का प्रयत्न भी किया । गाधारी युवती है और सासारिक आमोद-प्रमोद की भावनाएं इस उम्र मे सहज ही लहराती हैं । लेकिन गांधारी मानो जन्म की योगिनी है । भोगोपभोग की आकाक्षा उसके मन मे उदित ही नही । उसने सोचा—दुष्टो द्वारा पिता सदा सताये जाते हैं और इस कारण पिताजी की शक्ति क्षीण हो रही है । यदि मैं उनके लिए औषध रूप बन सकू तो क्या हर्ज है ? मुझे इससे अधिक और क्या चाहिए ? यद्यपि इस सम्बन्ध के कारण पिताजी को लाभ है, फिर भी उन्होने इसके निर्णय का भार मेरे ऊपर रखा है, यह पिताजी की कृपा है ।

गांधारी को उदारता की यह शिक्षा कहां मिली थी ? किसने उसे आत्मोत्सर्ग का यह सुनहरा पाठ सिखाया था ! अपने पिता और भ्राता की भलाई के लिए यौवन की उन्मादभरी तरंगो में पीन चट्टान की भांति स्थिर रहने की, अपने स्वर्णिम सपनो के हरे-भरे उद्यान को अपने हाथों उजाड फेंकने की, अपनी कोमल भावनाओ का बाजार लुटा देने की और सर्वसाधारण के माने हुए सांसारिक सुखो को क्षण मे परित्याग कर देने की सुविधा कौन जाने गांधारी ने कहां पाई थी ! आज का महिला-समाज इस त्याग के

महत्त्व को समझ नही सकता । जहा व्यक्तिगत और वर्गगत स्वार्थों के लिए सघर्ष छिडे रहते हैं, उस दुनिया को क्या पता है कि गाधारी के त्याग का मूल्य क्या है ? आजकल की लड़किया भले ही वडे-वडे पोथे पढ सकती हों पर पोथे पढ लेना ही क्या सुशिक्षा है ? जो शिक्षा सुसस्कार नही उत्पन्न करती, उसे सुशिक्षा नही कह सकते। आज की शिक्षा प्रणाली मे मस्तिष्क के विकास की ओर ध्यान दिया जाता है, हृदय को विकसित करने की ओर कोई लक्ष्य नहीं दिया जाता । यह एक ऐसी त्रुटि है, जिसके कारण जगत् स्वार्थ-लोलुपता का अखाडा बन गया है ।

गाधारी ने अपनी सखियो से कहा था—मैं भोग के लिए नही जन्मी हू। मेरे जीवन का उद्देश्य सेवा करना है। अन्धा पति पाने से मेरे सेवाधर्म की अधिक वृद्धि होगी । अतएव इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लेने से सभी तरह लाभ ही लाभ है। पिताजी को लाभ है, भाई का सकट कम होता है, मुझे सेवा का अवसर मिलता है और आखिर वह (धृतराष्ट्र) भी राजपुत्र हैं । उनका भी तो खयाल किया जाना चाहिए । कौन जाने मुझे सेवा का अवसर मिलना हो और इसलिए वे अन्धे हुए हो !

मनुष्य बीमार होता है अपनी करनी से, लेकिन सेवाभावी डाक्टर तो यही कहेगा कि मुझे अपनी विद्या प्रकट करने का अवसर मिला है। इसी तरह गाधारी कहती है—क्या ठीक है जो मुझे सेवा का अवसर देने के लिए ही राजकुमार अन्धे हुए हो !

पुरोहित ने कहा—राजकुमारी, अभी समय है । इस समय के निर्णय का प्रभाव जीवनव्यापी होगा । आप सोलह सिगार सीखी हैं, परन्तु अन्धे पति के साथ विवाह हो जाने पर आप सोलह सिगार किसे बतलाओगी ? आपके सिगार एव सौन्दर्य का अन्धे

पति के आगे कोई मूल्य न होगा। इसलिए कहता हूँ कि निःसंकोच भाव से, सोच-समझकर निर्णय करो।

गांधारी फिर भी मौन थी। उसे मौन देख उसकी सखियों ने कहा—यह सब बातें इन्होंने सोच ली हैं।

राजकुमारी ने हमें सिखलाया है कि स्त्रियां स्वभावतः शृंगारप्रिय होती हैं, लेकिन जो स्त्री ऊपरी सिंगार ही करती है और भीतरी सिंगार नहीं करती, उसके और वेश्या के सिंगार में क्या अन्तर है? यह बात नहीं है कि कुलांगनाएं ऊपरी सिंगार करती ही नहीं, लेकिन उनके ऊपरी सिंगार का सम्बन्ध भीतरी सिंगार के साथ होता है। कदाचित् उनका ऊपरी सिंगार छिन भी जाए तो भी वे अपना सार-सिंगार कभी नहीं छिनने देतीं।

राजकुमारी कहती है—मैं अपने पति की सेवा करके यह बतला दूंगी कि पति और परमात्मा की उपासना कैसे होती है?

सेविकाएं हैं ।

महाभारत मे कहा है कि अन्धा पति मिलने से गांधारी ने अपनी आंखो पर पट्टी बांध ली थी । लेकिन यह कल्पना ठीक नही है, क्योकि ऐसा करने से उनके सेवा-कार्य मे कमी आ जाती है। हां, विषय-वासना से बचने के लिए अगर कोई आखों पर पट्टी बाधे तो उसे बुरा भी नहीं कहा जा सकता । लेकिन गाधारी जैसी सती के विषय मे यह कल्पना घटित नहीं होगी । अगर आखो पर पट्टी बाधने का अर्थ यह हो कि वह जगत् के सौन्दर्य से विमुख हो गई थी—सौन्दर्य के आकर्षण को उसने जीत लिया था तो पट्टी बाधने की कल्पना मानी जा सकती है ।

अन्त मे पुरोहित ने कहा—तो राजकुमारी का यही अभिमत है, जो उनकी सखिया कहती हैं ?

गाधारी—पुरोहित जी, सखिया अन्यथा क्यों कहेगी ? आप पिताजी को सूचना दे सकते हैं ।

पहले-पहल गांधारी के सामने समस्या उपस्थित हुई कि अन्धे के साथ विवाह करना उचित है या नही ? मगर गाधारी शीघ्र ही निर्णय पर पहुच गई। कैसा भी कठिन प्रसग क्यों न हो, धर्म का स्मरण करने से कठिनाई दूर हो जाएगी । धर्म और पाप की सक्षिप्त व्याख्या यही है कि स्वार्थ-त्याग धर्म है और स्वार्थ-साधन की लालसा पाप है ।

गाधारी ने स्वार्थ त्याग दिया । गांधारी जैसी सती का चरित्र भारत में ही मिल सकता है, दूसरे देश मे मिलना कठिन है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि अमेरिका जैसे सभ्य गिने जाने

वाले देश में १५ प्रतिशत विवाह-सम्बन्ध टूट जाते हैं तलाक हो जाती है, भारतवर्ष मे पतन की अवस्था मे भी यह बात नहीं है।

गांधारी मे अपनी मातृभूमि के प्रति भी आदर्श प्रेम था। अन्धे पति का वरण करने मे उसका एक उद्देश्य यह भी था कि इससे मेरी मातृभूमि का कष्ट मिट जाएगा। मातृभूमि की भलाई के लिए उसका इतना त्याग करना अपना कर्त्तव्य समझा। उसने सोचा—अन्धे धृतराष्ट्र के साथ विवाह कर लेने से बल बढ़ेगा और मेरी मातृभूमि की रक्षा भी होगी तो ऐसा करने मे क्या हर्ज है?

सांसारिक दृष्टि से देखा जाय तो अन्धे के साथ विवाह करने मे कितना कष्ट है? अन्धा पति होने से सिंगार व्यर्थ होता है और सिंगार की भावना पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। मगर गांधारी ने प्रसन्नतापूर्वक यह सब स्वीकार कर लिया।

अन्त मे धृतराष्ट्र के साथ गांधारी का विवाह हो गया। गांधारी धृतराष्ट्र की पत्नी बनकर हस्तिनापुर आई।

२—राजमती का पतिप्रेम

स्त्रियां भी विवाह-सम्बन्ध विच्छेद तथा पुनर्विवाह आदि कानूनों की माग करने लगी हैं, परन्तु यह माग कुछ ही अग्रेजी शिक्षा से प्रभावित स्त्रियो की है, भारत की अधिकाश स्त्रिया तो इस प्रकार के कानूनो की माग की भावना को हृदय मे स्थान देना ही पाप समझती हैं। जिन स्त्रियो की ओर से इस प्रकार की माग हुई, उसमे से भी बहुत-सी अब यह समझने लगी हैं कि इस प्रकार के कानूनो का परिणाम कैसा बुरा होता है तथा भारतीय सस्कृति के मिटाने से कैसी हानि होगी। जिन देशो मे विवाह-विच्छेद कानून प्रचलित है, उन देशो के पति-पत्नी आज दाम्पत्य-जीवन की ओर से कैसे दुखी हो रहे हैं, वहा दुराचार का कैसा ताण्डव होता है, यह कहा नही जा सकता। केवल इग्लेन्ड मे और वह भी घरेलू झगडो के कारण प्रतिवर्ष १५ हजार पत्निया पतियो को छोड देती हैं और ३५०० पति, पत्नी को निश्चित अलाउन्स न दे सकने के कारण जेल जाते हैं।

भारत मे कोई स्त्री ऐसी शायद ही निकले, जो सीता, दमयन्ती आदि सतियो का नाम न जानती हो, उनके चरित्र से यत्किंचित् भी परिचित न हो या उनके चरित्र को आदर की दृष्टि से न देखती हो। सीता और दमयन्ती जैसी स्त्रिया भारत मे ही हुई हैं, जो कष्ट पडने और पति द्वारा त्यागी जाने पर भी पति-परायण ही रही।

सीता, मदनरेखा, दमयन्ती आदि कितनी भी पतिव्रता और पति-परायणा स्त्रिया प्राचीन काल मे हुई हैं, राजमती उन सबसे बढ़कर है। सीता आदि और सतियो का अपने पति द्वारा पाणि-ग्रहण हो चुका था। वे थोड़ा बहुत पति-सुख भोग चुकी थीं और इस कारण यदि वे पतिभक्त न रहती तो उनके लिए लोकापवाद अवश्यम्भावी था। लेकिन राजमती के लिए इनमे से कोई बात

नहीं थी । राजमती का तो भगवान् अरिष्टनेमि के साथ विवाह भी नहीं हुआ था और भगवान के लौट जाने के पश्चात् यदि वह किसी के साथ अपना विवाह करती तो कोई उसकी निन्दा भी नहीं कर सकता था । लेकिन रीति के अनुसार विवाह नहीं हुआ था, इसलिए राजमती भगवान् अरिष्टनेमि की स्त्री नहीं बनी थी । फिर भी राजमती ने भगवान् अरिष्टनेमि को अपना पति मानकर उत्कृष्ट पति-प्रेम का जो परिचय दिया, उसके कारण राजमती भारत की समस्त सती-स्त्रियों में अग्रणी मानी जाती है । राजमती के सतीत्व का उच्च आदर्श भारत के सिवा किसी अन्य देश वालों की कल्पना में भी आना कठिन है ।

भगवान् अरिष्टनेमि तोरण-द्वार पर से लौट आये । भगवान् अरिष्टनेमि विवाह किये बिना ही लौट गये ।

नेमि के लिए तेरी याचना की, तभी मैंने यह विवाह-सम्बन्ध स्वीकार किया था। इतना होने पर भी अरिष्टनेमि चले गये तो इससे अपनी क्या हानि हुई ? यह तो उसके पिता, भ्राता आदि का ही अपमान हुआ, जिन्होने मुझसे तेरी याचना की और जो बरात सजाकर आये थे। एक तरह से अच्छा ही हुआ कि अरिष्टनेमि तेरे साथ विवाह किये बिना ही लौट गये। यदि विवाह हो जाता और फिर वह तुझे त्याग जाते या दीक्षा ले लेते तो जन्म भर दुःख रहता। अब तू अरिष्टनेमि के लिए किंचित् भी दुःख या चिन्ता मत कर। हम तेरा विवाह किसी दूसरे राजा या राजकुमार के साथ कर देगे।'

माता की अन्तिम बात सुनकर राजमती को बडा ही दुःख हुआ, वह अपने माता-पिता से कहने लगी—पूज्य पिताजी ! आर्य-पुत्री का विवाह एक ही बार होता है, दो बार नही होता, चाहे वह पति द्वारा परित्याग कर दी गई हो या विधवा हो गई हो। आर्य-पुत्री स्वप्न मे भी दूसरे पुरुष को नही चाहती। मेरा विवाह एक बार हो चुका है, अतः अब मैं दूसरा विवाह कैसे कर सकती हू ? और आपको दूसरा विवाह करने की सम्मति भी कैसे उचित हो सकती है ?

माता—हम दूसरा विवाह करने को कब कह रहे हैं ? क्या हम आर्य-पद्धति से अपरिचित हैं !

राजमती—फिर आप क्या कह रही हैं ? यदि अब मेरा किसी दूसरे पुरुष के साथ विवाह हुआ, तो क्या वह पुनर्विवाह न माना जाएगा ?

माता—नहीं।

राजमती—क्यो ?

माता—इसलिए कि अभी तेरा विवाह नहीं हुआ है।

राजमती—आप भ्रम में हैं, मेरा विवाह हो चुका है।

माता—किसके साथ ?

राजमती—भगवान् अरिष्टनेमि के साथ।

माता—समझ में नहीं आता कि तू यह क्या कह रही है। अरिष्टनेमि अपने घर तक भी नहीं आये। उन्होंने तुझको और तूने उनको, भली-भांति देखा भी नहीं। हमने कन्या-दान करके तेरा हाथ भी उन्हें नहीं सौंपा और तू कहती है कि विवाह हो गया।

राजमती—वे यहां तक नहीं आये, या आपने मेरा हाथ उनके हाथ में नहीं सौंपा तो इससे क्या हुआ ? क्या विवाह के लिए ऐसा होना आवश्यक है ?

माता—आवश्यक क्यों नहीं है ?

चुकी हूं, अतः अब मैं किसी और पुरुष के साथ विवाह करके आर्य-कन्या के कर्त्तव्य को दूषण नहीं लगा सकती।

माता—राजमती, तू विवाह का जो अर्थ लगा रही है, उससे हम इन्कार नही करते, लेकिन हृदयगत भावो को ससार के सभी लोग नही जान सकते। इसलिए विवाह-सम्बन्धी स्थूल-क्रिया का होना आवश्यक है और जब तक वह न हो जाय, कोई पुरुष या स्त्री, विवाह-बन्धन से बद्ध नहीं माना जा सकता।

राजमती—कोई दूसरा मुझे विवाह-सम्बन्ध मे बद्ध माने या न माने, मैं तो अपने को ऐसा मानती हू। विवाह-सम्बन्धी स्थूल क्रिया देखने की आवश्यकता तो तब है, जब मैं अपने हृदय के भावो को छिपाऊ। विवाह-सम्बन्धी स्थूल क्रिया भी हृदय के आश्रित है। केवल विवाह ही नही, समस्त कार्य का मूल हृदय है। जिस बात को हृदय एक बार स्वीकार कर चुका है, केवल सासारिक विषय-सुख के लिए उससे मुकरना और विवाह-सम्बन्धी स्थूल क्रिया न होने का आश्रय लेना, कम से कम, मैं उचित नहीं समझती।

माता—तू चाहे विवाह-क्रिया को न मान, लेकिन ससार तो मानता है न! यदि तू अभी किसी से यह कहे कि मैं अरिष्टनेमि की पत्नी हूं तो क्या ससार के लोग इस बात को मानेंगे! और तो और, क्या स्वय अरिष्टनेमि ही यह स्वीकार करेंगे कि राजमती मेरी पत्नी है ?

राजमती—माता! भगवान् अरिष्टनेमि को मैंने पति माना है, इसलिए मैं अपने को विवाह-सम्बन्ध मे बन्धी हुई और भगवान् अरिष्टनेमि की पत्नी ही मानूगी। मैं यह नहीं कहती कि भगवान्

सखियो, तुम मुझे यह भय दिखाया करती हो कि किसी दूसरे के साथ विवाह न करने पर, जब काम का प्रकोप होगा, दुख पाओगी लेकिन क्या काम मुझ अबला को ही कष्ट देगा ? पति को कष्ट न देगा ? पति ने मुझे त्यागकर किसी दूसरी का पाणि-ग्रहण तो किया ही नही है, जो उसके कारण पति को काम–पीडा न हो और मुझे ही हो। जिस स्थिति में पति है, उसी स्थिति मे मैं हू। जब वे काम से होने वाले कष्ट सहेगे तो क्या मैं न सहू ? मैं उन कष्टो से भय खाकर अपने विचार से पतित क्यो हो जाऊं ? स्त्री का कर्त्तव्य, पति का अनुगमन करना है, अत. जिस प्रकार पति कष्ट सहे, उसी प्रकार मुझे भी कष्ट सहने चाहिए और यदि पति, काम पर विजय प्राप्त करें तो मुझे भी वैसा ही करना चाहिए। इसलिए तुम लोग, मुझे इस प्रकार का भय न दिखाओ किन्तु पति का अनुसरण करने की ही शिक्षा दो।

राजमती की बातो से, सखियां चुप हो गईं। उन्होंने फिर भी राजमती को समझाने और विवाह करना स्वीकार करने के लिए बहुत प्रयत्न किया परन्तु उनका सब प्रयत्न निष्फल हुआ। राजमती भगवान् अरिष्टनेमि के प्रेम मे ऐसी रग गई थी कि अब उस पर किसी की बातो से कोई दूसरा रग चढता ही न था।

श्री जवाहर किरणावली

किरण संख्या	नाम पुस्तक	मूल्य
१.	दिव्यदान	३)७५
२.	दिव्य जीवन	४)००
३.	दिव्य संदेश	२)००
४.	जीवन धर्म	४)७५
५	सुबाहुकुमार	६)५०
६.	रुक्मिणी विवाह	३)००
७.	जवाहर स्मारक	३)००
८.	सम्यक्त्व पराक्रम भाग-१	२)५०
९	" २	२)५०
१०.	" ३	२)५०
११-१२.	" ४-५	३)७५
१३	धर्म और धर्मनायक	२)६०
१४	रामवनगमन भाग-१	४)५०
१५	" "-२	४)५०
१६	अंजना	२)५०
१७	पाण्डव चरित्र, भाग-१	३)५०
१८.	पाण्डव चरित्र " -२	४)००
१९	बीकानेर के व्याख्यान	२)७५
२०	शालिभद्र चरित्र	५)००

२१.	मोरवी के व्याख्यान	२)००
२२.	सम्वत्सरी	४)५०
२३.	जामनगर के व्याख्यान	२)००
२४.	प्रार्थना-प्रवोध	३)७!
२५.	उदाहरणमाला भाग-१	४)५
२६.	" " -२	मुद्रणाधी
२७.	" " -३	५)०
२८	नारी जीवन	५)००
२९.	अनाथ भगवान् भाग-१	प्रकाश्य
३०.	" " -२	४)००
३१.	गृहस्थ धर्म, भाग-१	३)५०
३२.	" " -२	३)५०
३३.	" " -३	४)००
३४.	सती राजमती	२)००
३५.	सती मदनरेखा	२)७५